मध्य पहाड़ी भाषा (गढ़वाली कुमाउँनी) का अनुशीलन और उसका हिन्दी से सम्बन्ध

आलोचना साहित्य का प्रकाशन

हरिऔध की साहित्य साधना	शिवनारायण शुक्ल	६.००
हिन्दी साहित्य कुछ विचार	डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित	१०.००
अनुभूति और चिन्तन	डा० कमलेश गौड़	७.५०
हिन्दी साहित्य मे विरह प्रसग	डा० हनुमान दास "चकोर"	३.५०
नई समीक्षा पुराना साहित्य	प्रो० उपेन्द्रनाथ राय	३.००
गीतावली का काव्योत्कर्ष	डा० परमलाल गुप्त	२ ५०
सियाराम शरण गुप्त एक मूल्याकन	,,	६.००
अभेददर्शी निराला	श्री शिवप्रसाद श्रोत्रिय दिवाकर	२.५०
भरतीय सस्कृति का विदेशों मे प्रभाव	श्री अ० अ० अनत	३ ५०
शास्त्री स्मृति ग्रन्थ	सम्पादक अमरनाथ	३.५०
प्रसाद की काव्य प्रतिभा	आचार्य दुर्गाशंकर मिश्र एम० ए०	६.००
प्रसाद की नाट्य प्रतिभा	,,	७.००
भक्ति काव्य के मूलस्रोत	,,	६.७५
कहानी कला की आधार शिलाए	,,	५.००
अनुभूति और अध्ययन	,,	४ ५०
विचार वीथिका	,,	४.००
सेनापति और उनका काव्य	,,	३.५०
रसखान का अमर काव्य	,,	२ ००
विनय पत्रिका आलोचना और भाष्य	श्री दानबहादुर पाठक	९ ७५
कुछ विचार कुछ समीक्षायें	श्री मुरली मनोहर एम० ए०	४.५०
कवि सेनापति समीक्षा	आचार्य जितेन्द्र भारतीय शास्त्री	५ ००
विचार और समीक्षा	डा० प्रतापसिंह चौहान	५.७५
कविता में प्रयोगवाद की परम्परा	,	२.००
दीप से दीप जले	डा० गोपीनाथ तिवारी	२ २५
हिन्दी उपन्यासों का मनोविज्ञान मूल्यांकन	आचार्य विकल	४.२५
कामायनी के पन्ने	श्री भुवनचन्द्र पाण्डेय	४.२५
छायावाद विश्लेषण और मूल्याकन	प्रो० दीनानाथ शरण	१०.००
छायावाद और निराला	डा० हनुमानदास "चकोर"	१.५०
हाई स्कूल हिंदी दर्शन	प्रो० रामाभिलास शुक्ल	२.७५

मध्य पहाड़ी भाषा [गढ़वाली कुमाउँनी] का अनुशीलन और उसका हिन्दी से सम्बन्ध

[आगरा विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत शोध प्रबन्ध]

लेखक
डा० गुणानन्द जुयाल, एम० ए० पी० एच० डी०
अध्यक्ष हिन्दी विभाग
बरेली कालेज, बरेली

प्रकाशक
नवयुग ग्रन्थागार
सी ७४७ महानगर, लखनऊ

उदाहृत पुस्तकें तथा उनके लिए संक्षिप्त अक्षर

पुस्तक	रचयिता	संकेत
१. अमरकोष	—	अ० को
१अ० अष्टाध्यायी	पाणिनि	अ० पा०
१ब० एलिमेंट आफ़ दि साइंस आफ़ लैंगुयेज	डा० इ० ज० स० तारापोरवाला	ए० सा० लैं०
२ एवोल्यूशन आफ़ अवधी	डा० बाबूराम सक्सेना	वा० अ० मा०
३ ऐंसेन्ट जियोग्रफी आफ़ इंडिया	कनिंघम	ए०, जि० आ० इ०
४ ओरिजन ऐंड डेवलपमेन्ट आफ़ दि बंगाली लैंगुयेज	डा० सु० कु० चटर्जी	च० व० ल०
५ कुमाऊँ का इतिहास	बद्रीदत्त पांडे	कु० इ०
६ कुमाउँनी भाषा-गीत	रामदत्त पंत	कु० भा० गी०
७ कुमारसंभव	कालिदास	कु० सं०
८ गढ़वाल का इतिहास	हरिकृष्ण रतूड़ी	ग० इ०
९ गढ़वाली कवितावली (संग्रह)	गढ़वाली प्रेस, देहरादून	ग० क०
१० गढ़वाली पखाणा	शालिग्राम वैष्णव	ग० प०
११ गुजराती लैंगुयेज ऐंड लिट्रेचर	एन० बी० डिवाटिया	गु० लैं० लि
१२ गुमानी कवि विरचित काव्य-संग्रह	गुमानी पंत	गु० वि० का०
१३ चित्रावली	उसमान	चि० उ०
१४ दातुलै की धार	श्यामाचरण पंत	दा० श्या०
१५ ध्रुवस्वामिनी	जयशंकरप्रसाद	ध्रु० ज०
१६ पर्वतीय भाषा-प्रकाश	गंगादत्त उप्रेती	प० भा० प्र०
१७ पदमावत	जायसी	प०जा०
१८ पंजाबी-हिन्दी	दुलीचन्द	पं० हि० दु०
१९ पाइय सद महाण्णवो	हरगोविन्ददास	पा० स म०
२० पाली जातकावली (संग्रह)	बाबूदत्त ठाकुर	पा० जा०
२१ पृथ्वीराज-रासो	चंदबरदाई	पृ० रा०

२२	प्रहलाद नाटक	भवानीदत्त थपलियाल	प्र० ना० भ०
२३	भागवत पुराण		भा० पु०
२४	भारतीय प्राचीन लिपिमाला	गौ० ही० ओझा	भ० प्रा० लि०
२५	मोटप्रकाश	वि० दे० भट्टाचार्य	भो० प्र०
२६	मनुस्मृति		मनु०
२७	महाभारत। वनपर्व।		महा० भा०
२८	मित्रविनोद	शिवदत्त सती	मि० वि०
२९	रघुवंश	कालिदास	र० का०
३०	राजतरंगिणी	कल्हण	रा० त० क०
३१	राजस्थानी भाषा और साहित्य	मोतीलाल मनैरिया	रा० भा० सा०
३२	लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया	सर चार्ज ग्रियर्सन	लि० स० इ०
	अ—वोल्यूम १ पार्ट २	लि० स० ई वो० अ०	१ भा० २ या १/२
	आ— ८ २	,, ,,	८ ,, २ या ८/२
	इ— ८ २	,, ,,	९ ,, २ या ९/२
	ई— ९ ४	,, ,,	९ ,, ४ या ९/४
३३	विद्यापती की पदावली	रामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी	वि० प०
३४	विल्सन फाइलोलाजीकल लेक्चर्स	आर० जी० भंडारकर	वि० फ० ले०
३५	शिवाबावनी	भूषण	शि० भू०
३६	संस्कृत इंगलिश डिक्शनेरी	आपटे	आ० सं० इ० डि०
३७	सदेई	तारदत्त गैरोला	स० ता०
३८	सिद्धराज	मैथिली शरण गुप्त	सि० मै०
३९	सिद्धान्त कौमुदी	भट्टोजी दीक्षित	सि० कौ०
४०	स्कन्द पुराण (केदारखंड)		स्क० के०
४१	हिन्दी भाषा और साहित्य	डा० श्यामसुन्दरदास	श्या०हि०भा०सा०
४२	हिन्दी भाषा का इतिहास	डा० धीरेन्द्र वर्मा	धी० हि०भा० इ०
४३	हिन्दी व्याकरण	कामताप्रसाद गुरू	का० हि० व्या०
४४	हिन्दी विश्वकोष	नगेन्द्रनाथ बसु	न०हि०वि०को०
४५	हिस्ट्री आफ औरंगजेब	यदुनाथ सरकार	हि०आ०औ० य०
४६	व्रजभाषा व्याकरण	डा० धीरेन्द्र वर्मा	धी० व्र० व्या०

नवीन ध्वनि-चिह्न जो देवनागरी में नहीं हैं

अऽ	दीर्घ अ	घऽर (गढ़वाली में)
अां	अ और आ के बीच की ध्वनि	दगाड़ां (कुमाउँनी में)
आऽ	प्लुत आ	लाऽल (अत्यन्त लाल)
इऽ	प्लुत ई	भलीऽ (अत्यन्त भली)
एॅ	ह्रस्व ए	एति (यहाँ)
एऽ	प्लुत ए	सफेऽद (अत्यन्त सफ़ेद)
ऐं	ह्रस्व ऐ	हैं (से अपादान कुमाउँनी)
ऐऽ	प्लुत ऐ	ऐंन मौका (ठीक अवसर पर)
ओ	ह्रस्व ओ	उनरो (उनका), चलणो (चलना)
ओऽ	प्लुत ओ	भलोऽ नौनो (अत्यन्त भला लड़का)
औं	ह्रस्व औ	म्हौतारि (माता)
क़	अलिजिह्वय क, केवल ल् से पूर्व	क़ालो (काला)
ख़	अलिजिह्वय ख, केवल ल् से पूर्व	उख़ाल् (कै)
ग़	अलिजिह्वय ग केवल ल् से पूर्व	ग़ालो (गाली)
न्ह	न की महाप्राण ध्वनि	न्है गयो
म्ह	म की महाप्राण ध्वनि	म्हौतारि
ल़	दन्ताग्र ल	क़ाल़ो
ळ	मूर्धन्य ल	अकाळ (पश्चिमी पहाड़ी बोलियों में)
ल्ह	ल की महाप्राण ध्वनि	ल्हाष,
व़	द्वयोष्ठ्य व	भाव, वह
_	स्वराघात का चिह्न	भितेर

शब्द संकेत

आधुनिक भारतीय आर्य भाषा	आ० भा० आ० भा०
कुमाउँनी	कु०
खड़ी बोली	ख० बो०
गढ़वाली	ग०
प्राकृत	प्रा०
प्राचीन भारतीय आर्य भाषा	प्रा० भा० आ० भा०
ब्रजभाषा	ब्र० भा०
राजस्थानी	राज०
मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा	म० भा० आ० भा०
संस्कृत	सं०

विषय-सूची

१—प्रस्तावना

(अ) नामकरण तथा बोलियाँ

पहाड़ी शब्द पहाड़ पर ई प्रत्यय लगाने से बना हुआ है। संस्कृत में इनि प्रत्यय जोड़कर जो सम्बन्ध सूचक[१] संज्ञायें बनती हैं उनका एक वचन कर्ता का रूप ईकारान्त होता है जैसे—धन-धनिन्-धनी। यद्यपि संस्कृत में यह प्रत्यय किसी देश के निवासी या उनकी भाषा के नामकरण के लिए काम में नहीं लाया जाता किन्तु हिन्दी मे इसी के अनुकरण पर किसी देश विशेष के निवासी या भाषा के नामकरण के लिए 'ई' प्रत्यय जोड़ा जाता है जैसे, पंजाब से पंजाबी या पंजाब के निवासी तथा उनकी भाषा। यह भी सम्भव है कि अरबी और फारसी का ई प्रत्यय कालान्तर मे हिन्दी[२] में भी ग्रहण कर लिया गया हो और उपर्युक्त भाषाओं के समान ही हिन्दी में भी निवासी और भाषा के सूचक-शब्द ई प्रत्यय लगाकर बनने आरम्भ हो गए हों। जैसे, अरब से अरबी, फारस से फारसी, उसी प्रकार हिन्द से हिन्दी या हिन्दवी और पहाड़ से पहाड़ी।

पहाड़ शब्द की व्युत्पत्ति पाषाण[३] से की जाती है। पाषाण—पाखाण या पाहाण पाहन या पाहाड़ अथवा पहाड़। संस्कृत में पाषाण का अर्थ पत्थर होता है हिन्दी मे उससे दो तद्भव शब्द बने हैं–पाहन और पहाड़। पाहन शब्द मूल अर्थ को लिए हुए है। इसके विपरीत पहाड़ शब्द लक्षणा से पर्वत के अर्थ में प्रयुक्त होता है। हिन्दी की प्राचीनतम[४] पुस्तकों में भी पहाड़ शब्द पर्वत के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है किन्तु पहाड़ी शब्द का प्रयोग कहीं नहीं पाया जाया है। अंग्रेजी राज्य की स्थापना के पश्चात् ही इस शब्द का अनेक अर्थों में प्रयोग

---

१. तदस्यास्त्यास्मिन्निति मतुप। ५।२।९४। अत इनिठनौ ५।२।११५ अ०पा०

२. का० हि० व्या० पृ० ४१३ और ४४१।

३. वि. फा. ले.—पृ० ८६।

४. मनो साम पाहार बग पंत, पंती—पृ० रा० 'पद्मावती' समय। कीन्हेसि मेरु खिखिद पहारा—पद्मावत, जायसी ग्रन्थावली पृ० १।

होने लगा। पहाड़ पर ई प्रत्यय जोड़कर पहाड़ी ऊनवाचक संज्ञा बनती है जो अंग्रेजी के हिल्स का रूपान्तर है जैसे, खसिया या जयंतिया की पहाड़ियाँ। इसी प्रकार आवागमन की सुविधा के कारण हिमालय के प्रत्येक भाग—काश्मीर से लेकर आसाम तक के निवासी तथा विन्ध्याचल पर्वत के निवासी, सिन्ध-गंगा-ब्रह्मपुत्र से सिंचित मैदानी भाग मे जीविकोपार्जन के लिए आने लगे। अतः स्थान विशेष को याद रखने की कठिनाई से बचने के लिए सब के लिए मैदान मे एक सामान्य शब्द पहाड़ी का प्रयोग होने लगा। पजाब, उत्तर-प्रदेश, बिहार और बंगाल मे हिमालय के दक्षिणी ढाल पर बसने वाले लोगो को तो पहाड़ी कहा ही जाता है, उनके अतिरिक्त विन्ध्य पर्वत पर रहने वाले लोगो को भी उत्तर-प्रदेश, बिहार और और बंगाल मे पहाड़ी कहा जाता है। कभी कभी तिब्बतियो को जो जाड़े के दिनो में उत्तर-भारत के मैदानो के प्रमुख नगरों में यत्र तत्र दिखाई देते हैं पहाड़ी शब्द से सम्बोधित किया जाता है। किन्तु व्यापक रूप से यह शब्द हिमालय के दक्षिण ढाल पर रहने वालो के लिए ही प्रयुक्त होता है। कई दरिद्र पहाड़ी उत्तर - प्रदेश तथा पजाब के पर्वत के समीप के बडे नगर देहरादून, अम्बाला, मुरादाबाद, बरेली आदि मे घरेलू नौकरो का कार्य करते हैं, अतएव कभी कभी अर्थापकर्ष के कारण पहाड़ी शब्द का अर्थ उपर्युक्त नगरो मे नौकर भी हो जाता है। मैदान के पढ़े लिखे लोग भी जो भाषा-विज्ञान से अनभिज्ञ हैं जिस प्रकार हिमालय के सभी भागो के रहने वालो के लिए पहाड़ी शब्द का प्रयोग करते हैं। उसी प्रकार उनकी भाषा चाहे काश्मीरी हो या भूटानी सबके लिए पहाड़ी शब्द काम मे लाते हैं।

भाषा-विज्ञान के अध्ययन मे इस समानीकरण से काम नही चलता क्योकि काश्मीर से आसाम तक के पर्वतीय भूभाग पर अनेको भाषायें उपभाषायें तथा उनकी बोलियाँ और उपबोलियाँ बोली जाती हैं। पारिवारिक दृष्टि से भी इनमे बहुत भिन्नता है। इनमे से अधिकांश भारोपीय परिवार की भाषायें हैं, किन्तु बीच बीच मे ऐसी भी बोलियाँ हैं जिनका अभी तक वर्गीकरण नही हुआ है। साथ ही काश्मीर से नैपाल तक केवल सीमा पर ही नही देश के अन्तर्गत भी चीनी परिवार की बोलियाँ बोली जाती हैं। नेपाली भूटानी भाषायें समीपवर्तिनी होने पर भी पारिवारिक दृष्टि से एक दूसरी से सर्वथा भिन्न हैं।

भाषा-विज्ञान मे इसीलिए पहाड़ी शब्द इतने व्यापक अर्थ मे नही लिया जाता। आजकल भारतीय आर्यभाषा-परिवार की वे सब भाषायें तथा बोलियाँ जो हिमालय के दक्षिणी ढाल पर रहनेवाले लोग बोलते हैं पहाड़ी कहलाती हैं।

काश्मीरी[1] अपनी समीपवर्तिनी पहाड़ी बोलियों की अपेक्षा दरद बोलियों से अधिक समीप है इसीलिए उसे पहाड़ी भाषा के अतर्गत नही लिया गया है। सिक्कम और भूटान की बोलियां चीनो परिवार से संबंधित हैं। इसलिए उन्हें भी पहाड़ी के अंतर्गत नहीं लिया जाता। पहाड़ी शब्द को इस संकुचित अर्थ में प्रयोग करनेवाले ग्रियर्सन[2] महोदय हैं। आजकल सभी भाषा विज्ञानी पहाड़ी शब्द का प्रयोग इसी संकुचित अर्थ मे करते हैं जो व्यावहारिक अर्थ से सर्वथा भिन्न है। अतः काश्मीर की दक्षिण पूर्वी सीमा पर भद्रवाह से नेपाल के पूर्वी भाग तक बोली जानेवाली भारतीय आर्य-भाषा-परिवार से संबंधित सभी बोलियां आ जाती हैं। इन बोलियों को भी तीन भागों में विभक्त किया गया है। पूर्वी पहाड़ी, मध्य-पहाड़ी और पश्चिमी पहाड़ी। यह विभाजन कुछ सीमा तक भाषा वैज्ञानिक है और कुछ सीमा तक भौगोलिक। पश्चिम की ओर बढ़ने पर पहाड़ी बोलियों पर दरद भाषाओं का प्रभाव अधिक लक्षित होता है और पूर्व की ओर बढ़ने पर तिब्बत-बर्मी परिवार की भाषाओं का प्रभाव बढ़ता जाता है। भौगोलिक दृष्टि से पश्चिमी पहाड़ी की पूर्वतम बोली जौनसारी है। मध्य-पहाड़ी की गढ़वाली बोली और जौनसारी के बीच यमुना नदी प्रायः सीमा का काम करती है। इसी प्रकार मध्य-पहाड़ी की कुमाउंनी बोली और पूर्वी पहाड़ी की पालपा बोली के बीच काली नदी (शारदा) सीमा निर्धारित करती है। पहाड़ों पर अधिक जलवाली शीघ्रगामिनी नदियों पर नावें नही चल सकती। पुल बनाना भी सरल कार्य नही है अतएव यमुना और शारदा जैसी बड़ी नदियां यातायात में भयंकर पर्वतों और घने जंगलों से भी अधिक प्रतिबन्ध उपस्थित करती हैं।

पश्चिमी पहाड़ी की भी कई बोलियां हैं। जौनसारी, सिरमौरी, बघाटी, क्यूंथाली, कुलुई, मंड्याली, चम्याली आदि। इन बोलियों के नाम उन्हीं भूभागों के अनुसार हैं जिसमें ये बोली जाती हैं। पूर्वी पहाड़ी जो नेपाल में बोली जाती है, खसकुरा, नैपाली या गोखाली भी कही जाती है। पूर्वी पहाड़ी की पालपा बोली को छोड़कर अन्य बोलियां नही हैं। खसकुरा समस्त नैपाल मे बोली जानेवाली राजपूताने से आये हुए राजपूत विशेषताओं या उन से पहले आये हुये खस राजपूतों की भाषा है। नेपाल के पूर्वी भाग में खसकुरा से प्रभावित तिब्बत-बर्मी परिवार की बोलियां बोली जाती हैं। मध्य-पहाड़ी की दो मुख्य बोलियां[3] हैं। गढ़वाली और कुमाउंनी।

---

१. लि. स. इ. वौ० ८ भाग २ पृ० २४१।
२. लि. स. इ. वौ० ९ भाग ४ पृ० १८।
३. देखिए मानचित्र आरम्भ में।

कुमाउँनी कुमाऊँ की बोली है। राजनैतिक दृष्टि से कुमाऊँ आजकल एक कमिश्नरी है जिसके अंतर्गत गढ़वाल, अल्मोड़ा और नैनीताल के तीन जिले सम्मिलित हैं। देशी राज्यों के विलीनीकरण के पश्चात् टिहरी गढ़वाल भी कुमाऊँ कमिश्नरी का एक जिला बना लिया गया है। किन्तु भाषा की दृष्टि से गढ़वाल अर्थात गत ब्रिटिश-गढ़वाल और टिहरी गढ़वाल दोनों की भाषा गढ़वाली है[१]। अल्मोड़ा तथा नैनीताल जिले का पहाड़ी भाग कुमाऊँ कहलाता है। और इस भूभाग की भाषा कुमाउँनी कहलाती है।

कुमाउँनी शब्द कुमाऊँ पर ई प्रत्यय लगकर बना है कुमाऊँ कूर्माचल का तद्भव रूप है। कूर्माचलो-कुम्माअओ-कुमाऊँ कुमाऊँ शब्द हिन्दी की प्राचीन[२] तथा मध्यकालीन[३] रचनाओं में भी पाया जाता है। अल्मोड़ा जिले के दक्षिण पूर्व में काणादेव नाम का पर्वत शिखर है जिसकी ऊँचाई ७००० फीट है। कहा जाता है कि इस चोटी पर भगवान विष्णु, कूर्मावतार धारण करते समय तीन वर्ष तक तप करते रहे, अतएव इस चोटी के आप पास का देश कूर्माचल कहलाया। इस पर्वत की बनावट कूर्म के आकार की है। कदाचित् इसी कारण इस पर्वत का नाम कूर्माचल पड़ गया हो। कालान्तर में कूर्माचल या कुमाऊँ शब्द एक विस्तृत भूभाग के लिए प्रयुक्त होने लगा। पुराणों मे हिमालय स्थित प्रदेशों का वर्णन इस प्रकार है।

खण्डा. पंच हिमालयस्य कथिता नेपालकूर्माचलौ।
केदारोऽथ जलंधरोऽथ रुचिरः काश्मीर सञ्ज्ञोऽन्तिमः॥

इस श्लोक मे आए हुए नेपाल, कूर्माचल और काश्मीर नामक प्रदेशों की स्थिति तो आज भी स्पष्ट है किन्तु केदार और जलन्धर नाम के प्रदेश हिमालय में कहीं भी नहीं हैं। गढ़वाल जिले में केदारनाथ का मन्दिर अवश्य है और इसी प्रकार पंजाब के मैदानी भाग मे जलंधर नाम का नगर भी है। ऐसा प्रतीत होता है कि जलन्धर से यहाँ तात्पर्य पंजाब के उत्तर पूर्व का समस्त पहाड़ी प्रदेश है। इसी प्रकार केदारखण्ड से तात्पर्य गढ़वाल से है। 'गढ़वाल' शब्द सोलहवी शताब्दी[४] से पूर्व का नही है। कालिदास ने मेघदूत मे कनखल तक तो अपना भौगोलिक ज्ञान अच्छा दिखाया

---

१. सन् १९६० से मध्य-पहाड़ी भाषी क्षेत्र के गढ़वाल (पौड़ी), गढ़वाल (चमोली गढ़वाल (टिहरी), गढ़वाल (उत्तरकाशी), अल्मोड़ा, पिथौरागढ़ और नैनीताल जिले कर दिए गए हैं।

२. पृथ्वीराज रासो—पद्मावती समय।

३. चित्रावली—उसमान, शिवाबावनी—भूषण।

४. गढ़वाल का इतिहास— अजयपाल— १५५७ १५७२।

है किन्तु उसके आगे हिमालय और अलकापुरी का वर्णन सामान्य रूप से कर दिया है। इससे यही ज्ञात हो सकता है कि वर्तमान गढ़वाल पर उस समय कुबेर का राज्य था। जिसकी राजधानी अलकापुरी थी जो कहीं वर्तमान अलकनन्दा नदी के किनारे स्थित थी। स्कन्दपुराण में केदारखण्ड[1] का जैसा वर्णन दिया गया है वह वर्तमान गढ़वाल से मिलता है। मुसलमान शासकों ने इस पर्वतीय भूभाग में बहुत कम प्रवेश किया उनके आक्रमण शिवालिक (सपादलक्ष) की पहाड़ियों तक ही सीमित रहे। इसी लिए उससे आगे के ऊँचे भूभाग को भी वे शिवालिक ही कहते रहे। मुसलमानों द्वारा रचित इतिहासों में औरंगजेब के समय तक भी गढ़वाल अपनी राजधानी श्रीनगर के नाम से ही प्रसिद्ध था। उस समय के इतिहासवेत्ता गढ़वाल का राजा न लिखकर सदैव श्रीनगर[2] का राजा लिखते रहे। इस भूभाग का नाम गढ़वाल, राजा अजयपाल १५५७-१५७२ के समय में पड़ा। अजयपाल से पूर्व गढ़वाल ५२ छोटे छोटे ठकुरी राजाओं के अधिकार में था जो लूटपाट के भय से पर्वत शिखरों पर गढ़ बना कर रहते थे। अजयपाल ने सब को जीत कर विस्तृत राज्य स्थापित किया तभी से इस भूभाग का नाम गढ़वाल पड़ा। किन्तु बाहरी लोग एक शताब्दी पश्चात् तक भी इसे गढ़वाल न कहकर शिवालिक या श्रीनगर का राज्य कहते रहे। क्योंकि श्रीनगर प्राचीन काल से ही प्रसिद्ध रहा है। पुराणों में इसे श्रीपुर कहा गया है। और यह सुबाहु की राजधानी कही गयी है। स्वर्गारोहण के समय पाण्डव[3] सुबाहु से मिले थे। अत: केदार खण्ड के पश्चात् बहुत समय तक इस भूभाग का नाम श्रीपुर या श्रीनगर रहा। गढ़वाल शब्द गढ़वाल से निकला है। अनेक गढो के कारण ही इस देश का नाम गढ़वाल पड़ा। इसी गढ़वाल शब्द पर ई प्रत्यय जोड़कर गढ़वाली बना है।

आ—क्षेत्र

यह पहले ही बताया जा चुका है कि भद्रवाह से लेकर नेपाल तक बोली जानेवाली सभी भारतीय-आर्य-परिवार की बोलियाँ पहाड़ी कहलाती हैं। इस पहाड़ी भाषा-प्रान्त के उत्तर में तिब्बत है जिसमें चीनी परिवार की बोलियाँ बोली जाती हैं। पूर्व में सिक्कम और दार्जिलिंग की पहाड़ियाँ हैं इनमे तिब्बत वर्मी परिवार की बोलियाँ बोली जाती हैं। पहाड़ी प्रदेश के दक्षिण में भारतीय आर्य भाषाओ का क्षेत्र है। दक्षिण में डोगरी से आरम्भ करके क्रमश: पजाबी, खड़ी बोली, ब्रज, अवधी, भोजपुरी, बिहारी बोली जाती हैं। पश्चिम मे भी डोगरी

१. स्कन्दपुराण-केदार खण्ड—४० वाँ अध्याय। श्लोक २७-२८-२९।
२. यदुनाथ सरकार। हिस्ट्री आफ़ औरंगजेब जिल्द २, पृ० २२५।
३. महाभारत। वनपर्व, अध्याय १४०, श्लोक २५-२६।

कुमाउँनी कुमाऊँ की बोली है। राजनैतिक दृष्टि से कुमाऊँ आजकल एक कमिश्नरी है जिसके अंतर्गत गढ़वाल, अल्मोड़ा और नैनीताल के तीन जिले सम्मिलित हैं। देशी राज्यों के विलीनीकरण के पश्चात् टिहरी गढ़वाल भी कुमाऊँ कमिश्नरी का एक जिला बना लिया गया है। किन्तु भाषा की दृष्टि से गढवाल अर्थात गत ब्रिटिश-गढ़वाल और टिहरी गढवाल दोनों की भाषा गढवाली है[1]। अल्मोड़ा तथा नैनीताल जिले का पहाड़ी भाग कुमाँऊ कहलाता है। और इस भूभाग की भाषा कुमाउँनी कहलाती है।

कुमाउँनी शब्द कुमाँऊ पर ई प्रत्यय लगकर बना है कुमाऊँ कूर्मांचल का तद्भव रूप है। कूर्मांचलो-कुम्भाअओ-कुमाऊँ कुमाऊँ शब्द हिन्दी की प्राचीन[2] तथा मध्य-कालीन[3] रचनाओं मे भी पाया जाता है। अल्मोड़ा जिले के दक्षिण पूर्व में काणा-देव नाम का पर्वत शिखर है जिसकी ऊँचाई ७००० फीट है। कहा जाता है कि इस चोटी पर भगवान विष्णु, कूर्मावतार धारण करते समय तीन वर्ष तक तप करते रहे, अतएव इस चोटी के आस पास का देश कूर्मांचल कहलाया। इस पर्वत की बनावट कूर्म के आकार की है। कदाचित् इसी कारण इस पर्वत का नाम कूर्मांचल पड़ गया हो। कालान्तर में कूर्मांचल या कुमाऊँ शब्द एक विस्तृत भूभाग के लिए प्रयुक्त होने लगा। पुराणो मे हिमालय स्थित प्रदेशों का वर्णन इस प्रकार है।

खण्डाः पंच हिमालयस्य कथिता नेपालकूर्मांचलौ।
केदारोऽथ जलधरोऽथ रुचिरः काश्मीर संज्ञोऽन्तिमः॥

इस श्लोक मे आए हुए नेपाल, कूर्मांचल और काश्मीर नामक प्रदेशों की स्थिति तो आज भी स्पष्ट है किन्तु केदार और जलन्धर नाम के प्रदेश हिमालय में कहीं भी नही हैं। गढ़वाल जिले में केदारनाथ का मन्दिर अवश्य है और इसी प्रकार पंजाब के मैदानी भाग मे जलंधर नाम का नगर भी है। ऐसा प्रतीत होता है कि जलन्धर से यहाँ तात्पर्य पंजाब के उत्तर पूर्व का समस्त पहाड़ी प्रदेश है। इसी प्रकार केदार-खण्ड से तात्पर्य गढवाल से है। 'गढ़वाल' शब्द सोलहवी शताब्दी[4] से पूर्व का नही है। कालिदास ने मेघदूत मे कनखल तक तो अपना भौगोलिक ज्ञान अच्छा दिखाया

---

१. सन् १९६० से मध्य-पहाड़ी भाषी क्षेत्र के गढ़वाल (पौड़ी), गढ़वाल (चमोली गढवाल (टिहरी), गढ़वाल (उत्तरकाशी), अल्मोड़ा, पिथौरागढ और नैनीताल जिले कर दिए गए हैं।

२ पृथ्वीराज रासो—पद्मावती समय।

३. चित्रावली—उसमान, शिवाबावनी—भूषण।

४. गढ़वाल का इतिहास—अजयपाल—१५५७ १५७२।

है किन्तु उसके आगे हिमालय और अलकापुरी का वर्णन सामान्य रूप से कर दिया है। इससे यही ज्ञात हो सकता है कि वर्तमान गढ़वाल पर उस समय कुबेर का राज्य था। जिसकी राजधानी अलकापुरी थी जो कहीं वर्तमान अलकनन्दा नदी के किनारे स्थित थी। स्कन्दपुराण में केदारखण्ड[1] का जैसा वर्णन दिया गया है वह वर्तमान गढ़वाल से मिलता है। मुसलमान शासकों ने इस पर्वतीय भूभाग में बहुत कम प्रवेश किया उनके आक्रमण शिवालिक (सपादलक्ष) की पहाड़ियों तक ही सीमित रहे। इसी लिए उससे आगे के ऊँचे भूभाग को भी वे शिवालिक ही कहते रहे। मुसलमानों द्वारा रचित इतिहासों में औरंगजेब के समय तक भी गढ़वाल अपनी राजधानी श्रीनगर के नाम से ही प्रसिद्ध था। उस समय के इतिहासवेत्ता गढ़वाल का राजा न लिखकर सदैव श्रीनगर[2] का राजा लिखते रहे। इस भूभाग का नाम गढ़वाल, राजा अजयपाल १५५७-१५७२ के समय में पड़ा। अजयपाल से पूर्व गढ़वाल ५२ छोटे छोटे ठकुरी राजाओं के अधिकार में था जो लूटपाट के भय से पर्वत शिखरों पर गढ़ बना कर रहते थे। अजयपाल ने सब को जीत कर विस्तृत राज्य स्थापित किया तभी से इस भूभाग का नाम गढ़वाल पड़ा। किन्तु बाहरी लोग एक शताब्दी पश्चात् तक भी इसे गढ़वाल न कहकर शिवालिक या श्रीनगर का राज्य कहते रहे। क्योंकि श्रीनगर प्राचीन काल से ही प्रसिद्ध रहा है। पुराणों में इसे श्रीपुर कहा गया है। और यह सुबाहु की राजधानी कही गयी है। स्वर्गारोहण के समय पाण्डव[3] सुबाहु से मिले थे। अतः केदार खण्ड के पश्चात् बहुत समय तक इस भूभाग का नाम श्रीपुर या श्रीनगर रहा। गढ़वाल शब्द गढ़वाल से निकला है। अनेक गढ़ों के कारण ही इस देश का नाम गढ़वाल पड़ा। इसी गढ़वाल शब्द पर ई प्रत्यय जोड़कर गढ़वाली बना है।

आ—क्षेत्र

यह पहले ही बताया जा चुका है कि भद्रवाह से लेकर नेपाल तक बोली जानेवाली सभी भारतीय-आर्य-परिवार की बोलियाँ पहाड़ी कहलाती हैं। इस पहाड़ी भाषा-प्रान्त के उत्तर में तिब्बत है जिसमें चीनी परिवार की बोलियाँ बोली जाती हैं। पूर्व में सिक्कम और दार्जिलिंग की पहाड़ियाँ हैं इनमें तिब्बत वर्मी परिवार की बोलियाँ बोली जाती हैं। पहाड़ी प्रदेश के दक्षिण में भारतीय आर्य भाषाओं का क्षेत्र है। दक्षिण में डोगरी से आरम्भ करके क्रमशः पंजाबी, खड़ी बोली, व्रज, अवधी, भोजपुरी, बिहारी बोली जाती हैं। पश्चिम में भी डोगरी

---

१. स्कन्दपुराण-केदार खण्ड—४० वाँ अध्याय। श्लोक २७-२८-२९।
२. यदुनाथ सरकार। हिस्ट्री आफ़ औरंगजेब जिल्द २, पृ० २२५।
३. महाभारत। वनपर्व, अध्याय १४०, श्लोक २५-२६।

जो पंजाबी की ही एक बोली है और काश्मीर जो दरद भाषा वर्ग में से है बोली जाती हैं। काश्मीर की सीमा से लेकर यमुना तक पश्चिमी पहाड़ी भाषा भाषी प्रदेश है जिसके दक्षिण में पंजाबी और खड़ीबोली का प्रदेश है। पूर्वी पहाड़ी काली नदी (शारदा) से आरम्भ होकर नेपाल के पूर्वी भाग तक बोली जाती है। बीच बीच मे तिब्बत-बर्मी परिवार की बोलियाँ भी हैं। नेपाल के दक्षिण मे पीलीभीत जिले में ब्रज, लखीमपुर-खीरी, बहराइच, गोंडा और बस्ती जिलों मे अवधी, गोरखपुर में भोजपुरिया और उत्तरी बिहार मे मैथिली भाषाएँ बोली जाती हैं।

मध्य-पहाड़ी का क्षेत्र पूर्वी तथा पश्चिमी पहाड़ी भाषाओं के क्षेत्र से कम है। इसका विस्तार पश्चिम मे यमुना से लेकर पूर्व मे शारदा तक है। यमुना के उद्गम यमुनोत्तरी से ३० मील दक्षिण तक जहाँ यमुना यातायात मे अधिक बाधक नही है। यमुना के पश्चिम मे भी खाँई पर्गन्ना मे भी मध्य पहाड़ी की गढवाली बोली ही बोली जाती है। यद्यपि खाँई की बोली पर जौनसारी का बहुत अधिक प्रभाव है। पूर्व मे काली (शारदा) यमुना की अपेक्षा अधिक जलवाली नदी है। अतएव वह अपने उद्गम से ही यातायात मे बाधक होने के कारण मध्य-पहाड़ी और पूर्वी पहाड़ी की स्वाभाविक मर्यादा है।

मध्य-पहाड़ी के दक्षिण मे सहारनपुर और बिजनौर के जिलों में खड़ी बोली और मुरादाबाद, रामपुर, बरेली तथा पीलीभीत के जिलो में खड़ीबोली से प्रभावित ब्रजभाषा बोली जाती है। सहारनपुर से लेकर पीलीभीत तक के जिलों का उत्तरी भाग तराई भावर है। जिसमें घने जंगल हैं और सब ऋतुओं में वहाँ मलेरिया का प्रकोप रहता है। यह स्थान सदैव ही डाकुओं या राजनैतिक कारणों से भागे हुए लोगों को छिपने के लिए सुरक्षित स्थान है। इसीलिए खड़ी बोली और ब्रज, मध्य-पहाड़ी पर अपना प्रभाव डालते हुए भी उसका मूलोच्छेद न कर सकी। उत्तर मे तिब्बत मे प्रवेश करने के लिए टिहरी-गढवाल मे निलगघाटा गढवाल मे माणा और नीति घाटा और अल्मोड़ा मे किंगरी विंगरी तथा उटाधुरा के दर्रे हैं। ये सभी घाटे या दर्रे १५००० फीट से अधिक ऊँचे हैं इसीलिए तिब्बत से केवल वर्षा ऋतु में अत्यन्त सीमित मात्रा में व्यापार होता है और तिब्बत-बर्मी परिवार की भाषाओ का मध्य-पहाड़ी बोलियों पर कुछ भी प्रभाव नही पड़ा। तिब्बत की सीमा पर गढवाल मे गंगोत्तरी, यमुनोत्तरी, बद्रीनाथ के आसपास तथा अल्मोड़ा के जोहार पर्गने के लोग दोभाषिये होते हैं। कुछो के पूर्वज तिब्बत के ही रहने वाले थे जो हिमालय की इस ओर आकर बस गये हैं। ये लोग मध्य-पहाड़ी ही नही, खडी बोली को भी समझ लेते हैं और बोल भी सकते हैं।

मध्य-पहाड़ी-भाषा-क्षेत्र के बीच मे केवल अस्कोट के राजियों की भाषा ही ऐसी है जो अनार्य परिवार की है। राजी प्रायः जंगलों मे झोपड़ी बनाकर रहते हैं। इनकी संख्या अब तीन चार सौ से अधिक नही है। ये काठ के बर्तन बनाकर जीविकोपार्जन करते हैं। शिकार मे अभी भी तीर कमान से काम लेते हैं। छोटी छोटी नदियों में मछलियाँ पकड़कर अपनी जीविका चलाते हैं। इस वंश के लोग नेपाल में भी पाये जाते हैं। इनकी भाषा के सम्बन्ध मे अभी कोई खोज नही हुई है किन्तु नेपाल के किरात तो तिब्बत-बर्मी परिवार की भाषा बोलते हैं। राजी अपने को राज-किरात भी कहते हैं। उनकी भाषा मे कुछ शब्द तिब्बत-बर्मी परिवार के हैं, जैसा कि आगे चलकर बताया जायेगा किन्तु भाषा का रूप अस्पष्ट है। सम्भव है कि राजियों की भाषा भी तिब्बत-बर्मी परिवार की हो। यह भी सम्भव है कि यह मुण्डा परिवार की भाषा हो जिसमे तिब्बत-बर्मी शब्द आ गये हो।

देहरादून के उत्तर पूर्वी पहाडी भाग, गढ़वाल (टिहरी), गढ़वाल (उत्तर-काशी), गढवाल (चमोली), गढ़वाल (पौड़ी) मे गढ़वाली तथा अल्मोड़ा, पिथौरागढ़ और नैनीताल जिले के पहाड़ी भाग मे कुमाउँनी बोली जाती है। गढ़वाली बोली का क्षेत्र कुमाउँनी की अपेक्षा अधिक है और उसके बोलनेवालो की संख्या भी अधिक है। गढ़वाली पश्चिम मे टिहरी के खाँई पर्गने से लेकर गढ़वाल के बधाण पर्गने तक अनेक उपबोलियो मे जैसे—टिर्याली-श्रीनगरी-नागपुरिया-राठी बधाणी और सलाणी के रूप मे बोली जाती है। इस भूभाग का क्षेत्रफल लगभग दस हजार वर्ग मील और जनसंख्या लगभग पन्द्रह लाख है। कुमाउँनी गढ़वाल की पूर्वी सीमा से लेकर काली (शारदा) नदी तक बोली जाती है। इस भूभाग का क्षेत्रफल सात हजार वर्गमील और बोलनेवालो की संख्या लगभग बारह लाख है। पहाड़ी प्रान्तो की जनसंख्या का ठीक-ठीक निश्चय करना कठिन है क्योंकि जाड़े की ऋतु मे बहुत बड़ी संख्या मे पहाड़ी लोग मैदान मे उतर आते है। गर्मियो मे पुनः वापिस हो जाते हैं। गढ़वाली और कुमाउँनी के बीच कोई प्राकृतिक सीमा नही है, इसलिए कही गढ़वाली क्षेत्र के अन्तर्गत कुमाउँनी का प्रभाव है और कही कुमाउँनी क्षेत्र पर गढ़वाली का प्रभाव। गढ़वाल के उत्तरीपूर्वी भाग की बोली मंझ-कुमय्याँ कहलाती है। जबकि पाली पछाऊँ और सल्ट की कुमाउँनी बोली पर गढवाली की सलाणी उपबोली का बहुत अधिक प्रभाव है।

इ—ऐतिहासिक परिचय

पहाड़ी बोलियो मे से नेपाली में तो कुछ साहित्य उपलब्ध है किन्तु वह भी अधिक प्राचीन नहीं है। मध्य-पहाड़ी में गत एक सौ वर्षों मे कभी कभी साहित्यिक रचनाएँ होती रही है। पश्चिमी पहाड़ी मे लोक गीतों को छोड़ कर कोई भी साहि-

रियक रचनाएँ नहीं हुई हैं। अतएव, भाषा-विज्ञान की दृष्टि से इन बोलियों का क्रमिक इतिहास प्रस्तुत करना कठिन ही नहीं असम्भव है। इन दुर्गम पर्वतीय प्रदेशों की शृंखलाबद्ध सामाजिक, धार्मिक या राजनैतिक परम्परा भी नहीं है जिसके आधार पर वर्तमान बोलियों पर क्रमागत सामाजिक राजनैतिक तथा धार्मिक परिवर्तनों का प्रभाव दिखाया जा सके। पहाड़ी भाषा क्षेत्र काश्मीर की पूर्वी दक्षिणी सीमा से लेकर सिक्कम की सीमा पर मिला हुआ है। अतएव इस १००० मील से भी अधिक लम्बे क्षेत्र में उपर्युक्त परिवर्तनों की एकरूपता ढूंढना भी व्यर्थ है। इस पर भी कुछ परिवर्तन ऐसे हुए हैं जिनका उल्लेख कहीं-कहीं भारतवर्ष के स्वयं विशृंखल इतिहास में भी पाया जाता है और कहीं पौराणिक कथाओं के रूप में उपलब्ध होता है और जिनकी अभिव्यक्ति इस भूभाग के रहनेवाले भिन्न भिन्न वर्गों के रहन-सहन, आचार विचार तथा शारीरिक गठन आदि से हो जाती है। इन परिवर्तनों में से कुछ तो इतने व्यापक प्रभाव को लेकर आए कि उन्होंने इस भूभाग की बोलियों में आमूल परिवर्तन कर दिया। तात्पर्य यह है कि सूक्ष्मता से अध्ययन करने पर जिस प्रकार वर्तमान सामाजिक तथा धार्मिक पद्धतियों में उसी प्रकार भाषा में भी प्रागैतिहासिकता की झलक दृष्टिगोचर होती है किन्तु उस पर वैज्ञानिक अनुशीलन की भित्ति खड़ा करना असम्भव है।

आर्यों की प्राचीनतम पुस्तकों से ज्ञात होता है कि पहाड़ी भाषा क्षेत्र, धूमिल अतीत में यक्ष, गंधर्व, किन्नर जातियों का निवास-स्थान था। अमरकोष[1] में एक श्लोक इन जातियों के संबंध में इस प्रकार है।

विद्याधरो ऽ प्सरसोयक्षरक्षो गंधर्वकिन्नरा. ।
पिशाचांगुह्यकाः सिद्धाः भूतोऽमी देवयोनयः ॥

यह तो कहा नहीं जा सकता कि आर्यों की यह कोरी कल्पना थी। अप्सराओं को गंधर्वों की पत्नियाँ[2] बताया गया है। वेदों से लेकर पुराणों तक समस्त भारतीय वाङ्मय में गन्धर्वों और यक्षों से आर्यों का घनिष्ठ संबंध बताया गया है। आज भी मालन या मालिनी नदी जिसके किनारे कण्व ऋषि का आश्रम था गढ़वाल से निकलकर बिजनौर जिले में बहती है। नजीबाबाद के उत्तर पश्चिम में प्राचीन खण्डर इसकी याद दिलाते हैं। गढवाल और अल्मोड़ा जिलों में कई स्थानों पर नायक जाति के लोग बसते हैं जिनका मुख्य व्यवसाय नृत्य और संगीत है यद्यपि आर्थिक कठिनाइयों तथा सामाजिक दुर्व्यवस्थाओं के कारण उनकी कन्यायें वेश्या वृति भी

१. अमरकोष-प्रथम कांड-११-श्लोक।
२. आ० सं० इ० हि० पृ० १२४।

धारण कर लेती थीं। इनकी उत्पत्ति के संबंध में नाना कल्पायें[1] की गई हैं किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि ये लोग प्रागैतिहासिक गन्धर्वों के वंशज हैं जिनकी चारित्रिक दुर्बलता प्राचीन काल से ही मेनका-रंभा-उर्वशी आदि अप्सराओं के कार्यों से पुष्ट हो जाती है। इसी प्रकार यक्ष और रक्ष भी कोरी कल्पना नहीं है। कुवेर यक्षों का सम्राट था और उसकी राजधानी अलकापुरी अलकनंदा नदी के किनारे थी। यह नदी आज भी विष्णु प्रयाग से देवप्रयाग मे भागीरथी के संगम तक अलकनंदा कह-लाती है। गढ़वाल में कई स्थानों पर घंडियाल (घंटाकरण) यक्ष की पूजा होती है। कुवेर देवताओं का कोषाध्यक्ष बताया गया है। इसका कारण भी स्पष्ट है। कोलर की स्वर्ण-खानों का पता लगने से पूर्व उत्तर-भारत में स्वर्ण की आयात इसी प्रदेश से होती थी। बद्रीनाथ के समीप की प्राचीन जाति तगण जिसका उल्लेख पाण्डु-केश्वर के ताम्रपत्रों में भी है महाभारत में प्रसिद्ध है। उन्होंने अपने प्रतिनिधि द्वारा महाराजा युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में पिपीलिका स्वर्ण[2] भेंट स्वरूप भेजा था। कुछ ही वर्ष पूर्व तक कर्ण प्रयाग, नन्द प्रयाग आदि स्थानों पर अलकनंदा के बालू को छानकर स्वर्ण तैयार किया जाता था, किन्तु अब इस कार्य को अनार्थिक समझकर बन्द कर दिया गया है। महाभारत काल तक तो आर्यों का दक्षिण देश से सम्बन्ध हो गया था किन्तु अत्यन्त प्राचीनकाल में आर्य जाति को सोना इसी भूभाग से प्राप्त होता था। इसी लिए इस भूभाग के राजा को कुवेर या धनपति कहा जाता था। आर्यों के इन जातियों से युद्ध[3] भी होते थे। ध्रुव के भाई उत्तम का यक्षों द्वारा मारे जाने पर ध्रुव और यक्षो के बीच घोर युद्ध हुआ था। ये लोग अनार्य थे, इसका समर्थन इस बात से हो जाता है कि कुवेर का भाई रावण था। गंगा के मैदान में आर्यों के जनपद थे किन्तु विन्ध्य तथा हिमालय मे तब तक आर्य प्रवेश नहीं कर पाये थे। जातकों में भी इसका उल्लेख है कि दक्षिण द्वीपों में भी यक्षों की बस्तियाँ[4] थी।

पिशाचों के सम्बन्ध में सन्देह की कोई बात नही रह गई है। गुणाढ्य की वृहत्कथा (वड्डकहा) पैशाची प्राकृत में लिखी गई है। काश्मीर का पश्चिमोत्तर प्रदेश पिशाचों का देश था। उनकी भाषा पैशाची का पंजाबी और पश्चिमी तथा मध्य-पहाड़ी भाषा पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है।

---

१. कु. इ. पृ० ६४०।

२. लि० स० इ० ९।४ पृ० ३

३. भागवत पुराण

४. पाली जातकावली—बलाहस्स जातक।

गन्धर्व, यक्ष आदि जातियों के वंशज गढ़वाल तथा कुमाऊँ मे नायक तथा डोम आदि हैं। जोखरा, गुर्जर तथा राजपूतो की क्रमिक दासता के कारण आज इस अधोगति को पहुँच गए हैं। इन आक्रमणकारियो ने उनके सब अधिकार ही नहीं छीन लिए बल्कि उनको चाण्डालों की भाँति गावों से अलग रहने को बाध्य किया। आज भी उनकी बस्तियाँ गावों से अलग एक ओर को होती हैं। ये लोग भूमिहीन है और लोहार दर्जी आदि का व्यवसाय करके अपना जीवन निर्वाह करते हैं। इनके आचार-विचार, रहन-सहन, खस, राजपूत और ब्राह्मणो से जो बिट कहलाते हैं सर्वथा भिन्न है। ये गाय भैंस का मास भी खा लेते हैं। स्त्रियों मे पातिव्रत धर्म को अधिक महत्व नही दिया जाता। अस्वच्छता भी इनका प्रमुख लक्षण है। इनके भाषण का ढग या लहजा भी विशेष प्रकार का होता है। इसीलिए श्री गंगादत्त उपरेती ने अपने पर्वतीय भाषा-प्रकाशक[1] मे इनकी बोली का नमूना बिटो की बोली से भिन्न ही दिया है। गन्धर्व और यक्षो की भाषा के शब्द मध्य पहाड़ी हैं या नहीं, यह कहना कठिन है। सम्भव है कि अनेक देशज शब्द इन्हीं की भाषा के अवशेष हों जो अन्य किसी भारतीय आर्य भाषा मे नही पाये जाते। जैसे गैणा (तारे) गिच्चो (मुख)।

उपर्युक्त जातियो के पश्चात् इस देश मे किरात पुलिन्द तथा तगणो का होना पुराणो में बताया जाता है। तगणो का उल्लेख पहले हो चुका है। किरातो के वंशज अल्मोड़ा जिले के अस्कोट पर्गने मे रहते है। ये अपने को राजकिरात कहते हैं। इनकी बोली मध्य पहाड़ी से सर्वथा भिन्न है। यद्यपि कई कुमाउँनी शब्दों ने भी इनकी बोली मे प्रवेश कर लिया है। किन्तु ये लोग प्रायः जंगलो मे रहते है इसलिए इनकी भाषा मे अधिक विकार उत्पन्न नही हुआ है। इनकी बोली के कुछ शब्द कुमाऊँ के इतिहास[2] मे दिए गए हैं। किन्तु किसी विशेष दृष्टिकोण से न लिखे जाने के कारण वे भाषा के स्वरूप को समझने मे सहायता नही पहुँचाते। कुछ शब्द ऐसे अवश्य हैं जो राजी-बोली, गढ़वाल के धुर उत्तर मे बोली जाने वाली मार्छा बोली तथा अल्मोड़ा के धुर उत्तर की बोली (पुरानी जोहारी) मे समान रूप से पाये जाते हैं। साथ ही वे शब्द तिब्बती भाषा मे भी मिलते हैं।

---

१. प्र. भा. प्र. भूमिका।

२. कु. इ. पृ० ५२३।

म० प०[4]	रा०[1] बो०	मा०[2] बो०	पु० जो०[3] बो०	तिब्बती[4]
पाणी	ती	ती	ती	त्सि
आग	म्है	...	मैं	में
द्वी (दो)	नी	न्हीस	....	ग्निस (निस)
खाना	जा	जैं	हुजैं	जा
आदमी	मी	मी	मी	मी
लकड़ी	....	सीग	सीग	....

उपर्युक्त शब्दों की तालिका देखने से पता चलता है कि राजियों की भाषा या तो तिब्बत-बर्मी परिवार की है और किरातों ने तिब्बत से ही भारत में प्रवेश किया है। क्योंकि नेपाल के किरात आज भी तिब्बत बर्मी भाषा बोलते हैं, अथवा किरात भारतीय अनार्य जाति है जिस पर कालान्तर मे तिब्बत-बर्मी प्रभाव बहुत अधिक मात्रा में पड़ गया है।

महाभारत तथा पुराणों में उत्तराखंड, जहाँ मध्य-पहाड़ी बोली जाती है किरात पुलिंद तथा तगणों का निवास स्थान[6] बताया गया है। किरातों की बोली के सम्बन्ध में विवेचन हो चुका है। पुलिंद और तगणो की भाषा का कोई अवशेष प्राप्त नही है। इतना ही निश्चित है कि किरातों पुलिंदों और तगणो का नाम साथ साथ आया है। ये जातियाँ अवश्य ही एक विशाल परिवार की शाखा रही होंगी।

उपर्युक्त जातियों के अतिरिक्त इस प्रदेश मे बसने वाली एक प्राचीन जाति किन्नर भी है। जिसके सम्बन्ध में कुछ भी निश्चय के साथ नही कहा जा सकता है कि वह तिब्बत-बर्मी परिवार की हो एक जाति थी। यक्ष और गन्धर्व के साथ प्रायः किन्नर शब्द भी आया है। किन्तु किन्नरों को यक्ष गन्धर्वों से भिन्न बताया गया है। इनको अश्वमुख कहते हैं। किन्नर (किम्+नर) शब्द इस बात का द्योतक है कि आर्य लोग इनके सम्पर्क में आकर यह निश्चित नहीं

---

1. कु. इ. पृ० ५२० ।
2. प्र. भा. प्र. पृ० ८५ ।
3. कु. भा. इ. पृ० ६३५ ।
4. मो. प्र. वोकेबुलरी ।
5. म. प.—मध्य पहाड़ी । रा. बो.—राजी बोली । मा. बो—मार्दा बोली ।
   पु. जो. बो.—पुरानी जोहारी बोली ।
6. ग. इ. पृ० २५४ । कुमार संभव १।६ । स्कंद पुराण॰ केदार खण्ड अध्याय २०६ श्लोक ४ ।

कर पाते थे कि पुरुष है या स्त्री क्योंकि मंगोल परिवार के लोगों के मुख पर के बाल (भौंह, मूछें, आदि) कम होते हैं और तिब्बत के लोगों के स्त्री पुरुष के पहनाव में अन्तर भी अधिक नहीं होता है, अतएव गढ़वाल अल्मोड़ा तथा नेपाल की सीमा पर बसने वाले मंगोल-वंशजों को ही किन्नर कहा जाता होगा। महाभारत तथा पुराणों में जितना अधिक उल्लेख यक्ष और गन्धर्वों का है उतना किन्नरों का नहीं है। इसका कारण यही है कि ये लोग पर्वतीय प्रदेश के सुदूर उत्तर, तिब्बत की सीमा पर रहते थे अतएव आर्य लोगों को इनके सम्पर्क में आने का बहुत कम अवसर प्राप्त होता था। कालिदास[1] ने भी रघु की दिग्विजय के प्रसंग में किन्नरों का उल्लेख किया है किन्तु कालिदास के समय तक इस भूभाग पर खसों का अधिकार हो गया था। कालिदास ने भी महाभारत आदि पुस्तकों के आधार पर इस प्रदेश में सिद्ध, विद्याधर और किन्नरों के रहने का उल्लेख किया है। नेपाल में तो मंगोल जाति के लोग पूर्ण रूप से अपना प्रभुत्व जमा बैठे थे। अतएव वहाँ की साधारण जनता में मंगोल रक्त बहुत अधिक मात्रा में है। नेपाल में खस और आर्य भाषा का प्रवेश बहुत पीछे हुआ। आज भी खसकुरा या नैपाली केवल उच्च वर्ग के लोगों की भाषा है। जो वहाँ की राजकीय भाषा है और पश्चिमी नैपाल की बोलचाल की भाषा, किन्तु शेष प्रदेश में तिब्बत-बर्मी परिवार की बोलियाँ बोली जाती हैं। जिनमें से कुछ पर खसकुरा का बहुत प्रभाव पड़ गया है और उन्होंने शब्द ही नहीं किन्तु खसकुरा की रूपात्मकता[2] को भी ग्रहण कर लिया है। गढ़वाल के नीति, माणा तथा नेलंग घाटी के समीप बसने वाले मार्छा और कुमाऊँ के दारमा और मिल्लम घाटों के पास बसने वाले शौक मंगोल परिवार के ही हैं। ये तिब्बती भाषा के साथ साथ गढ़वाली कुमाउँनी भी जानते हैं। तिब्बती को, गढ़वाल और कुमाऊँ के रहने वाले, हुँड़िया बोली कहते हैं। इन लोगों की बोलियाँ गढ़वाली और कुमाउँनी होते हुए भी किसी किसी में बहुत अधिक तिब्बती भाषा के शब्द आ गए हैं। गढ़वाल के मार्छों की भाषा तिब्बती से बहुत अधिक प्रभावित है। इसके विपरीत जोहार के शौकों की भाषा कुमाउँनी से अधिक भिन्न नहीं है। यहाँ मार्छा बोली और वर्तमान जोहारी बोली के उदाहरण[3] दिए जाते हैं।

मार्छा—पैला जमाना काल् पूर्व पश्चिन काल् न्होस भड़व मुलाकात हूँ ज थे। वड़ा हिंज् तिन पुर्व दिशा त कोणा पर हिंज् दोसरो पश्चिन दिसा त हुंकर्नाहिज्।

---

१. रघुवंश ४।७८।

२. लि. स. इ ९।४ पृ० १९।

३. अ. भा. प्रा. पृ० ८५, २८।

जोहरी—ववै दिनन मा द्वी बड़ा हामदार भड़ अथिया। एक धूर्वं का बवाणा मां और दोहरो पछिम का बवाणा मां रौंयी।

सारांश यह है कि मध्य-पहाड़ी पर तिब्बत बर्मी भाषा का प्रभाव नहीं है। केवल सीमा तक ही उसका प्रभाव रहा। मार्छा और पुरानी जोहारी बोलियों पर ही उसका कुछ प्रभाव है। मध्य-पहाड़ी में न तो तिब्बती ही शब्द हैं और न ध्वनियाँ ही।

मध्य-पहाड़ी भाषा प्रदेश पर सबसे बड़ा आक्रमण खस जाति का हुआ। इस प्रदेश मे डोमो को छोड़कर बिटों (सवर्णों) में दो तिहाई से भी अधिक खस लोग हैं। पहले इनके विवाह सम्बन्ध मैदान से आए हुए राजपूतों या यात्रियों से नही होते थे किन्तु अब धीरे धीरे भेद भाव दूर होता जा रहा है। खस लोग सब अपने को खस-राजपूत या केवल राजपूत कहने लगे हैं। खसों के आचार-विचार रहन - सहन शुद्ध राजपूतों या क्षत्रियों से भिन्न हैं। मनु[1] ने भी खस जाति को वृषलत्व प्राप्त क्षत्रिय माना है।

खस राजपूत तथा अन्य राजपूतों में कुछ शारीरिक बनावट की दृष्टि से भेद है। खस राजपूत अधिक ऊँचे कद के नहीं होते किन्तु अन्य राजपूतों से शारीरिक गठन में अधिक दृढ़ होते हैं साथ ही अधिक परिश्रमी और उद्योगशील भी होते हैं। पहाड़ी चट्टानों को तोड़कर हरे भरे खेतों में परिणत कर देना इन्ही का काम है। यह ठीक है कि मैदान से प्रवेश करनेवाले आर्य, ब्राह्मण और क्षत्रियों ने इस पराक्रमी जाति को अपने अधीन कर लिया किन्तु इसका कारण यही है कि मैदान से आने वाले ब्राह्मण-क्षत्रिय अधिक संस्कृत और नये अस्त्र शस्त्रों से अधिक सुसज्जित थे।

खस लोग इस प्रदेश में कब आए और किस दिशा से आए यह प्रश्न भी विवदास्पद रहा है। यद्यपि यह प्रश्न ऐतिहासिक है और इसका भाषा-विज्ञान से सीधा सम्बन्ध नही है किन्तु बिना इस प्रश्न पर कुछ विचार किए हुए मध्य-पहाड़ी बोलियों की कई प्रवृत्तियों के लिए जो अन्य भारतीय आर्य भाषाओं में नहीं हैं कोई कारण ज्ञात नहीं होता। साथ ही यह प्रवृत्तियाँ उन सभी भूभागों की बोलियों में पाई जाती हैं जहाँ खस जाति के लोग बसे हुए हैं।

खस जाति के सम्बन्ध में नाना विचार व्यक्त किए गए हैं। इस जाति का उल्लेख महाभारत[2] और पुराणों[3] में कई स्थानों में हुआ है। मध्यकालीन हिन्दी

---

१. मनुस्मृति १०.—४३, ४४।

२. महाभारत—द्रोणपर्व—अध्याय १२१ श्लोक ४३।

३. पुराण—भागवत—स्कंध २—अध्याय ४—श्लोक १८

साहित्य[1] में भी खस जाति का उल्लेख है। कुछ लोगों का विचार है कि यक्ष शब्द ही कालान्तर में खस शब्द में परिणत हो गया है किन्तु वैदिक या संस्कृत का 'य' प्राकृत या वर्तमान आर्य भाषाओं में 'ज' में परिवर्तित होता है न कि 'ख' में। इसी प्रकार 'क्ष' का ख होता है न कि 'स' या 'श'। प्रमुख बौद्ध-धर्म-ग्रन्थों के आधार पर निर्मित पाली शब्द कोष[2] में खस या खश शब्द नहीं है। यक्ष शब्द का पाली रूप यक्ख है। संस्कृत शब्दकोषों[3] में यक्ष तथा खस शब्द अलग-अलग दिए हुए हैं। कहीं भी उन्हें पर्यायवाची नहीं माना गया है। प्राकृत शब्दकोषों[4] में यक्ष का जक्ख हो जाता है। बौद्ध-धर्म की पुस्तकों में खस शब्द के न आने का कारण यह हो सकता है कि तब तक खस जाति ने या तो भारत में प्रवेश ही नहीं किया था या मध्य और पूर्वी भारत में लोगों से उनका परिचय नहीं हो पाया था जहाँ बौद्ध धर्म-ग्रंथों का निर्माण हुआ। संस्कृत ग्रंथों में यक्ष शब्द जाति के अर्थ में अलकापुरी निवासी कुबेर के सेवकों के लिए ही प्रयुक्त हुआ है। मध्य-पहाड़ी-भाषा-प्रदेश में यक्ष का तद्भव रूप जगस या जगश है। जिसका अर्थ भीमकाय प्रेत होता है।

खस शब्द केवल जाति के अर्थ में प्रयुक्त होता है। यह अलकापुरी के रहनेवालों के लिए नहीं किन्तु समस्त पर्वतीय प्रान्त (नैपाल से लेकर काश्मीर तक) की एक जाति विशेष का द्योतक है। यह भी सम्भव नहीं है कि अलकापुरी के यक्ष ही कालान्तर में समस्त पर्वतीय प्रदेश में फैल गए हों और यक्ष के स्थान पर खस कहलाए गए हों, क्योंकि खस और दरद शब्द प्रायः एक साथ आए हैं। अतएव यह भी स्पष्ट है कि खसों का संबंध भारत की सीमा पर या उससे बाहर रहनेवाले दरदों से ही अधिक है। श्री ग्रियर्सन[5] ने भी उसका भारत में प्रवेश उत्तर पश्चिम से ही बताया है।

श्री हरिकृष्ण रतूड़ी[6], गढ़वाल के आदिम निवासियों पर विचार करते हुए *इस तथ्य पर पहुँचे हैं कि खस जाति असम के खसिया पहाड़ से आई है किन्तु* मेजर गुर्डन[7] का विचार है कि खासी जाति, खस जाति से सर्वथा भिन्न है। नैपाल और

---

१. रामचरितमानस—उत्तरकांड। उसमान—चित्रावली खंड पृ० ४१-१८ दोहा।
२. पाली इंगलिश डिक्शनरी।
३. संस्कृत पाली डिक्शनरी।
४. पा. स. म. पृ० ४२९।
५. लि स इ वा० ९ भाग ४ पृ०-२।
६. ग इ पृ० २६७।
७. दि खासीज़ बाइ मेजर गुर्डन (कु. इ. पृ० ५४२)

असम के बीच के प्रदेश सिक्कम और भूटान से खस जाति का कोई संबंध नहीं है। यदि खस जाति, असम से पश्चिम की ओर बढती और सारे हिमालय को घेर लेती तो बीच के प्रदेशो मे अपना चिह्न किसी न किसी रूप में अवश्य छोड़ती। नैपाल में खस प्रभाव अधिक नहीं रहा यद्यपि उन लोगों ने भी वहां कुछ काल तक पश्चिमी भाग पर राज्य किया। मैदान से आए हुए राजपूत तथा खसो की मिश्रित भाषा ही खसकुरा कहलती है। किन्तु नैपाल के उत्तर-पूर्व की साधारण जनता तिब्बत-बर्मी परिवार की ही बोलियां बोलती है जिस पर खसकुरा का प्रभाव पड़ता जाता है। इसके विपरीत मध्य-पहाड़ी भाषा-प्रदेश से जितना ही उत्तर पश्चिम की ओर बढ़ा जाय उतना ही खस प्रभाव अधिक लक्षित होता है। अतः खस लोगों का संबंध असम की खासी जाति से बताना कोरी कल्पना है।

मध्य-पहाड़ी-भाषा-प्रदेश के दक्षिण या दक्षिण-पश्चिम में सहस्त्रों वर्षों से आर्य जाति बसी हुई है। उनमे भी कभी कोई खस जाति नहीं रही जो मैदान से जाकर पहाड़ पर बसी हो जैसा कि आगे चलकर नवीं दसवी शताब्दी मे मैदान के राजपूत या क्षत्रीय राजाओं ने किया। अतः स्पष्ट है कि गढवाल कुमाऊँ में खस जाति काश्मीर तथा वर्तमान हिमांचल प्रदेश होती हुई आई।

इस जाति के आदिम स्थान के संबंध मे भी मतभेद है। क्योंकि खस खश या कश शब्द पश्चिम में कैस्पियन सागर से लेकर पूर्व मे नैपाल की खसकुरा से जुड़ा हुआ है। बीच मे यह शब्द[1] कई स्थानो, नदियों तथा से भी संबधित है। खस जाति के संबध मे पुराणो ने भ्रम फैलाया है। कई पुराण, जैसे हरिवंश और मार्कंडेय, बहुत पीछे के बने हुए हैं। उनके निर्माण काल तक खस नेपाल तक पहुँच

---

१ अ. काश्मीर को काश्मीर भाषा मे कशीर कहा जाता है जो खशीर से निकला हुआ है क्योंकि दरद भाषाओं में अल्पप्राणत्व और अघोषत्व की प्रवृत्ति है।

आ. खेमात अफगानिस्तान की नदी।

इ. खसु—एक ज ति जो काश्मीर के दक्षिण में झेल और चुनाव के बीच में रहती है।

ई. *काश्मीरी मे खस का मतलब पहाड़ होता है, जो खस का बिगड़ा हुआ* रूप मालूम होता है।

उ. खैस्याल घाटी जो खशालम का बिगड़ा हुआ रूप है, काश्मीर के दक्षिण पूर्व में है।

ऊ. खसिया या खस गढ़वाल कुमाऊँ की एक जाति।

ए. खसकुरा नेपाली भाषा।

गए थे। हरिवंश[१] में खसों का अयोध्या के राजा सगर द्वारा पराजित होना दिखाया गया है। मार्कंडेय[२] पुराण में उनका निवास स्थान तिब्बत और नेपाल के बीच बताया गया है। किन्तु भरत[३] मुनि के नाट्य शास्त्र मे खसों की भाषा बाह्लीक मानी गई है। महाभारत मे उनकी गिनती प्रायः दरदों के साथ की जाती है। आज भी जहाँ खस जाति बसी हुई है वहाँ की भाषा की कुछ प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं। अतः इस जाति का आदि स्थान कैस्पियन सागर से लेकर कश्मीर तक के प्रदेश के बीच में रहा होगा।

यह जाति गढवाल कुमाऊँ मे कब आई, इतिहास के अभाव में इसका उत्तर देना कठिन है। इतना निश्चित है कि इस प्रदेश में राजपूतों के प्रवेश से पूर्व खसों का राज्य था। यह भी स्पष्ट है कि खस भी आर्यों की एक शाखा है जो आर्यों के भारत मे प्रवेश करने के पूर्व ही उनसे अलग हो गई थी। खसो के कई आचार-विचार[४] भारतीय आर्यों के बहुत अधिक सम्पर्क में आने पर भी सर्वथा भिन्न हैं। ये आचार-विचार हिन्दू-मिताक्षरी-न्याय के प्रतिकूल हैं। खस-

---

१. हरिवंश पुराण—लि. स. इ. पृ०।४।९।१४।

२. मार्कंडेय पुराण—अध्याय ५७ श्लोक ५६।

३. भरत मुनि का नाट्य-शास्त्र—अध्याय १७—श्लोक ५२।

४. कु० इ० अ. घरजवाँई—किसी व्यक्ति को अपने घर पर अपनी लड़की के लिए पति रख लेना। किन्तु सम्पति पर लड़की का ही अधिकार होना।

आ. असल और कमसल सन्तान का सम्पति मे बराबर भाग।

इ. झँटेला—पुनर्विवाह में स्त्री के पहले पति से सन्तान का नये पति के सम्पति मे पूरा हक होता है।

ई. सम्पति का बटवारा पुत्रों की संख्या के अनुसार न होकर स्त्रियों की संख्या के अनुसार करना।

उ. टेकुवा—स्त्री विधवा होने पर अपने घर ही पर अपने लिए पुरुष रख ले और सन्तान पूर्व पति के नाम से चले।

ऊ. गोत्र का विशेष ध्यान न रखना।

ए. रुपया देकर स्त्री खरीदना और विवाह के समय पुरुष का विवाह में सम्मिलित होना आवश्यक नही है।

ऐ. यज्ञोपवीत धारण करना आवश्यक नहो है। आज कल क्षत्रियों और राजपूतों की देखादेखी जनेऊ का रिवाज बढ़ता जा रहा है,

प्राकृत, दरद प्राकृत (पैशाची) के समान ही ईरानी और प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं के बीच की भाषा रही होगी, जिसमें कालान्तर में भारतीय आर्य-भाषाओं के प्रभाव से आमूल परिवर्तन हो गया।

दरद भाषाओं की कुछ विशेषतायें[१] जो मध्य पहाड़ी में पाई जाती हैं :—

१—घोष महाप्राण के स्थान पर घोष-अल्पप्राण ध्वनि। यद्यपि यह प्रवृत्ति दरद भाषाओं के समान व्यापक नहीं है। यह परिवर्तन केवल शब्द के मध्य और अन्त में होता है।

हिन्दी	दूध,	बाँधना,	बाघ,	बोझ,	बाढ,	कभी
म० प०	दूद,	बाँदणों,	बाग,	बोजो,	बाड़,	कबी, कबै

२—अघोष महाप्राण के स्थान पर अघोष-अल्पप्राण-ध्वनि का होना।

हिन्दी	सिखाना,	हाथ,	साफसुथरा
म० प०	सिकाणो,	हात,	साफसुतरो।

३—घोष का अघोष हो जाना। यथा, त्रिवेणी-त्रिपेणी, सबला-सपला, कागज-कागच, मदद-मदत, छड़ी-छंटी (कुमाउँनी), चबाणो-चपाणो।

४—र ध्वनि का बीच में आने पर कभी कभी लोप।

मारना-मन्नो, करना-कन्नो।

५—कभी काश्मीरी की भाँति र का परवर्ती व्यंजन से संयोग होने पर लोप न होकर विपर्यय हो जाना।

कर्ण-कंदूड़ (गढ़वाली),

गर्दभ गदुड़ो (गढ़वाली)

६—ल के स्थान पर कभी व हो जाना।

बाल-बाव, बादल-बादव, गलना-गवणो (कुमाउँनी)

७—कश्मीरी मे अन्तिम स्वर या तो अर्द्ध हो जाता है या प्रायः लुप्त हो जाता है। यह प्रवृत्ति कुमाउँनी की खसपरजिया बोली में बहुत अधिक है।

चेला – च्याल् बोझा – ब्वाज्

इन ध्वनिमूलक प्रवृतियों के अतिरिक्त कुछ शब्द ऐसे हैं जो वर्तमान भारतीय आर्य भाषाओं में नहीं पाये जाते या प्रयोग में नहीं आते किन्तु पहाड़ी और दरद भाषाओं में उनका प्रयोग समान रूप से बहुत अधिक होता है।

निम्नांकित शब्द गढ़वाली कुमाउँनी के अतिरिक्त कई अन्य पश्चिमी पहाड़ी

---

१. लि. स. इ. वो० ८ भाग २ पृ० १४९।

बोलियो मे भी पाये जाते हैं। गढवाली-कुमाउँनी तथा दरद भाषाओ के रूप दिये जाते हैं।

हि०	ग०	कु०	काश्मीरी	शिणा	दोसिरानी	रम्बानी	कोहिस्तानी
पैर	खुटो	खुट	कोर	पा	कुर	कुर	कुर
दास	कँमी	कँमि	—	—	कामी	काम	—
चाँद	जून	जून	जुन	यून	—	—	यासून
माँ	बोई	इजा	योज	अजे	ई	अम्मा	यायि
बाल	झकरा	झकारा	—	जकुर	—	—	—
मेढ़ा	खाड़ु	खाड्	काट	करेलो	—	—	—
हूं	छऊं	छुं	छुम्	हनुम्	छिस्	छुस्	सु

इसके अतिरिक्त मध्य पहाड़ी और दरद भाषाओ मे रूपात्मक साम्य भी है जो हिन्दी मे नही पाया जाता। जिस प्रकार गढवाली मे निश्चयात्मक सर्वनाम के पुंलिग और स्त्रीलिंग रूप अलग अलग होते हैं, इसी प्रकार यह बात दरद भाषाओ—काश्मीरी और रम्बानी मे भी पाई जाती है।

	पु०	स्त्री०	पु०	स्त्री०
गढवाली	यो	या	वो, स्यो	वां, स्या
काश्मीरी[1]	यिह्	यिह्	हुह, सुह	होह्
रम्बानी[2]	यिह, यु	एई	ओ	उसेर

जिस प्रकार गढवाली और कुमाउँनी मे निश्चयात्मक सर्वनाम (दूर) के दृष्टिगत और अदृष्टिगत दो भेद होते हैं ऐसे ही काश्मीरी, रम्बानी, गारबीकोहिस्तानी के भी दो भेद होते हैं।

	समीप या दृष्टिगत	बहुतदूर या अदृष्टिगत
कुमाउँनी	तौ	वो
गढ़वाली	स्यो	वो
काश्मीरी[3]	हुह	सुह
रम्बानी[4]	वो	सु
गारबो[5] कोहिस्तानी	ऐ	ऐआं

---

१. लि. स. इ. वो० ८ भाग २ पृष्ट २८०
२. ,, ,, ४६६
३. ,, ,, २८०
४. ,, ,, ४६६
५. ,, ,, ५०८

यहाँ तक तो मध्य-पहाड़ी में अनार्य तथा दरद भाषाओं का प्रभाव दिखाया गया है। अब आर्य-भाषा जैसे राजस्थानी, अवधी आदि का प्रभाव भी देखना चाहिए जिनके बोलनेवाले गढ़वाल कुमाऊँ में जाकर बस गए।

राजपूतों का प्रवेश इस भूभाग मे विक्रम की दसवीं शताब्दी से आरम्भ हुआ किन्तु कई आर्य क्षत्रिय राजाओं ने अपने राज्य खसों के आने से भी पूर्व स्थापित कर लिए थे। कुछों ने खसो के समयय मे भी पर्वतों मे प्रवेश किया। निषध देश के राजकुमार नल का विवाह विदर्भ की राजकुमारी दमयन्ती से होना इस बात का प्रमाण है। निषध[१] देश की राजधानी अलका थी और वह वर्तमान कुमाऊँ का एक भाग था। यह तो सम्भव नही कि कोई आर्य सम्राट अपनी कन्या का विवाह किसी अनार्य राजकुमार खस से करता। नल, पुष्कर आदि नाम भी आर्यों के ही हैं। चाहे यह कथा कल्पित ही हो किन्तु नैषध-चरित्र के रचयिता श्री हर्ष जिनका समय बारहवी शताब्दी का पूर्वार्द्ध है आर्य राजकुमारी की विवाह की कल्पना वृषलत्व प्राप्त खस राजकुमार से कभी न करते यदि उस समय तक गढ़वाल कुमाऊँ मे क्षत्रिय राजाओ के राज्य स्थापित न हो गए होते।

क्षत्रिय शब्द सदैव वर्ण विशेष के अर्थ मे प्रयुक्त होता रहा है। 'क्षतात्किल त्रायत इतिक्षत्रः।' यह आवश्यक नही था कि एक क्षत्रिय, राजा या राजवंश का ही हो। कभी कभी राजन्य शब्द भी क्षत्रिय का पर्यायवाची हो जाता है, किन्तु ऐसे स्थल पर राजन्य का अर्थ भी वर्ण विशेष से ही होता है। इसके विपरीत राजपूत शब्द का अभिधेयार्थ ही राजा की सन्तान है और लक्षणा से उसका अर्थ राजवंश का व्यक्ति हो जाता है। पांचवी छठी शताब्दी के पूर्व राजपुत्र या राजपूत शब्द, क्षत्रिय वर्णवालों के लिए प्रयोग मे नही लाया जाता था। अब हूण आभीर और गुर्जरो के काफिले पर काफिले भारत मे प्रवेश करने लगे और पश्चिमी राजपूताना तथा गुजरात मे अपने राज्य स्थापित करने लगे और हिन्दू धर्म मे प्रविष्ट होने लगे, तो वर्ण व्यवस्था को रूढ़िगत मानने वाले ब्राह्मण इन लोगो को क्षत्रिय कहने के लिए उद्यत नहीं थे। अतएव इनके लिए राजपुत्र या राजपूत शब्द काम में लाया गया जो जो कालान्तर मे क्षत्रिय का पर्यायवाची हो गया। पूर्वी प्रान्तों मे जहाँ राजपूतों का प्रभाव अधिक नहीं बढ़ा क्षत्रिय शब्द को राजपूत शब्द से अधिक गौरव दिया जाता है और इसका प्रयोग भी अधिक होता है। क्षत्रिय शब्द आज भी अधिक महत्व लिए हुए है और द्वितीय वर्ण के लिए प्रयुक्त होता है। राजपूत शब्द विशेष महत्व को नहीं लिए हुए है। गढ़वाल कुमाऊँ

---

१. संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी पृ० ११६४।

में खस लोग भी अपने को राजपूत कहने लगे हैं किन्तु अपने को क्षत्रिय कभी नहीं बताते।

खस राजा पर्वतों के शिखरों पर गढ़ बना कर रहते थे। इनके साथ साथ क्षत्रिय राजा भी जो बौद्धिक और सांस्कृतिक दृष्टि से खसों से बहुत आगे बढ़े हुए थे अपने राज्य स्थापित कर लिया करते थे। और कभी कई खस राजाओं को अपने अधीन कर चक्रवर्ति सम्राट बन जाते थे। इन क्षत्रिय राजाओं में कत्यूरी विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके ताम्रपत्र और शिलालेख भी उपलब्ध हैं। चार ताम्र-पात्र गढ़वाल जिले के पाण्डुकेश्वर में स्थान में जो बद्रीनाथ से ११ मील दक्षिण मे है सुरक्षित हैं। एक विजयेश्वर महादेव कुमाऊँ में है। एक शिलालेख बागेश्वर के मन्दिर में जो सरयू[1] और गोमती[2] के संगम पर है सुरक्षित है। ये सब ताम्रपत्र तथा शिलालेख अशुद्ध संस्कृत भाषा और ब्राह्मी-लिपि में लिखे गए हैं। जिनका रूपान्तर देवनागरी लिपि में हो चुका है। कत्यूरियों का राज्य गढ़वाल और कुमाऊँ पर दीर्घकाल तक रहा। कुमाऊँ में चद राजाओं के उदय के पश्चात् कत्यूरी माण्डलिक राजाओं के रूप में रह गए। अस्कोट का रजवार वंश जो संवत् १२७९[3] में कत्यूर छोड़कर अस्कोठ चला गया था अब भी एक बड़े जागीरदार के रूप में चला आ रहा है। नैपाल के पश्चिमी भाग डोटी में और अल्मोड़ा के पश्चिमी भाग वाली-पछाऊँ मे अभी भी कत्यूरियों के वशज थोकदार[4] हैं। रजवार शब्द भी राजपरिवार से निकला हुआ है। अब कत्यूरी माण्डलिक राजा-मात्र रह गए तब से रजवार कहलाये गए। कुमाऊँ की की भाषा पर कत्यूरियों का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा अतएव यह जान लेना आवश्यक है कि कत्यूरी कौन थे और कब इस प्रदेश में आए।

१-इस वंश के राजाओं के पाँच ताम्रपत्र और शिलालेख उपलब्ध हैं। ताम्रपत्रों पर प्रवर्धमान विजय सवत्सर लिख दिया गया है। किन्तु इस प्रकार का कोई संवत्सर प्राचीन काल मे प्रचलित नहीं था। इन ताम्रपत्रों मे संवत्सरों की गणना अधिक से अधिक पच्चीस और कम से कम पाँच है। और साथ ही परवर्ती राजा के दानपत्र के संवत्सर की संख्या पूर्ववर्ती राजा के दान पत्र के संवत्सर से कम है इससे अधिकांश पुरातत्ववेत्ता इस निष्कर्ष पर पहुचे हैं कि इस सवत्सर को प्रत्येक राजा अपने राज्या-रोहण काल से आरम्भ करता था। इन ताम्रपत्रों के संवतों के आधार पर कत्यूरियों का समय निर्धारण नहीं हो सकता। ये ताम्रपत्र बंगाल के

१-कुमऊँ की एक नदी जो शारदा की सहायक है।

२- ,, जो सरयू की सहायक है।

३-क. इ. पृ० २१५।

४-थोक – इलाका।

सम्राट देवपाल देव के क्रमश: मुंगेर और भागलपुर में प्राप्त शिलालेखों से सर्वथा मिलते जुलते हैं। ये ताम्रपात्र आठवीं और दसवीं शताब्दी[1] के बीच के हैं। कत्यूरियों और पालों के ताम्रपत्रों की शैली और लिपि आदि में ही समानता नहीं है अपितु राजकर्मचारियों[2] के नाम भी समान हैं। अतः कत्यूरियों और पालों का आपस में कुछ संबंध अवश्य था। बस्कोट के रजवारों की वंशावली से पता चलता है कि उनके बस्कोट पहुँचने से पूर्व उनके वंश के पचास राजा राज्य कर चुके थे। यदि प्रत्येक सम्राट का समय कम से कम पंद्रह वर्ष भी लगाया जाए तो कत्यूरी राज्य की स्थापना ईसवी सन् ५०० से पूर्व ही हो चुकी होगी। अतः या तो कत्यूरियों ने अपने ताम्रपत्रों में बंगाल के सम्राटों का अनुकरण किया या कत्यूरियों में से ही किसी ने जाकर पालवंश की स्थापना की जिसका कोई प्रमाण हमारे पास नहीं है। कत्यूरी राजाओं के नाम भी पालवंशीय राजाओं के नामों के समान ही देव या पाल से अन्त होते हैं। जैसे ललित सूरदेव पद्मटदेव या निर्भय पाल, जगतपाल आदि। किसी निश्चित ऐतिहासिक तथ्य के अभाव में हम केवल इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कत्यूरियों का पूर्वी भारत से घनिष्ठ सम्बन्ध था।

२–कत्यूर शब्द कार्तिकेयपुर का अपभ्रंश रूप है। यह वंश कार्तिकेयपुर राजधानी होने के कारण ही कत्यूरी कहलाया। यद्यपि अटकिन्सन्[3] कत्यूरियों का संबंध काबुल के कटौर वंश से जोड़ते हैं किन्तु इसके लिए कोई प्रमाण नहीं है। कत्यूरी अपने को अयोध्या के राजा उत्तानुपात की सन्तान बताते हैं। अयोध्या के सम्राट उत्तानुपात के पुत्र ध्रुव[4] का अलकापुरी पहुँचकर यक्षों को जीतने की कथा प्रसिद्ध है। कत्यूरियों की राजधानी पहले बद्रीनाथ से २० मील दक्षिण जोशीमठ में थी। वहीं से ये कार्तिकेयपुर गए और कत्यूरी कहलाये। संभव है कि ध्रुव के समय से ही जोशीमठ में सूर्यवंशी क्षत्रिय राज्य स्थापित हो गया हो। यह अनुमान इस बात से भी दृढ़ हो जाता है कि कत्यूरी ताम्रपत्रों में राजाओं के आगे कुशली जुड़ा हुआ है। यह कुशल शब्द कोशली का बिगड़ा हुआ रूप प्रतीत होता है। कोशल से आने के कारण पहले ये सम्राट कोशली कहलाते थे अतः यहाँ भी हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मागधी या अर्द्धमागधी भाषा प्रान्त से कत्यूरियों का घनिष्ट सम्बन्ध था।

३–समुद्रगुप्त के समय में कत्यूरी गुप्तों के अधीन मांडलिक राजा बन गए

१–हि० वि० को० (पाल शब्द)
२–क० इ० पृ० २०४–२०५।
३–ऐटकिनसन गजेटियर जि० ११ पृ० ३८१–३८२।
४–भागवत पुराण–स्कंध ४–अध्याय १०।

थे। अयोध्या मे, जो पाटलिपुत्र के पश्चात् गुप्तों का सबसे बड़ा नगर था इस उत्तर देश का शासन चलता था। समुद्रगुप्त की मृत्यु के पश्चात शकों ने कार्तिकेयपुर पर अधिकार कर लिया था। समुद्रगुप्त के पुत्र रामगुप्त और शकों की सेना में कार्तिकेयपुर[1] के पास युद्ध हुआ था। रामगुप्त शकों के द्वारा घेर लिया गया था। किन्तु उसके भाई चन्द्रगुप्त ने जो इतिहास मे चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के नाम से प्रसिद्ध है अपने बुद्धि-कौशल और अमित साहस से शकों को नष्ट कर दिया और कत्यूरी पुनः अयोध्या के अधीन मांडलिक राजा हो गए। उपर्युक्त कथन शृंखला-बद्ध इतिहास के अभाव में बहुत कुछ अनुमान के आधार पर है किन्तु इससे भी हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कत्यूरियों का अर्धमागधी भाषा प्रान्त से सम्बन्ध था।

कत्यूरियों के पश्चात चंद वंशीय क्षत्रिय राजाओं का राज्य कुमाऊँ पर स्थापित हो गया और अंग्रेजी राज्य की स्थापना तक चलता रहा। इनके सम्बन्ध में दो किंवदन्तियां हैं। बहुमत उन्हें, झूंसी[2] से जो प्रयाग के उस पार है, आया हुआ बताते हैं और कुछ लोग उन्हें कन्नौज से आया हुआ कहते हैं। कहा जाता है कि झूंसी से चंदेला राजकुमार सोमचंद सम्वत ७५० के लगभग उत्तराखंड की यात्रा के लिए आए। काली-कुमाऊँ के कत्यूरी राजा ब्रह्मदेव ने अपनी पुत्री का विवाह सोमचंद से कर दिया और एक जागीर भी दे दी इस प्रकार चंदों का एक ठकुरी राज्य स्थापित हो गया। जैसे-जैसे कत्यूरी दुर्बल पड़ते गये चंदों का राज्य-विस्तार होता गया और अन्त मे सारे कुमाऊँ पर उनका प्रभुत्व हो गया। बीच मे २०० वर्षों के लिए खसों ने पुनः पूर्वी कुमाऊँ पर अधिकार कर लिया और चंदों का राज्य केवल तराई भावर तक ही सीमित रहा किन्तु सम्वत ११२२ मे राजा वीर-चंद ने पुनः कुमाऊँ पर अधिकार कर लिया। चंद राजाओं के साथ पाण्डेय, त्रिपाठी आदि ब्राह्मण तथा कई क्षत्रिय और शूद्र भी कुमाऊँ मे बस गये। कुमाऊँ के ब्राह्मण क्षत्रियों मे छुआछूत और खानपान के भेद-भाव गढ़वाल की अपेक्षा अधिक हैं। यह बात भी इसका समर्थन करती है कि ये लोग पूर्वी प्रान्तों के रहने वाले थे जिनके सम्बन्ध मे कहावत प्रसिद्ध है "नौ कन्नौजिया तेरह चूल्हे।" अतः इस बात से भी स्पष्ट हो जाता है कि चंद लोग अर्ध-मागधी प्रान्त से जहाँ अब अवधी भाषा

---

१. ध्रुवस्वामिनी जयशंकर प्रसाद पृ० ८।

२ कु० ई० पृ० २२९।
झूंसीग्राम समागत्य जातः कूर्माचले नृपः।
सोमचंद्रस्तु शीतांशु सदृशः धर्मपूजकः॥

बोली जाती है आए थे इसीलिए अवधी की कई प्रवृत्तियाँ कुमाउँनी में पाई जाती हैं जो इस प्रकार हैं।

१—अवधी की भाँति अंतिम स्वर का ह्रस्वत्व की ओर झुकाव।

ख० बो०	ग०	कु०	अव०
ऐसा	इनो	एसु	अस
कैसो	कनो	कसो कसु	कस
गोरा	गोरो	ग्वार	गोर
सोना	सोनो	सुन	सोन

२—अवधी और कुमाउँनी का अन्य पुरुष एक वचन का रूप समान है।

ख० बो०	ग०	कु०	अवधी
वह	वो	उ	उ

३—खड़ी बोली और गढ़वाली में केवल उत्तम और मध्यम पुरुष सर्वनामों के सम्बन्ध कारक के रूप रकारान्त होते हैं। किन्तु कुमाउँनी में अन्य पुरुष एक वचन का रूप रकारान्त नहीं होता है किन्तु बहुवचन का रूप अवधी की भाँति रकारान्त हो जाता है।

ख० बो०	ग०	कु०,	अव०
उनका	ऊँको	उनरो	ओकर

४—खड़ी बोली और गढ़वाली में बहुवचन बनाने के लिए शब्दों पर ओं जोड़ा जाता है। किन्तु कुमाउँनी में अवधी की ही भाँति न लगाकर बहुवचन बनता है।

ख० बो०	ग०	कु०	अव०
बापो को	बबों कू	बापन कणि	बापन का
बापो का	बबों को	बापन को	बापन केर

५—कुछ शब्द ऐसे हैं जो कुमाउँनी और अवधी में तो व्यावहारिक हैं किन्तु गढ़वाली और खड़ी बोली में वे इतने अधिक व्यावहार में नहीं हैं।

ख० बो०	ग०	कु०	अव०
सिर	मुंड	ख्वारो	कपार
कुत्ता	कुत्ता	कुकुर	कूकर
माँ	मोइ	म्हौतारि	महतारि
बैल	सांड (बल्द)	बलद	बर्दा
बच्चा	नौनो	चेलो	चेलरा

६—कुमाउँनी में कुछ मागधी-प्राकृत का प्रभाव भी है। गढ़वाली की अपेक्षा

कुमाउंनी मे श का प्रयोग अधिक होता है जैसे साहब (हि०), साब (ग०) शंब (कु०), सिह (हि०), स्यू (ग०), श्यु (कु०)

गढ़वाल के खसों के छोटे छोटे ठकुरी राज्य थे जिसके कारण आगे चलकर इस प्रदेश का नाम गढ़वाल हुआ। वहाँ कोई प्रसिद्ध क्षत्रिय राज्य स्थापित नही हुआ। खस राजा कभी स्वतन्त्र और कभी कत्यूरियों के आधीन रहे। उत्तर-काशी (टिहरी) मे विश्वनाथ के मन्दिर के सामने २१ फोट लम्बो एक लोहे की त्रिशूल है। उस पर भी प्राचीन ब्राह्मी लिपि मे प्राकृत मिश्रित संस्कृत मे लेख खुदा हुआ है। किसी माला वशीय राजा ने अपने पुत्र के राज्याभिषेक के उपलक्ष में इसकी स्थापना की है। कत्यूरियों की एक शाखा मल्ल[1] कहलाई जाती थी। संभव है इसी मल्ल या माल वश का कोई राजा कत्यूरियो की ओर से अवनियोगास्थान[2] (देहिक शासक) रहा हो और उसी ने यह त्रिशूल स्थापित किया हो। नाम और संवत् मिट गए हैं। उस समय कदाचित् प्रमार वशीय राजाओ का प्रभाव केवल गढ़वाल के एक सीमित भाग पर था। सम्भव है तब वे भी कत्यूरियों के अधीन माण्डलिक राजा रहे हो प्रमार वश का राज्य प्रसार संवत् १५५७ के पश्चात् हुआ जब महाराज अजयपाल गद्दी पर बैठे।

गढ़वाल कुमाऊँ के निवासी अशोक के पूर्व ही बौद्ध धर्मावलम्बी हो गए थे। उन्ही के लिए अशोक को देहरादून से पश्चिम, २५ मील की दूरी पर, कालसी नामक स्थान पर शिलालेख स्थापित करने की आवश्यकता पड़ी। कालान्तर मे इन प्रान्तो मे बौद्ध धर्म का प्रभाव इतना बढ़ा कि शंकराचार्य को बौद्ध धर्म की समाप्ति के लिए इन दुर्गम प्रदेशों में प्रवेश करना पड़ा। आज भी बौद्ध धर्म के वज्रयान शाखा के अवशेष गढ़वाल कुमाऊँ के शैव साधुओं (जोगी जोगिनियों) के व्यवहार में दिखाई देते हैं। चीनी यात्री ह्वेनसाग हरिद्वार से उत्तर की ओर ब्रह्मपुरी तक गया था। कनिघम[3] ब्रह्मपुरी को गढ़वाल मे बताते हैं। ह्वेनसाग का कहना है कि ब्रह्मपुरी मे कुछ लोग बौद्ध और कुछ लोग हिन्दू हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ब्रह्मपुरी किसी खस राजा की राजधानी थी। उस समय तक इस भूभाग का नाम गढ़वाल नही पड़ा था। गढ़वाल पर खसो का ही प्रभुत्व अधिक रहा। कुमाऊँ की भाँति गढ़वाल पर भारत के पूर्वी प्रान्तों का प्रभाव नही पड़ा। प्रमारवशीय राजाओ का प्रभाव सोलहवी शताब्दी तक थोड़े से भूभाग पर सीमित रहा। फलस्वरूप आज भी गढ़वाल मे खस प्रवृति

---

१. कु० इ० पृ० २१५।
२. कु० इ० पृ० २०४—२०५।
३. ऐनशेन्ट जाग्राफी आफ इण्डिया" कनिघम (ग० इ० पृ० ३३३)।

कुमाऊँ की अपेक्षा अधिक है और बौद्ध धर्म के प्रभाव से छात पात के भेद-भाव भी अधिक नहीं हैं। प्रमार वंशीय राजा पश्चिमी राजपूताने से आए थे अतएव गढ़वाली पर कुमाउँनी की अपेक्षा राजस्थानी प्रभाव भी अधिक पड़ा। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि राजस्थान से लोग कुमाऊँ की ओर नहीं गए। मुसलमानों के आक्रमण के पश्चात् समस्त भारतवर्ष से विशेषकर राजस्थान से लोग पहाड़ी प्रान्तों में आकर बस गए। गढ़वाल में बसने के पश्चात् कई राजपूत जातियाँ कुमाऊँ की ओर[1] गई और कई कुमाऊँ से गढ़वाल में आकर बस गईं। अतएव राजस्थानी प्रभाव कुमाऊँ पर भी पर्याप्त मात्रा मे पड़ा। यहाँ तात्पर्य यही है कि गढ़वाल मे प्रमार-वंशीय राजपूत राजाओं के कारण राजस्थानी प्रभाव कुमाऊँ की अपेक्षा अधिक पड़ा।

प्रमार-वंशीय राजपूत विक्रम की दसवीं शताब्दी में गढ़वाल में आए और पहले पहल चाँदपुर गढ़ मे बसे। चाँदपुर गढ़ से जहाँ प्रमार वंश के प्रथम राजा कनकपाल ने राज्य किया एक शिलालेख[2] प्राप्त हुआ है उसमे कनकपाल का परिचय दिया गया है। चाँदपुर गढ़ के राजा भानुप्रताप ने अपनी कन्या का विवाह कनकपाल से कर दिया और उसे अपना उत्तराधिकारी भी बना दिया। उसके पश्चात् राजपूताने से अनेकों जातियाँ आकर गढ़वाल और कुमाऊँ मे बसती गईं। जिन्होंने गढ़वाल-कुमाऊँ की भाषा में ध्वन्यात्मक ही नहीं रूपात्मक परिवर्तन भी उपस्थित कर दिया। प्रमार लोग गुर्जर थे जिनके सम्बन्ध मे पर्याप्त छान-बीन के पश्चात् देवदत्त आर० भांडारकर[3] ने निम्नांकित तथ्य दिए हैं।

१—गुर्जर शिथियन थे जिन्होंने पाँचवीं शताब्दी में भारत में प्रवेश किया।

२—पाँचवीं शताब्दी के अन्त तक उन्होंने वर्तमान गुजरात, भरौच और बलभी को भी अपने अधीन कर लिया। भिनमाल गुर्जरों की बहुत समय तक राजधानी रही।

३—नवीं शताब्दी तक उन्होंने दो बड़े राज्य, गुजरात के उत्तर पूर्व और दक्षिण-पूर्व में स्थापित कर लिए थे। किन्तु इसके पश्चात् उन्हें पश्चिम से अरबों ने और दक्षिण के क्षत्रियों ने ढकेलना आरम्भ कर दिया। फलस्वरूप सन् ९५३ मे भिनमाल का गुर्जर राज्य छोटे-छोटे राज्यों मे बँट *गया। साँभर* में चौहान, मालव में प्रमार और अणिहलवाड़ा में सोलंकी गुर्जर राज्य

१—कु० इ० पृ० ६०२।

२—शायकाब्दि नव संवत वर्षे विक्रमस्य विधु वशंज पूज्यः।
श्री नृपः कनकपाल इहाप्तः शौनकर्षिकुलजः प्रमरोऽयम्॥

३—गु० लै० लि० जिल्द १ पृष्ठ ३५।

स्थापित हो गये। अतः उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जिस समय मालव के गुर्जर भिनमाल के बड़े गुर्जर राज्य से अलग हुए उसी समय के लगभग कनकपाल मालव से चलकर गढ़वाल पहुँचे।

राजतरंगिनी[1] के अनुसार चनाव के दोनों ओर पंजाब के वर्तमान गुजरात और गुजरानवाला जिलों पर एक गुर्जर राज्य था। जिसको नवीं शताब्दी में कश्मीर के राजा शंकरवर्मन् ने जीता था।

सर जार्ज गियर्सन[2] का कहना है कि काबुल की स्वात नदी से लेकर हजारा, काश्मीर, मरी, जम्मू आदि के तराई के इलाकों में जो पशुपालन करने वाली गुर्जर या गुज्जर जाति है उनकी भाषा राजस्थानी का ही एक रूप है। यद्यपि उसमें स्थानीय शब्द भी आ गए हैं। इससे वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि गुर्जर भारत में तीन ओर से आए। कुछ सिन्ध से गुजरात होते हुए पश्चिमी राजस्थान में पहुँचे, कुछ सीधे सिन्ध से उत्तरी राजस्थान होते हुए आगे बढ़े और कुछ उत्तर की ओर से हिमालय की तराई में होते हुए गढ़वाल कुमाऊँ तक फैल गए। वहीं से कुछ राजस्थान की ओर चले गए और मुसलमानों के आक्रमण के समय हिमांचल-प्रदेश शिवालिक, गढ़वाल और कुमाऊँ की ओर आ गए। चौहान और चालुक्य आदि गुर्जर-वंशीय राजपूत शिवालिक (सपादलक्ष) से ही राजस्थान गए।

प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता विन्सेन्ट स्मिथ[3] का विचार है कि पाँचवीं छठी शताब्दी में हूण, गुर्जर आदि जातियाँ पश्चिम से भारत में आईं। उनमें से जो राज-काज करते रहे वे राजपूत कहलाए और खेती करने वाले जाट कहलाए। जो अपने पुराने व्यवसाय पशुपालन में ही लगे रहे वे गुर्जर, गुज्जर, गुजुर या गूजर नाम से पुकारे जाते रहे। अतः गूजर राजपूत और जाटों में रक्तभेद नहीं है। केवल व्यवसाय भेद है। सोलंकी, प्रमार, चालुक्य और चौहान ये सब जातियाँ गुर्जर या उनसे सम्बन्धित किसी अन्य विदेशी जाति के वंशज हैं। इनका सबसे अधिक प्रभाव पहले-पहल दक्षिणी-पश्चिमी राजपूताना और गुजरात में लक्षित होता है। भारत में बसने पर वे हिन्दू स्त्रियों में विवाह करने लगे और उनके आचार विचार और भाषा ग्रहण करने लगे। वहीं से ये लोग उत्तर और उत्तर-पूर्व की ओर फैल गए। जो राजकार्य और कृषि में लगे रहे उन्होंने स्थानीय भाषा सीख ली किन्तु जो अपने पुराने व्यवसाय, पशुपालन को ही ग्रहण किए रहे वे कुमाऊँ की तराई से लेकर पश्चिम की ओर बढ़ते चले गए और धीरे-धीरे तराई के जंगलों में आगे बढ़ते हुए स्वात तक

१—राजतरंगिणी। कल्हण। ५ तरंग—१४३—१५०।
२—लि० स० इ० वाल्यूम ९ भाग ४ भूमिका।
३—लि० स० इ० जिल्द ९ भाग ४ पृष्ठ ११।

पहुँच गए। उनकी भाषा में अधिक रूपात्मक परिवर्तन नहीं हुआ है यद्यपि स्थानीय शब्द पर्याप्त मात्रा में आ गए हैं। स्मिथ महोदय का विचार है कि गुर्जर लोगों ने काबुल या खैबर दर्रे से भारत में प्रवेश नहीं किया। ग्रियर्सन महोदय के विचारों से स्मिथ महोदय का विचार अधिक समीचीन प्रतीत होता है। ग्रियर्सन महोदय का यह कहना कि चौहान या चालुक्य सपादलक्ष से राजस्थान गए भ्रमपूर्ण प्रतीत होता है। इन जातियों की उत्पत्ति अर्बुद पर्वत पर यज्ञ की अग्नि से बताई जाती है। यह बात भी स्पष्ट संकेत करती है कि अर्बुद पर्वत के आस-पास गुर्जर आदि विदेशी जातियाँ आ आकर बसने लगी। उनको हिन्दू धर्म मे स्थान दिया गया और वे ही राजपूत कहलाये। किन्तु जो बस्तियो से दूर जंगलो में पशुओं को लिए हुए घूमते रहे वे गुर्जर गुजुर या गूजर कहलाए जाते रहे। राज पूताने से सपादलक्ष होते हुए वे तराई के जंगलो मे पशुपालन के लिए पश्चिम की ओर बढ़ते गए और स्वात नदी की घाटी तक पहुँच गए।

इस प्रकार गुर्जर राजपूत भी गुजरात या पश्चिमी राजपूताने तक ही सीमित न रहे। पूर्व में उनका राज्य कन्नौज[1] तक और उत्तर में गढ़वाल[2], सपादलक्ष, हिमाचल प्रदेश तथा पंजाब में नवीं दसवीं शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी तक कई छोटे बड़े राज्यों के रूप में फैल चुका था। बारहवीं शताब्दी में जब पाटन में सिद्धराज सोलंकी-गुर्जर राज्य करता था तब अजमेर के चौहान गुर्जरों का राज्य सपादलक्ष तक फैला हुआ था। अजमेर के सम्राट अरुणोराज को शाकम्भरी भूप या सपादलक्ष-नरेश[3] कहा गया है। शाकम्भरी-देवी का मन्दिर सहारनपुर में है और सपादलक्ष उसी से मिला हुआ पर्वतीय प्रदेश है। चम्बा से लेकर नेपाल तक के पर्वतीय भूभाग पर मुसलमानो के आक्रमण के पश्चात् राजपूताने से बराबर लोग आकर बसते रहे। कुछ तो खसों को जीत कर उनके स्थान पर अपने ठकुरी[4] राज्य स्थापित करते चले गए और कुछ कृषि-कार्य मे लग गए। यह क्रिया सोलहवी सतरहवीं शताब्दी तक चलती रही। गढ़वाल में प्रमार राज्यवंश की स्थापना तो दसवी शताब्दी में हो चुकी थी किन्तु इसके पश्चात् कई राजपूत और ब्राह्मण जातियाँ समय समय पर गढ़वाल कुमाऊँ मे बसती गई। कुछ राजपूत जातियाँ सीधे कुमाऊँ मे आकर बस गई और कुछ गढ़वाल से कुमाऊँ को गई।

---

१. गु० लैं० लि०, जिल्द १ पृ० ३४।
२. गढ़वाल का प्रमार, वंश संवत् ९४५।
३. सिद्धराज, मैथिलीशरण गुप्त।
४. छोटे छोटे राज्य।

अतः मध्य पहाड़ी में ध्वन्यात्मक ही नहीं रूपात्मक परिवर्तन भी उपस्थित हुआ। यहाँ राजस्थानी की—मध्य पहाड़ी से समानता दिखाई जाती है।

१—मध्य पहाड़ी में राजस्थानी या व्रज-भाषा के समान ही हिन्दी के अकारान्त शब्द ओकारान्त हो जाते हैं। कुमाउँनी में शब्द लिखे तो ओकरात जाते हैं किन्तु भाषण में अर्द्ध ओ और कभी कभी अ मात्र रह जाते हैं। जैसे—

हि०	रा०	ग०	कु०
मेरा	मेरो	मेरो	मेरो-म्यार
वह	वो	वो	व
उसका	वेको	वैको	विको
सोना	सोनू	सोनो	सुन
घोड़ा	घोड़ो	घोड़ो	घोड़ो-घ्वाड़

२—न के स्थान पर राजस्थानी में ण का बहुलता से प्रयोग होता है इसके विपरीत व्रज और खड़ी बोली में ण के स्थान पर भी न हो जाता है। मध्य-पहाड़ी में राजस्थानी की भाँति ण की बहुलता है।

हि०	रा०	ग०	कु०
किसान	किसाण	किसाण	किसाण
पानी	पाणी	पाणी	पाणि
बहिन	वाहण	वैण	वेणि
हिरन	हिर्ण	हिरण	हिरण
चलना	चलणू	चलणो	हिटणों

हिन्दी की क्रियार्थ संज्ञायें ना से अन्त होती हैं। मध्य पहाड़ी में वे णो से अन्त होती हैं।

३—मध्य पहाड़ी में राजस्थानी की भाँति स्वतः अनुनासिकता की प्रवृत्ति बहुत अधिक है। गढ़वाली की अपेक्षा कुमाउँनी ने इस प्रवृत्ति को अधिक ग्रहण किया है।

ग० पैंसा, तँय्यार।
कु० पँसा, तँय्यार, गाँति (गात), बाँकि (शेष)।
रा० माँण (मान), असमाँन, रार्धा।

४—हिन्दी की हो धातु के स्थिति-सूचक सहकारी रूपों के स्थान पर राजस्थानी में छ के रूप चलते हैं। यह प्रवृत्ति दरद भाषाओं में भी पाई जाती है। यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि मध्य पहाड़ी ने यह प्रवृत्ति दरद भाषाओं से ग्रहण की या राजस्थानी से। जब होना विकारी अर्थ में आता है तब होना के स्थान पर होणो क्रियार्थ संज्ञा हो जाती है।

वर्तमान काल।

	हि०		रा०		ग०		कु०	
	ए. व.	ब. व.	ए. व.	ब, व	ए. ब	ब व.	ए व.	ब. ब.
उ. पु.—	हूं	हैं	छू	छां	छौं	छवां	छूं	छूं
म. पु—	है	हो	छै	छो	छई	छवा	छै	छौ
अ. प.—	है	हैं	छै	छै	छ	छन्	छ्	छन्

भूत काल

	हि०		रा०		ग०		कु०	
	ए. व,	ब. ब.	ए. व.	ब, व.	ए. ब.	ब. व.	ए. व.	ब. व.
उ. पु —	था	थे	छो	छा	छयो	छया	छियुं	छियां
म. पु.—	था	थे	छो	छा	छयो	छया	छिये	छिया
अ. पु.—	था	थे	छो	छा	छयो	छया	छियो	छिए

हिन्दी, गढ़वाली, कुमाउंनी तथा कुछ दरद बोलियो के वर्तमान काल के एक वचन के रूप दिए जाते हैं। इन में भी हिन्दी को छोड़ छ धातु की प्रधानता है।

हि०	ग०	कु०	काश्मीरी	पोगाली	दो०सि०	रम्बानी
उ—हूं	छौं	छूं	छुस्	छुस	छिस् छि	छुस्
म०-हो	छई	छै	छुह्	छुस्	छिस् छि	छुस्
अ०-है	छ	छ्	छुह्	छु	छु	छु

५—राजस्थानी मे भविष्यत् काल के दो प्रत्यय हैं। सी और लो। ऐसा प्रतीत होता है कि सो प्रत्यय पुराना है और लो प्रत्यय गुर्जर प्रभाव है। मध्य-पहाड़ी मे भी लो ही भविष्यत् काल का प्रत्यय है। खड़ी बोली मे लो के स्थान पर गा हो जाता है।

हि०	रा०	ग०	कु०
उ० पु०—मारूँगा	पिटूंलो	मारूंलो	मारूंलो
म० पु०—मारेगा	पिटेलो	मारिलो	मारले
अ० पु०—मारेगा	पिटैलो	मार्लो	मारलो

दरद बोलियों मे दो दासिराजी में भी भविष्यत् काल का प्रत्यय ला है। उसमें क्रमशः मारालो मरैलो और मरेलो रूप होते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि दोदासिराजी ने यह प्रवृत्ति पश्चिमी पहाड़ो से ग्रहण की है।

१—लि-स-इ बो० १. भाग २ पृ. २५३—२५९

६—कुछ कारक चिह्न भी मध्य-पहाड़ी और राजस्थानी[1] में समान हैं। यद्यपि भिन्न-भिन्न कारकों में प्रयुक्त होते हैं।

रा०	ग०	कु०
सूं (करण)	सणि (सम्प्रदान)	सुं (सम्प्रदान)
थी (अपादान)	थैं (कर्म सम्प्रदान)	थैं (सम्प्रदान)
हूत (अपादान)	—	है (अपादान)
मां (अधिकरण)	मां (अधिकरण)	में (अधिकरण)

मध्य-पहाड़ी बोलियों पर मुसलमानों का प्रभाव बहुत कम पड़ा। मध्य-पहाड़ी भाषा प्रदेश में उनका आधिपत्य कभी नहीं रहा। कुछ अरबी-फारसी और तुर्की शब्द मध्य-पहाड़ी में अवश्य आ गये हैं जिनकी गणना एक प्रतिशत भी नहीं है। भाषा की ध्वनियों और रूपों में कोई नवीनता नहीं आई और न कोई विकार ही उत्पन्न हुआ। समय-समय पर मुसलमानों के भय से अपने धर्म की रक्षा के निमित्त जो ब्राह्मण तथा क्षत्रिय पर्वतों की शरण लेते रहे वे अपने बोलचाल में अरबी-फारसी के शब्द भी साथ में ले गए।

ग०	कु० खवेन
खसम (पति–हीनता सूचक)	(खवामिन्द)
खीसा (जेब)	खीस
मालिक (पति)	मालिक (पति)
सैद (एक प्रकार के भूत-प्रेत जो उन रुहेलों की प्रेतात्मायें हैं जो गढ़वाल पर आक्रमण करते समय मारे गये थे।)	—

अंग्रेजी राज्य स्थापित होने पर अरबी-फारसी के शब्द अदालतों में बहुलता से प्रयोग में आने लगे। इनका उल्लेख शब्द-प्रकरण में किया जायेगा। मध्य-पहाड़ी भाषा प्रदेश में अदालतों की लिपि देवनागरी ही रही किन्तु भाषा पूर्णतः उर्दू हो गयी थी। ग्रामीण लोगों के लिए अदालतों से जो सम्मन भेजे जाते थे उनका आरम्भ इस प्रकार होता था :—"सम्मन बगरज इनफ़िसाल मुकद्दमा"। किन्तु इसके लिए सधारण जनता को उर्दू पढ़ने की आवश्यकता नहीं पड़ी। अतः भाषा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

गोरखों ने सन् १७९० में अल्मोड़ा पर अधिकार कर लिया था और सन्

१–रा. मैं. सं. पृ ३९–४०।

१८०३ में गढ़वाल को भी जीत लिया। कुमाऊं मे आंतरिक कलह के कारण अधिक विरोध नहीं हुआ किन्तु गढ़वाल में उनका पग-पग पर विरोध होता रहा। नेपाल और अल्मोड़ा की सम्मिलित शक्ति के सामने गढ़वाल का विरोध अधिक न चल सका। किन्तु गढ़वालियों के इस विरोध के कारण गोरखों ने गढ़वाल में त्राहि-त्राहि मचा दी थी। मैदान की नादिरशाही और पहाड़ की गोरखाली समानार्थक हैं। कविवर गुमानी पन्त ने गोरखा राज्य के सम्बन्ध मे लिखा है।

दिन-दिन खजाना का भार बोकनाले।
शिव ! शिव !! चुलि में का बाल नं एक कैका ॥
तदपि मुलुक तेरो छोड़ि नैं कोई भाजा।
इति वदति गुमानी धन्य गोरखालि राजा ॥

गोरखा बहुत बड़ी संख्या में देहरादून जिले के पर्वतीय भाग मे बस गये हैं। देहरादून के पहाड़ी भाग की भाषा गढ़वाली थी। वहां गढ़वाली खड़ी बोली और नैपाली के संयोग से एक मिश्रित बोली प्रचलित हुई जिसे शुद्ध गढ़वाली बोलने वाले कठमाली कहते है। शेष भाग में अल्पकालिक गोरखा शासन का कुछ भी प्रभाव नही पड़ा।

सन् १९१५ में अंग्रेजी राज्य की स्थापना हो गई थी। सम्पूर्ण कुमाऊं अंग्रेजों के अधिकार में चला गया। गढ़वाल के भी दो भाग हो गए। अलकनन्दा से पूर्व का गढ़वाल अलग जिला बनाया गया। और उसका नाम ब्रटिश गढ़वाल रक्खा गया। और कुमाऊँ कमिश्नरी में सम्मिलित कर लिया गया। अलकनन्दा से पश्चिम का भाग टिहरी गढ़वाल सन् १९४८ तक देशी राज्य के रूप मे चलता रहा, अब वह भी कुमाऊं कमिश्नरी का जिला बन गया है। देहरादून जो गढ़वाल का ही एक भाग था, अंग्रेजी शासन के आरम्भ से ही मेरठ कमिश्नरी का एक जिला बना लिया गया। अंग्रेजों के आने पर कई यूरोपीय भाषाओं के शब्द मध्य-पहाड़ी में आए, विशेषकर अंग्रेजी पुर्तगाली और फ्रांसीसी शब्द। किन्तु मध्य पहाड़ी में विदेशी ध्वनियों ने प्रवेश नहीं किया।

गढ़वाल कुमाऊं की साहित्यिक भाषा हिन्दी है। पढ़े लिखे लोग प्रायः खड़ी बोली मे ही रचना करते हैं। कभी-कभी कोई मातृ-भाषा का प्रेमी इन बोलियों में रचना कर लेता है। किन्तु राष्ट्रीयता के प्रभाव मे पड़कर अधिकांश लोगों से प्रान्तीयता का भाव दूर होता जा रहा है। मध्य पहाड़ी बोलियों पर हिन्दी का प्रभाव दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। आवागमन की सुविधा के कारण पहाड़ और मैदान का अन्तर बहुत कम हो गया है। स्वास्थ्यप्रद स्थान जैसे मंसूरी, लैंस-डाउन, रानीखेत अल्मोड़ा, नैनीताल आदि नगरों की व्यावहारिक भाषा खड़ी बोली हो गई है।

आज कुमाऊँ गढ़वाल में बसने वाली जातियाँ एक रूप हो गई हैं। किन्तु सूक्ष्मदृष्टि से जिस प्रकार उनके आचार-विचार, रहन-सहन धार्मिक तथा लौकिक विश्वासों में अब भी अन्तर स्पष्ट दिखलाई देता है। इसी प्रकार डोम, खश, राजपूत तथा ब्रह्मण-क्षत्रियों की भाषा में भाषा-विज्ञान की दृष्टि से अन्तर स्पष्ट ज्ञात हो जाता है। इसी लिए श्री गंगादत्त उप्रेती ने पर्वतीय भाषा प्रकाशक में डोमों की बोली उच्च वर्णवालों से अलग रखी है।

डा० चटर्जी[1] तथा ग्रियर्सन महोदय ने खस प्राकृतों का आरम्भ दरद भाषाओं से बतलाया है। भारतीय आर्य भाषाओं के विकास के सम्बन्ध में चटर्जी महोदय ने जो सारिणी[2] दी है उसमें खस प्राकृतों को दरद मानते हुए प्रश्नवाचक का चिन्ह लगा दिया है। गुर्जरों की भाषा[3] को जिन्होंने दसवीं सन् ५०० शताब्दी के पश्चात् पश्चिमी राजस्थान और गुजरात में प्रवेश किया और राजस्थानी तथा गुजराती को इतना अधिक प्रभावित किया और इनके पश्चात् पहाड़ी भाषाओं पर भी प्रभाव डाला, उसे भी चटर्जी महोदय संदेहात्मक रूप से दरद से ही उत्पन्न मानते हैं। मध्य-पहाड़ी का दरद भाषाओं से साम्य पहले ही दिखाया जा चुका है। पहाड़ी प्रदेश में जितना ही हम पश्चिम को बढ़ते है यह साम्य और भी अधिक प्रबल होता जाता है। अतः खस प्राकृत मूलत दरद रही होगी। किन्तु जैसे-जैसे खस लोग पूर्व की ओर बढ़ते गए उनकी भाषा पर भारतीय आर्य भाषाओं का प्रभाव बढ़ता गया। राजस्थान तथा गुजरात की भाषा पर गुर्जर प्रभाव अवश्य पड़ा जिससे नगर अपभ्रंश उत्पन्न हुई किन्तु राजस्थानी तथा गुजराती भाषा मूलतः भारतीय आर्य भाषाएं थीं। दसवीं शताब्दी के पश्चात् राजस्थानी ने पहाड़ी भाषा प्रदेशों में प्रवेश करना आरम्भ किया जिससे पहाड़ी बोलियों में पर्याप्त रूपात्मक तथा ध्वन्यात्मक परिवर्तन उपस्थित हुआ किन्तु पहाड़ी को दक्षिण पश्चिमी राजस्थानी का ही एक रूप[4] मान लेना उचित नहीं है। इसमें संदेह नहीं कि राजस्थानी और पहाड़ी में बहुत साम्य है। किन्तु ध्वन्यात्मक और रूपात्मक भेद भी पर्याप्त हैं।

१. पहाड़ी बोलियों और राजस्थानी में सहायक क्रिया 'छ' है किन्तु दरद भाषाओं में भी सहायक क्रिया 'छ' है जैसा कि पहले बताया गया है। बंगला में 'आछे' सहायक क्रिया है जो स्पष्ट 'छ' से संबंधित है। इसके विपरीत मारवाड़ी में सहायक क्रिया[5] 'हो' है न कि 'छ'।

१—च० बं० लं—पृ ९।
२—च० बं० लं—पृ ६।
३—च० बं० लं—पृष्ठ ८।
४—च० बं० लं—पृष्ठ १०।
५—लिं० स० ६ वाल्यूम ९ भाग २ पृष्ठ १०।

२—राजस्थानी और म० प० बोलियों में भविष्यत् काल का प्रत्यय 'लो' है किन्तु राजस्थानी में 'सी' भी भविष्यत् काल का प्रत्यय है। 'लो' प्रत्यय स्पष्ट ही गुर्जर प्रभाव है जैसा कि पहले बताया गया है। दरद बोली—दोदा-सिराजी में भी 'लो' भविष्यत् का प्रत्यय है। राजस्थानी में 'लो' अपरिवर्तनशील[1] प्रत्यय है जबकि म० प० में लिंग-वचन के अनुसार बदलता रहता है। राजस्थानी में भी केवल मारवाड़ी में 'लो' भविष्यत्[2] का प्रत्यय है जब कि जयपुरी में, हिन्दी के समान ही गा, गे, गी प्रत्यय लगते हैं। कई पहाड़ी बोलियों[3] में भविष्यत् का प्रत्यय ला नहीं है।

३—हिन्दी के अकारान्त शब्द राजस्थानी के समान ही म० प० में ओकारान्त होते हैं किन्तु यही बात व्रजभाषा में भी पाई जाती है। पश्चिमी पहाड़ी की कुछ बोलियों में ओ के स्थान पर हिन्दी के समान आकारान्त अथवा औकारान्त या ऊकारान्त हो जाते हैं। संस्कृत में विसर्ग पुरःसर अकारान्त शब्द प्राकृतों में ओकारान्त हो गये हैं। यही ओ शिथिल स्वर होने के कारण कहीं आपेक्षिक संवृत ऊ हो गया है और कहीं आपेक्षिक विवृत औ यथा व्रजभाषा में। खड़ी बोली में यही औ और अधिक विवृत होकर आ हो गया है अतः इसे म० प० पर राजस्थानी प्रभाव नहीं कहा जा सकता।

४—जहाँ तक सर्वनामों का संबंध है, म० प० के सर्वनाम राजस्थानी की अपेक्षा ख० बो० से अधिक समीप है।

	म० प०	राजस्थानी	हिन्दी
उ० पु०	मैं	हूँ	मैं
म० पु०	तु	तूँ	तू

५—राजस्थानी और म० प० की गढ़वाली बोली में निश्चयवाचक सर्वनामों के पुल्लिंग और स्त्रीलिंग रूप अलग होते हैं यथा, ये—या; यो—वा। खड़ी बोली में एक ही रूप होता है। किन्तु निश्चयवाचक सर्वनाम के पुल्लिंग और स्त्रीलिंग रूप दरद बोलियों में भी होते हैं। ये प्राचीन आर्य भाषा के अवशेष हैं जो कहीं अभी चल रहे हैं और कहीं लुप्त हो गए हैं। अतः इसे राजस्थानी प्रभाव नहीं कहा जा सकता।

६—डा० ग्रियर्सन ने म० प० में पार्श्विक मूर्द्धन्य (ळ) ध्वनि की कल्पनाकर ली है यह भ्रम मात्र है। कदाचित इससे वे राजस्थानी प्रभाव दिखाना चाहते थे

१—लि० स० इ० ९/२ पृष्ठ १२।
२—रा० भा० सा० पृष्ठ ४७।
३—लि० स० इ० ९/२ पृष्ठ १०।

क्योंकि पश्चिमी राजस्थानी में 'ळ' ध्वनि वर्तमान है। गढ़वाली में शुद्ध दन्तोष्ठ्य पार्श्विक अन्तस्थ ध्वनि ल० अवश्य है जिसे वे भ्रम से 'ल्' समझ बैठे जैसा कि उनके दिए हुए उदाहरणों से पता चलता है। कुमाऊंनी में यही ध्वनि व में बदल जाती है। यथा, —काळो, कावो बादल—बादव।

७—म० प० बोलियों में राजस्थानी के समान न के स्थान ण की बहुलता है। किन्तु यह प्रवृति ग्रामीण खड़ी बोली, बांगरू, पञ्जाबी में भी पाई जाती है। यह सब गुर्जर प्रभाव है बांगरू, अतः यदि ग्रामीण खड़ी बोली, पंजाबी का स्वतंत्र अस्तित्व है तो म० प० को ही राजस्थानी की एक बोली क्यों माना जाय।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि म० प० का राजस्थानी से गुर्जर प्रभाव के कारण कुछ बातों में साम्य अवश्य है किन्तु उतना नहीं जितना दरद भाषाओं से। जिस प्रकार मध्य काल में म० प० राजस्थानी से प्रभावित होती रही है उसी प्रकार वर्तमान युग में खड़ी बोली से। म० प० की कुछ विशेष ध्वनियों को छोड़कर शेष खड़ी बोली से मिलती हैं। क्रिया के रूप सर्वनाम और कृदन्तों में भी साम्य है। शब्द समूह भी थोड़ा सा ध्वनि परिवर्तन के साथ एक सा है। वाक्य में पदक्रम भी समान है। अतः म० प० बोलियों का वर्तमान रूप राजस्थानी की अपेक्षा हिन्दी के अधिक समीप है।

२—ध्वनि विचार

(अ) मूल-स्वर

मध्य-पहाड़ी में हिन्दी के सभी मूल स्वर हैं। उनके अतिरिक्त कई ऐसे मूल स्वर भी हैं जो हिन्दी में नहीं पाए जाते। एक स्वर ऐसा है जिसको संस्कृत व्याकरण में स्वीकार तो किया गया है किन्तु संस्कृत-भाषा में उसका प्रयोग कहीं नहीं पाया जाता। इसी प्रकार संस्कृत तथा हिन्दी में स्वरों के प्लुत रूप केवल संबोधन कारक में आते हैं किन्तु मध्य-पहाड़ी में अन्य अवस्थाओं में भी प्लुत स्वर का प्रयोग होता है।

गढ़वाली में अ की दीर्घ ध्वनि अऽ भी है। जैसे घर शब्द में घऽ का उच्चारण काल-अपेक्षाकृत अधिक है। यह ध्वनि भोजपुरी के अतिरिक्त अन्य किसी आर्य भाषा में जिसका वैज्ञानिक अध्ययन हो चुका है नहीं पाई जाती है। कुमाउंनी में भी यह ध्वनि नहीं है। पश्चिमी पहाड़ी की कुछ बोलियों में इसके स्थान पर ह्रस्व ऑ होता है। संस्कृत व्याकरण[१] में दीर्घ अ स्वीकार किया गया है किन्तु व्यवहार में अ का दीर्घ रूप आ मान लिया गया है। और आ को अ का सवर्ण[२] भी माना

१—ऊकालोऽज्झस्वदीर्घप्लुत. १—२—२७. अष्टाध्यायी।

२—तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् १. १ ९. अष्टाध्यायी।

गया है किन्तु आज भाषा विज्ञान इस बात को स्वीकार नहीं करता हैक्योंकि अ और आ में प्रत्यय और उच्चारण स्थान में भेद है। अ अर्द्ध-विवृत-मध्य-स्वर है, जबकि अ विवृत-पश्च-स्वर है। अतः गढ़वाली भाषा की दीर्घ अऽ ध्वनि ही वास्तव में अ की सवर्ण ध्वनि है। न कि आ। यह भ्रम संस्कृत व्याकरणों में और उनके आधार पर लिखे गए हिन्दी व्याकरणों में इस लिए उत्पन्न हो गया है कि पाणिनी के अष्टाध्यायी में अ का दीर्घ रूप तो स्वीकार किया गया है किन्तु भाष्यकारों ने व्यवहार में उसे न पाकर आ को ही अ का दीर्घ रूप मान लिया है। वास्तव में आ को अ के समान ही दीर्घ मूल-स्वर मानना चाहिए। उसका ह्रस्व रूप नहीं है क्योंकि पूर्ण विवृत होने के कारण उसके उच्चारण में अन्य मूल स्वर अ, इ, उ, की अपेक्षा अधिक समय लगता है।

कुमाउंनी में आ और अ के बीच की अन्य ध्वनि अ आ है। इसे आ का ह्रस्व रूप नहीं कहा जा सकता। यह ध्वनि हिन्दी संस्कृत आदि अन्य भारतीय आर्य भाषाओं में नहीं पाई जाती है। जैसे ओपणो। आ का उच्चारण अ और आ के बीच में है। यह ध्वनि कभी कभी गढ़वाली में भी पाई जाती है जैसे रोटो (रोटी)।

गढ़वाली और कुमाउंनी में प्लुत आऽ ध्वनि का प्रयोग भी होता है। यह ध्वनि विशेषण शब्दों में गुण की मात्रा का आधिक्य प्रगट करने के लिए काम में लाई जाती है। जैसे लाऽल यहां ल का प्लुत उच्चारण यह प्रगट करता है कि वस्तु की लाली बहुत अधिक है।

इ, ए, ऐ ओ के ह्रस्व दीर्घ और प्लुत तीनों ध्वनियां पाई जाती हैं। अ, उ, औ की ह्रस्व और दीर्घ दो ध्वनियां हैं। आ की ओ, आ, आऽ तीन ध्वनियां हैं। इन सब का विवेचन यथा स्थान किया जायेगा। गढ़वाली का झुकाव दीर्घत्व की ओर और कुमाउंनी का ह्रस्वत्व की ओर होने से गढ़वाली में ए, ऐ, ओ, औ की दीर्घ ध्वनियों का ही प्रयोग अधिक होता है। इसके विपरीत कुमाउंनी में इनकी ह्रस्व ध्वनियां ही अधिकाश काम में आती हैं।

मध्य पहाड़ी में स्वरों की संख्या २१ हैं। जिन में अ, इ, उ, ऐ, ऐ़, ओं, औं सात ह्रस्व स्वर; अऽ, ओ, आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, नौ दीर्घ स्वर; आऽ, ईऽ, एऽ, ऐऽ, ओऽ, पांच प्लुत स्वर हैं। प्लुत स्वरों का प्रयोग केवल विशेषणों में गुणाधिक्य के लिए ही होता है।

ध्वनि विज्ञानी डेनियल जोन्स ने आठ मान स्वरों की कल्पना की है जिससे यह पता चल जाता है कि किस भाषा की कौन स्वर ध्वनि किस मान-स्वर के समीप पड़ती है। मानस्वरों की कल्पना का आधार-जिह्वा के अग्रभाग, पश्चभाग का ऊपर उठना या जिह्वा का समतल रहना है। अतः इस आधार पर स्वरों के अग्र, मध्य

और पश्च भेद हो जाते हैं। पुनः जिह्वा को ऊपर उठने की,मात्रा के आधार पर स्वरों के संवृत, अर्द्ध संवृत, अर्द्ध-विवृत और विवृत भेद किए जाते हैं क्योंकि जिह्वा जितना ऊपर उठती है उतना ही मुख विवर बन्द हो जाता है। निम्नांकित सारिणी में म० प० स्वर ध्वनियों का स्थूल विवेचन किया गया है क्योंकि सूक्ष्म विवेचन यन्त्रों द्वारा ही हो सकता है।

	अग्र	मध्य		पश्च
संवृत	इ, ई, ईऽ			उ, ऊ
अर्द्ध संवृत	ऐ, ए, एऽ			ओ, ओ, ओऽ
अर्द्ध विवृत	एँ, ए, एऽ	अ, अऽ		ओं, ओ
विवृत			आ	आ, आऽ

१ अः–यह हिन्दी की ही भांति अर्द्ध विवृत मध्य स्वर है। यह ध्वनि दोनो बोलियो मे है तथा शब्द के आदि मध्य और अंत तीनों स्थानो मे पाई जाती है।

आदि – ग० अनोखो, कु० अनोखो (अनोखा)।

मध्य – ग० कुटणी, कु० कुटण (कूटती)।

अंत – ग० बीर, कु० पंक।

शब्द के अन्त मे लिपि मे रहते हुए भी भाषण मे,अ का प्रायः लोप हो जाता है। गढवाली मे बीच का अ भी प्राय. उच्चारण मे लुप्त हो जाता है जैसे – खिच्ड़ी।

कविता मे अ के स्थान पर मात्रा पूर्ति के लिए अऽ भी हो जाता है।

ग०—गाडऽगधेरा खर पंछि पौनऽठया जो जाड़ान सुख होया। (सदेई)

कु०—परवतऽरौणें भलो जन पड़ै मालऽ। (मित्र विनोद)

२ अऽ—यह ध्वनि अ का दीर्घ रूप है। गढवाली मे तथा भोजपुरी की केवल क्रियाओ मे इसकी स्थिति है। अन्य भाषाओ में जिनका वैज्ञानिक अध्ययन हो चुका है। यह ध्वनि नही है।

ग० सऽर (बराबरी), मऽर (मरें), फऽल (फल), नऽल (नाल) घऽर (घर)।

१— अ ध्वनि का मूल—

प्रा० भा० आ० भा० के अ से—

मूल	प्रा०	ग०	कु०
अशोभन	असोहन	अस्वण्या	अस्बोण्यो
ब्राह्मण	ब्राह्मण	बामण	बामण
अन्धकार	अंधार	अन्धेरो	अन्यरो
सम्बल	सम्मल	सामल	सामल

२—प्रा० भा० आ० भा० के आ का स्थानापन्न।

आत्मन —ग० अपणो; कु० आंपणों।

३—प्रा. भा. आ. भा. के इ, उ, ऋ का स्थानापन्न।

बिभीतिक:	बहेडओ	बहेडो (ग) बहयडो (कु)
कुर्कुट:	कुक्कुड	कुखड़ों (ग) कुकड़ों (कु)
कृष्ण·	कण्ह	कनैया (ग—कु)
कौतुकिन्	कोतुकी	कुतकिया (कु)

४—प्रा भा आ भा. के शब्दो तथा विदेशी शब्दो मे स्वर-भक्ति के कारण :—

पर्वत-परवत। रक्त-रकत। मनुष्य-मनख। मित्र-मितर। स्तुति-असतुति। स्नान-असनान।

कत्ल-कतल। हुक्म-हुकम। कार्ड-कारड।

५— विदेशी शब्दो मे भी विशेषकर फारसी शब्दों मे आ के स्थान पर अ।

आसमान-असमान। आबाद-अबाद। आवाज-अवाज।

६— अंग्रेजी के ꟹ और ο के स्थान पर।

एप्रिल-अप्रैल। लैम्प-लम्प। पैट्रोल-पतरौल। ओर्डर्ली अर्दली।

३. आ—विवृत-पश्च-स्वर है। इसका उच्चारण गढ़वाली और कुमाउंनी दोनो मे हिन्दी के ही समान है।

आदि—ग० आएन (आए), कु० आया (आए)।

मध्य—ग० नामी (प्रसिद्ध), कु० नामि।

अन्त:—ग० कोणा (कोना), कु० कुणा।

४. आ अर्द्ध विवृत ईषत्पश्च मध्य स्वर है यह केवल कुमाउंनी में है। यह स्थान और प्रयत्न दोनों दृष्टियो से अ और आ के बीच की ध्वनि है।

आदि—कु० आंपणा (अपना)।

मध्य—कु० चोकलो (चौड़ा)

अन्त—कु० र्‍वाटा (रोटियां

५ आऽ:—आ का प्लुत प्रयोग हिन्दी मे संबोधन, गाने या चिल्लाने मे होता है किन्तु मध्य पहाडी में आ के प्लुत रूप द्वारा गुणातिशय प्रगट किया जाता है। ग० लाऽल; कु० लाऽल, हि० अत्यन्त लाल।

आ ध्वनि का मूल।

१–प्रा. भा. आ. भा. के अ के स्थान पर।

प्रा. भा. आ. भा. के संयुक्त व्यंजन से पूर्व का वर्ण वर्तमान भारतीय आर्य भाषाओं में दीर्घ हो जाता है। यही प्रवृति मध्य-पहाड़ी में भी पाई जाती है।

मूल	प्रा०	ग०	कु०
पत्र	पत्त	पात	पात
कण्टक	कंटग	कांडो	कानो
अश्रु	अस्सु	आंसू	आंसु
अद्य	अज्ज	आज	आज

२— प्रा० भा० आ० भा० के आ से—

मूल	प्रा०	ग०	कु०
माला	माला	माला	माला
आशा	आसा	आंसा	आश
आप्त	आत्त	आवत(संबंधी)	आवत
शृंगाल	सिआलो	स्याल	स्याल

३–हिन्दी के आकारान्त शब्द ग० प० ओकारान्त होते हैं इनका विकारी रूप आकारान्त होता है।

हि०	ग०	कु०
भांजा → भाजे	भाणजो → भाणजा	भाणजो → भाणजा
बड़ा → बड़े	बड़ो → बड़ा	बड़ो → बांड़ा
घड़ा → घड़े	घड़ो → घड़ा	घड़ो → घाड़ा
अपना → अपने	अपणो → अपणा	आंपणो → आपणा

४–किसी शब्द मे यदि अ के पश्चात प्रथम स्वर आ हो तो कुमाउंनी में अ का ओ और परवर्ती आ का भी ओ हो जाता है।

हि०	ग०	कु०
बड़ा	बड़ा(ब० व०)	बांड़ा
सारा	सरा	सारा
दुर्दशा	दुरदशा	दुरदांशा
बकरा	बखरा(ब व)	बाकारा

५—कई विदेशी शब्दों की आ ध्वनि या आ की निकटवर्ती ध्वनि हिन्दी के समान ही आ हो जाती है।

वि०	ग०	कु०
आदमी	आदिम	आदिमि
पादशाह्	बादशा	बाशा
बाजार	बजार	बजार
अहसान	असान	आसान
लार्ड	लाट	लाट
स्टैम्प	इस्टाम	इस्टाम

६—इ—यह संवृत-अग्र-स्वर है। इसके सवर्ण ई और ईऽ है। ई तथा ईऽ का उच्चारण काल इ से क्रमशः दुगना और तिगुना होता है। यह ध्वनि भी शब्द के आदि मध्य और अन्त तीनों स्थानों पर पाई जाती है।

आदि—ग० इच्छा, कु० इच्छा

मध्य—ग० खिचड़ी, कु० खिचड़ी।

अन्त—ग० कणि (को), कु० कणि (को)।

गढ़वाली का दीर्घत्व की ओर झुकाव है अतएव इकारान्त शब्द कम हैं।

मध्य पहाड़ी की इ ध्वनि का मूल—

१—प्रा. भा. आ. भा. के अ की स्थानापन्न।

मूल	पा०	ग०	कु०
अम्लिका	—	इमली	इमलि
कन्दुकः	गेंडुअ	गिन्दु	गिंदवा

२—प्रा. भा. आ. भा. के इ, ई, ऋ, ए, ऐ, की स्थानापन्न।

मूल	प्रा०	ग०	कु०
विट	विट	विट	विट (उच्चवर्ण)
पीडा	पीडा	पिड़ा	पिड़ा
मृग	मिग्ग	मिरग	मिरग
शैवाल	सेवल	सिवलो	सिवलों

३—अपिनिहित और पूर्वस्वरागम के कारण—

स्त्री—इस्तरी (ग०) इस्तरि (कु०)

स्कूल-इस्कूल (ग०) इसकुल (कु०)

स्टैम्प-इस्टाम (ग०) इस्टाम (कु०)

४—विदेशी शब्दों मे—

वि०	जिद्	इज्जत	जामिन	रजिस्टर
ग०}	जिद	इजत	जामिन	रजिस्टर
कु०	जिद	इजत	जामिन	रजिस्टर

७—ई:—कुमाउँनी मे ई ध्वनि का प्रयोग अधिक नही है। इसके विपरीत गढ़वाली मे ई का प्रयोग अधिक और इ का कम है। शब्द के अन्त मे कुमाउँनी मे ई ध्वनि बहुत कम पाई जाती है।

आदि—हिन्दी०, ईश्वर, ग० ईश्वर, कु० ईशर।

मध्य—हिन्दी नीद, ग० नीद, कु० नीन।

अन्त—हिन्दी लड़की, ग० नौनी, कु० जेरई।

कुमाउँनी मे केवल रई लिखने मे लिखा तो जाता है किन्तु भाषण मे रई के स्थान पर रैं हो जाता है।

मध्य पहाड़ी की ई ध्वनि का मूल—

प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के इ से।

मूल	प्रा०	ग०	कु०
शिक्षा	सिक्खा,	सीखा	सीखा
तिक्त	तित्त	तीतो	तितो
विष्ठा	विट्ठा	बीट	बीट

२—प्रा. भा. आ. भा के ई से।

मू०	प्र०	ग०	कु०
क्षीर	खीर	खीर	खीर
शीतल	सीअल	सीलो	शीलो
गीत	गीत	गीत	गीत

३—प्रा. भा. आ. भा. के उ और ऋ से।

मूल	प्र०	ग०	कु०
शुक्ति	सिप्पि	सीप	सीप
पृष्ठ	पिट्ठ	पीठ	पीठ
तृषा	तिसा	तीस	तीस

४—प्रा. भा. आ. भा. की अन्तिम या ध्वनि गढ़वाली मे ई और कुमाउँनी मे इ हो जाती है।

सं०	प्र०	ग०	कु०
क्षत्रियः	खत्तिया	छत्री	छतरि

पानीयम्	पाणिअ	पाणी	पाणि
द्वितीया	दुइआ	दुसरी	दोहरि

५–विदेशी शब्दों में इ या ई की तथा समीपवर्तिनी अन्य ध्वनि की स्थानापन्न।

हि०	ग०	कु०
कीसह	खीसा	खिसा
ज़मीन	जमीन	जमीन
खुशी	खुसी	खुशि
माइल	मील	मील

८–ई ऽ:–इस ध्वनि का प्रयोग केवल विशेषण शब्दों में होता है।

ग० भली ऽ ; कु० भली ऽ ; हि० बहुत भली।

९–उ:—यह संवृत-पश्च-ध्वनि है। गढ़वाली में इसके उच्चारण में होंठों को हिन्दी की अपेक्षा कुछ अधिक आगे बढ़ाना पड़ता है जिससे खिचाव भी अधिक हो जाता है। शीघ्र बोलने में यह अन्तर नहीं रहता। यह ध्वनि भी शब्द के आदि मध्य और अन्त सब स्थानों पर पाई जाती है।

आदि– हि० उखाड़कर, ग० उखाड़ीक, उपाड़िबेर

मध्य– हिन्दी—खुली, ग० खुली, कु० टुट।

अन्त– हि० सत्तू, ग० सातु, कु० सातु

मध्य पहाड़ी की उ ध्वनि का मूल।

१–प्रा० भा० आ० भा० के उ से।

मूल	प्रा०	ग०	कु०
उद्घाटित	उग्घाडिअ	उघाड़ो	उघाडो
कुक्कुट	कुक्कुड	कुखड़ो	कुकड़ो
गुरु	गुरु	गुरु	गुरु

२–प्रा० भा० आ० भा० के ऊ से।

मूल	प्रा०	ग०	कु०
शूकर	सुअर	सुंगर	सुंगर
स्थूल	थुल्ल	ठुल्लो	ठुलो
उपरि	....	उब	उब.
कूप	कूअ	कुओ	कू

३–प्रा० भा० आ० भा० के ऋ, औ तथा व से।

सं०	प्रा०	ग०	कु०
वृद्ध	वुड्ढ	बुड्या	बुड्ड
स्वर	सर	सुर	सुर
लोहकार	लोहआर	लुआर	लुहार

४—विसर्गान्त शब्दो के पूर्व यदि अ हो तो प्राकृत मे विसर्ग का ओ हो जाता है और मध्य पहाड़ी मे उ।

सं०	पा०	ग०	कु०
दीपकः	दिवओ	द्यु	द्यु
कूर्माचलः	कुम्माअओ	कुमाऊँ	कुमउँ (कुमौं)

५—विदेशी शब्दों मे।

वि०	ग०	कु०
उज्र	उजर	उजर
बुक़्चह्	बुकचा	बुकचा
मुकाम	मुकाम	मुकाम

१०—ऊः—यदि ध्वनि उ का दीर्घ रूप है। ऊ ध्वनि शब्द के आदि मध्य में तो हिन्दी के ही समान गढ़वाली और कुमाउँनी दोनो बोलियो मे है किन्तु कुमाउँनी के अन्त मे बहुत कम पाई जाती है। कविता मे मात्रा के लिए ही ऊ ध्वनि अन्त मे पाई जाती है।

आदि—हि० ऊन, ग० ऊन, कु० ऊन।

मध्य—हि० सूँड, ग० सूँड, कु० सून।

अन्त—हि० आप, ग० अफूँ, कु० आपूँ।

मध्य-पहाड़ी की ऊ ध्वनि का मूल—

मूल	प्रा०	ग०	कु०
ऊर्ण	उण्ण	ऊन	ऊन
चूर्ण	चुण्ण	चूनो	चूनो

१—प्र० भा० आ० भा० के अन्य स्वरों तथा व से।

मूल	प्रा०	ग०	कु०
बिन्दु	बिंदु	बूँद	बूँद
शुष्क	सुक्क	सूको,	सुको
लवण	लोण	लूँण	लूँण

२—वर्तमान कृदंतों के अन्त मे।

हि० मारता हूँ, ग० मारदूँ, कु० मारनूँ।

३—विदेशी भाषा के शब्दो मे।

वि०	ग०	कु०
ख़ून	खून	खुन
ज़रूर	जरूर	जरूर
रूल	रूल	रूल

११. एः—यह अर्द्ध-संवृत-अग्र-स्वर है। इसके भी इ के समान ह्रस्व दीर्घ और प्लुत तीन रूप मध्य-पहाड़ी बोलियों में पाए जाते हैं। गढ़वाली में ए की ह्रस्व ध्वनि नहीं है। कुमाउँनी में ए की दीर्घ ध्वनि तभी होती है जब ए का परवर्ती प्रथम स्वर अ हो अन्यथा ए की सदैव ह्रस्व ध्वनि हो रहती है। उपबोलियों में विशेषकर सलपरजिया में ह्रस्व ए के स्थान पर य हो जाता है। यह ध्वनि भी शब्द के आदि मध्य और अन्त सभी स्थानों में पाई जाती है।

आदि—हि० एक, ग० एक, कु० एक।

मध्य—हि० परमेश्वर, ग० परमेश्वर, कु० परमेश्वर।

अन्त—हि० आया, ग० आए, कु० के (कुछ)

म० प० की ए ध्वनि का मूल।

१—प्रा० भा० आ० भा० के ए से।

मूल	प्रा०	ग०	कु०
ज्येष्ठ	जेट्ठ	जेट	जेठ
देश	देस	देस	देस (मैदाना)
देवता	देवता	देवता	द्यबता
क्षेत्र	खेत	खत	खेत
रेल	रेख	रेखड़ो	रेखड़ो

२—प्रा० भा० आ० भाषा के अन्य स्वरों से।

मूल	प्रा०	ग०	कु०
लोहित	लोहित	ल्वे	ल्वे
अभ्यन्तर	भ्यंतर	भितर	भितेर
जाया	जाया	ज्वे	ज्वे
गैरिक	गेरिअ	गेरु	गेरु

३—गढ़वाली में भूतकालिक कृदंत का रूप एकारान्त होता है।

मारे, खाये, पाये।

४—विदेशी शब्दों में।

वि०	ग०	कु०
जेब	जेब	जेब
फ़ेल	फेल	फेल
जेल	जेल	जेहल
कांग्रेस	कांग्रेस	कांग्रेस

१२. एं—यह ध्वनि ए की ह्रस्व ध्वनि है। यह गढ़वाली में नहीं है। ह्रस्वत्व की ओर झुकाव होने के कारण यह ध्वनि कुमाउँनी में ही है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि यदि ए का परवर्ती प्रथम स्वर अ के अतिरिक्त अन्य हो

तो ए का ए हो जाता है जैसे—एक में ए दीर्घ है किन्तु एंकाक (एक का) ए के पश्चात प्रथम स्वर आ के होने से ए-ह्रस्व हो गई है। मेरो में ए के पश्चात स्वर ओ है अतएव ऐ-ह्रस्व है। कुछ उपबोलियों में एं का स्थान य ध्वनि ने ले ली है।

हि०	ग०	कु० (उपबोली)
मेला	मेंला	म्याला
चेला	चेंला	च्याला
मेरा	मेरा	म्यारा

यह प्रवृत्ति गढ़वाली की उपबोली बधाणी और राठी में भी पाई जाती है जो कुमाउँनी की समीपवर्तिनी हैं। शब्द यदि एक वर्ण का है तो अन्त्य ए दीर्घ रहती है। यदि शब्द में एक से अधिक वर्ण हों तो अन्त्य ए-ह्रस्व हो जाती है।

जैसे—ज्वे, स्वे में ज्वे, स्वे एक वर्ण होने से ए दीर्घ है किन्तु उलें, भनुवें में ऐ ह्रस्व है।

१३. एऽ—यह ध्वनि केवल विशेषण शब्दों में पाई जाती है। विशेषण शब्दों में अन्त्य ए नहीं होती अतएव यदि अन्त्य स्वर अ हो और उससे पूर्व का स्वर ए हो तो एऽ प्लुत हो जाती है।

(हि० अत्यन्त सफेद घोड़ा) ग० सफेऽद घोड़ों, कु० सफेऽद घ्वाड़।

१४. ऐ—मध्य-पहाड़ी की बोलियों में ऐ के तीन रूप पाए जाते हैं और तीनों ही मूल स्वर हैं। हिन्दी में भी ऐ संयुक्त स्वर नहीं है केवल तत्सम शब्दों में ही इसका संयुक्त-स्वर के रूप में उच्चारण होता है। यह अर्द्ध-विवृत-अग्र स्वर है। इसका उच्चारण शब्द के आदि मध्य और अन्त तीनों स्थानों पर होता है।

आदि—हि० ऐब, ग० ऐ पड़ो (आ पड़ो), कु० ऐ बेर (आकर)

मध्य—हि० बैर, ग० म्वैर (ग्वाला), कु० पैक (वीर)।

अन्त—हि० पै (पर), ग० गढ़ै (गढ़ाई), कु० लड़ै।

ऐ ध्वनि का मूल—

प्राचीन भारतीय आर्य-भाषा की ऐ (अ+ए) ध्वनि किसी भी आ० भा० भा० भा० नहीं है। इसका स्थान सब में एक तुलनात्मक कम विवृत और कम अग्र ध्वनि ने ले लिया है। जैसे संस्कृत का चैत्र (च्+अ+ए+त्र) हिन्दी में चैत हो गया। अवधी में यह ध्वनि अ+इ के रूप में परिणत हो गई है चैत= चइत। हिन्दी में ऐ मूल स्वर है न कि संस्कृत के समान संयुक्त।

१-प्रा० भा० आ० भा० के ऐ से—

मू०	प्रा०	ग०	कु०
चैत्र	चैत	चैत	चैत
वैर	वेर	वैर	बैर
वैद्य	वेज्ज	बैद	बैद

२–प्रा० भा० आ० भा० या म० भा० आ० भा० के अय आय अव या आव से–

मूल	प्रा०	ग०	कु०
सहगामिनी	सहाइनी	सैणि	सैंणि
रामायण	रामायण	रामैंण	रमैंण
पादलग्न	पायलग्ग	पैलागु	पैलगु
बधिर	बहिर	बैरो	बैरो

३–प्रा. भा. आ. भा के अन्य स्वरों से–

मूल	प्रा०	ग०	कु०
भगिनी	वहिणी	बैंण	बैंणि
मल	मल	मैल	मैल
कोऽपि	कोवि	क्वी	क्वै

४–विदेशी शब्दों से–

वि०	ग०	कु०
ऐब	ऐब	ऐब
कैद	कैद	कैद
कायम	केम्	कैम
लाइन	लैन	लैन
साहब	साब	सैब

५–यदि सम्बन्ध कारक में भेद्य स्त्रीलिंग हो तो भेदक शब्द पर ऐ ज जोड़ दिया जाता है और को या कि का लोप हो जाता है।

राजै चेलि (कु), राजै नोनी (ग०), राजा की लड़की (हि०)

१५. ऐं–यह ध्वनि गढ़वाली तथा हिन्दी में नहीं है। अवधी और कुमउँनी दोनों में पाई जाती है। ऐ की अपेक्षा कम विवृत और अधिक पश्च है। यह ध्वनि कुमाउँनी के परसर्गों तथा पूर्वकालिक कृदंत में पाई जाती है।

कु० आंख है (आंख से)

कु० कुवेंर थैं कयो (कुवेंर से कहा)

कु० भेंट है गइ (भेंट हो गई)

कु० जैंद रछ (गया हुआ है।

१६. ऐ ऽ–यह ध्वनि भी अन्य प्लुत ध्वनियों के समान विशेषण में पाई जाती है। यदि अन्तिम स्वर ऐ ध्वनि हो तो प्लुत हो जाती है। यदि उपान्त्य स्वर हो और अन्तिम स्वर ह्रस्व हो तो ऐ प्लुत हो जाती है। कभी कभी सर्वनाम में तथा संज्ञा शब्दों में भी प्लुत ध्वनि पाई जाती है।

ऐऽन वखत (बिलकुल ठीक समय पर।

छैऽन करणों छ (अत्यन्त चैन कर रहा है)

१७. ओ:– यह हिन्दी की ही भाँति अर्द्धविवृत-पश्च स्वर है। इसके ह्रस्व दीर्घ और प्लुत तीनों रूप पाये जाते हैं। इसका मध्य-पहाड़ी में बहुत अधिक प्रयोग होता है। क्योंकि हिन्दी के आकारान्त शब्द म० प० में ओकारान्त हो जाते हैं। अतएव सभी क्रियार्थ संज्ञायें ओकारान्त होती हैं।

आदि—हि० ओखली, ग० ओखली, कु० उखली

मध्य—हि० गोल, ग० गोल, कु० गोल।

अन्त—ग० दूसरो, कु दोहरो।

१. ओ ध्वनि का मूल—

प्रा. भा. आ. भा के ओ से—

मूल	प्रा०	ग०	कु०
गोष्ठ	गोट्ठ	गोठ	गोंठ
गोत्र	गोत्त	गोतर	गोतर
द्रोण	दोण	दोण (दूण)	दोण(दुण) (अनाज का का परिमाण)

२. प्रा. भा. भा. के अन्य स्वरों से—

मूल	प्रा०	ग०	कु०
मल	मल	मोल	मोव (गोबर)
परुत्	पर	पोर	पोर
पुस्तिका	पोत्थिआ	पोथी	पोथि

३. प्रा. भा. आ. भा. के उव और अव से—

मूल	प्रा०	ग०	कु०
स्वर्ण (सुवर्ण)	सोवण्ण	सोनो	सुन
रुत्	रुअ	रो	रो
अवश्याय	ओसास	ओंस	ओंस

४ विदेशी शब्दों में—

वि०	ग०	कु०
जोर	जोर	जोर
कोतवाल	कोतवाल	कोतवाल
कोट	कोट	कोट
नोट	नोट	नोट

१८. ओ यदि ओ का प्रथम परवर्ती स्वर अ के अतिरिक्त कोई भी हो तो ओ ऑ में परिणत हो जाता है। यही नियम एं के संबंध में भी है। ऑ ध्वनि गढ़वाली कुमाउँनी दोनों में है। कुमाउँनी में आकारान्त और ओकारान्त शब्द के उपान्त्य एं का य हो जाता है। उसी प्रकार ऑ का व हो जाता है। कुमाउँनी

मे यह ध्वनि आरंभ मे आने पर ऊ में परिणत हो जाती है। अन्त में ओ का दोनों बोलियों में प्रायः ओं हो जाता है।

हि०	ग०	कु०
बोझा	बोजों	ब्याजों
मेरा	मेरों	म्यारों
हमारा	हमरों	हमरों
चलना	चलणों	चलणों
लाएगा	लालों	लालों
गया	गए	गयों

१९. ओऽ—विशेषण शब्दों में गुणाधिक्य प्रगट करने के लिए यदि शब्द ओकारान्त हो तो ओ ध्वनि प्लुत हो जाती है।

कालोऽ(अत्यन्त काला), हरोऽ (अत्यन्त हरा), भलोऽ (अत्यन्त भला)

२०. औ—यह अर्द्ध विवृत-पश्च-ध्वनि है। इसका ह्रस्वरूप भी है। गढ़वाली में प्रायः दोनों रूपों और कुमाउंनी मे प्रायः ह्रस्वरूप का ही प्रयोग होता है।

आदि:—ग० औंदी (आती हुई)

मध्य:—ग० चौंडा

अन्त:—लाखड़ों को (लकड़ियों का)

२१. औं:—यह कम विवृत और कम पश्च है यह औ की ह्रस्व ध्वनि है।

आदि:— ग० औं (आंव) कु० औरन है (औरों से)

मध्य:— ग० बचौंला (बचाऐंगे)

कु० म्हौंतारि (माता)

औ ध्वनि का मूल—

प्रा. भा. आ. भा. की ऐ और औ की संयुक्त-ध्वनियाँ प्राकृत काल में ए और ओ की मूल ध्वनियों मे परिवर्तित हो गई हैं। ऐ और औ का भा. भा. आ. भा. मे आगम तो हुआ है किन्तु उच्चारण भेद लेकर। अब वे संयुक्त-ध्वनियाँ नही हैं।

१. हिन्दी की भाँति म० प० में भी औ ध्वनि का आगम मूल स्वर के रूप में हुआ है।

प्रा. भा. आ भा. की अन्य ध्वनियों से

मूल	प्रा०	ग०	कु०
औषधि	ओसध	औखद	औखद
अपुत्रक	अउत्तओ	औतो	औतो
नाभि	णाभि	नौको	नौक

श्वसुर	ससुर	सोरो	सोर
विवाह	बिआह	ब्यों	ब्या

२. संबंध कारक मे भेद्य यदि पुलिंग हो तो का विभक्ति लुप्त हो जाती है और भेदक शब्द पर ओं जुड़ जाता है।

ग० राजौं नौनो, कु० राजौ च्यालो।

३ विदेशी शब्दों में—

वि०	ग०	कु०
औलाद	औलाद	औलाद
मौसिम	मौसिम	मौसिम
शौक	शौक	शौक
पौंड	पौंड	पौंड

। आ । अनुनासिक और अनुस्वार

जब स्वर के उच्चारण मे स्वरतंत्रियाँ तनने की अपेक्षा कुछ ढीली रहती है और वायु स्वर यंत्र से आगे बढ़कर अधिकांश मुख विवर से और अल्पांश नासिका विवर से बाहर निकलती है तब अनुनासिक ध्वनि उत्पन्न होती है। इसका चिन्ह हिन्दी मे अर्द्धचन्द्रबिन्दु है। जैसे गाँव, ऊँचा। यह स्वतंत्र वर्ण नहीं है इसके विपरीत ङ, ञ, ण, न, और म नासिक्य व्यंजन हैं। स्पर्श व्यंजनों मे प्रत्येक वर्ग का अन्तिम व्यंजन नासिक्य होता है। अत. मा० भा० आ० मा० में किसी व्यंजन से संयुक्त पूर्ववर्ती नासिक्य व्यंजन उसी वर्ग का पचम वर्ण होता है। जैसे गङ्गा, पञ्च, कण्ठ, अन्त, सम्पत्ति। अन्तस्थ और ऊष्म व्यंजनो से संयुक्त, पूर्ववर्ती नासिक्य ध्वनि उसके पूर्व स्वर पर एक पूर्ण बिन्दु रखकर प्रकट की जाती है जिसे अनुस्वार कहते है। जैसे—संयम, संवाद, संरक्षा, अंश, हंस, सिंह। कालान्तर मे सुगमता के लिए अन्तस्थ और ऊष्म व्यंजनो की भाँति पूर्ववर्ती संयुक्त नासिक्य व्यंजन के स्थान पर पूर्व स्वर पर अनुस्वार रखने की प्रवृत्ति चल पड़ी। आजकल हिन्दी मे सम्बन्ध के स्थान पर संबंध भी लिखते हैं साथ ही अनुनासिक के स्थान पर शीघ्रता के लिए अनुस्वार ही रख दिया जाता है। अनुस्वार और अनुनासिक के उच्चारण मे अन्तर है। अनुस्वार के उच्चारण मे जिह्वा अनुस्वार से पूर्व स्वर के पश्चात् नासिक्य व्यंजन के उच्चारण स्थान पर पहुँच जाती है और स्पर्शाधिक्य के साथ-साथ तब तक टिकी रहती है जब तक परवर्ती व्यंजन का उच्चारण न हो जाए, क्योंकि नासिक्य व्यंजन और परवर्ती व्यंजन का उच्चारण स्थान एक ही होता है। वायु नाक से ही निकलती है। इसके विपरीत अनुनासिक स्वर के उच्चारण मे परवर्ती व्यंजन के उच्चारण स्थान से जिह्वा शीघ्र हट जाती है। अत स्पर्श भी कम होता है और वायु नाक तथा मुख दोनो से निकलती है।

मध्य-पहाड़ी में स्वर भक्ति के कारण संयुक्त-वर्ण बहुत कम हैं। अतः अनुस्वार जो नासिक्य व्यंजन का ही हलंत रूप है प्रायः नहीं है। केवल तत्सम या विदेशी शब्दों में अनुस्वार पाया जाता है। लिखने में तो अनुस्वार काम में लाया जाता है किन्तु भाषण में नहीं। अनुस्वार का स्थान अनुनासिक स्वर ने ले लिया है। अनुनासिकता के कारण अर्थ परिवर्तन भी हो जाता है। जैसे नौ (नाव), [illegible] ([illegible])। सो (सैकड़ा), सौं (शपथ)। सभी ह्रस्व तथा दीर्घ स्वर अनुनासिक भी होते हैं। प्लुत अनुनासिक नहीं हैं।

	ग०	हि०
अँ	अँग्वाल	अँकवार [illegible]
अऽ	घऽण [बड़ा हथौड़ा]	नहीं है।
आँ	नहो है।	आँठो [illegible]
आँ	जाँदू [जाता हूँ]	जाता हूँ
इँ	पिजड़ो	पिंजरा
ईं	सींग	सिर
उँ	उँघणो	[illegible]
ऊँ	ऊँचो	[illegible]
एँ	[नहीं है]	[illegible]
ऐं	बेंत	[illegible]
ऍं	भैंस	[illegible]
ओं	खाणों	[illegible]
ओं	मोंगा[मूँछ]	[illegible]
औं	मौं [भ्रू]	[illegible]
औं	मौरी	नहीं है।

मध्य-पहाड़ी की अनुनासिक ध्वनि का रूप–

१–स्वतः अनुनासिकता की प्रवृत्ति–

दस्यु	डाक्	डाकू	डांकु
पैसा	पैसा	पैसा	पैसां
...	बाक़ी	बाकी	बांकि
शोच	सोच	सोच	सोच
यव	जौ	जौ	जौं
....	रहता है	रहँद	रूंछ

२—आश्रित अनुनासिकता।

यह अनुनासिकता या तो प्राचीन अथवा मध्यकालीन आर्य भाषाओं से प्राप्त हुई है या हिन्दी से। अनुनासिक स्वर प्रायः दीर्घ हो जाता है।

सं०	प्रा०	हि०	ग०	कु०
आम	आम	आंव	औ	औं
कक्ती	ककयी	कघी	कांगलो	कांगिलो
दण्ड	दण्ड	दण्ड	डांड	डांड
वन्ध्या	वझा	बांझ	बांज	बांज
शृंखला	सकला	सांकल	सांगल	सांगल

३—कभी-कभी नासिक्य व्यजनों के परवर्ती स्वर पर अनुनासिकता आ जाती है। जैसे—

हि०	ग०	कु०
मकड़ी	मुंगरी	मुंगरि
मौसी	मौंसी	मौंसि
नवनीत	नौंण	नौंणि
नाम	नौं	नौं

४—विदेशी शब्दों में—

वि०	ग०	कु०
संदूक	सँदूक	सँदूक
कांग्रेस	कांग्रेस	कांग्रेस
पौंड	पौंड	पौंड

(इ) संयुक्त स्वर तथा स्वर-सान्निध्य।

मध्य पहाड़ी में संयुक्त स्वर नहीं हैं। मूल स्वरों का इतना आधिक्य है कि उनसे ही काम चल जाता है। कुमाउँनी की प्रवृत्ति ह्रस्वत्व की ओर होने से दीर्घ स्वरों की आवश्यकता बहुत कम पड़ती है इसीलिए संयुक्त-स्वर भी नहीं हैं। स्वर सान्निध्य भी बहुत कम पाया जाता है जिसमें दो मूल स्वर एक दूसरे के समीप रहते

हैं, किन्तु आपस में मिलकर सन्धि उपस्थित नहीं करते। म. प. प्राय. वे आपस संधि उपस्थित कर लेते हैं।

	ग०	कु०
अइ	—	
अई	ठई	रई (रैं)
आइ	गवाइक (गवैक)	पकाइ (पकै)
आई	पिसाई (पिसै)	आई (ऐ)
आऊ	आऊ (औ)	बाऊ (बौ)
आओ	खाओ	काओ (काला)
उई	अफुई	दुई

कुछ स्वर सान्निध्य केवल गढ़वाली में ही पाए जाते हैं।

एओ	वेओ (क्यों)	क्या
ओई	होई (हूँ)	है
ओओ	होओ	हो
ओआ	कोआ	को

संक्षिप्त विवेचन-मध्य-पहाड़ी में हिन्दी की अपेक्षा स्वरों की संख्या अधिक है। गढ़वाली में दीर्घ अः और कुमाउंनी में ह्रस्व ओ ऐसी ध्वनियाँ हैं जो अन्य किसी प्रमुख आर्य भाषाओं में जिनका वैज्ञानिक अध्ययन हो चुका है। नहीं पाई जाती। हिन्दी में प्लुत प्रयोग केवल सम्बोधन के लिए होता है किन्तु मध्य-पहाड़ी में विशेषण में गुणाधिक्य के लिए अन्तिम दीर्घ स्वर को प्लुत कर देते हैं। यदि अंतिम स्वर दीर्घ न हो तो उपान्त्य स्वर प्लुत कर दिया जाता है। स्वत. अनुनासिकता भी मध्य-पहाड़ी में हिन्दी की अपेक्षा अधिक है। संयुक्त-स्वर नहीं है। सम्बन्ध कारक में कों के की का कभी कभी लोप हो कर पूर्व स्वर पर ओ या ऐ लगा दिया जाता है यह प्रवृत्ति हिन्दी में नहीं है।

कुमाउंनी में ह्रस्व स्वरों का और गढ़वाली में दीर्घ स्वरों का प्रयोग अधिक है। किसी शब्द में कुमाउंनी में अ स्वर के पश्चात् दूसरा स्वर यदि आ हो तो दोनों ओ में परिणत हो जाते हैं। गढ़वाली में ए ह्रस्व ऐ-ध्वनि भी प्रायः नहीं है। कुमाउंनी में यदि ह्रस्व ऐ या ह्रस्व औ के पश्चात् आ या ओ ध्वनि आवे तो ह्रस्व ऐ और ह्रस्व औ का क्रमशः य और व हो जाता है। कुमाउंनी में गढ़वाली की अपेक्षा स्वतः अनुनासिकता भी अधिक है।

(६) व्यंजन।

क वर्ग.— मध्य पहाड़ी में सभी व्यंजन हैं जो हिन्दी में पाए जाते हैं किन्तु इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे व्यंजन भी हैं जो केवल मध्य-पहाड़ी में ही पाये जाते हैं। क, ख

और ग की दो दो ध्वनियाँ हैं। एक तो हिन्दी के समान ही जिह्वा के पिछले भाग से कोमल तालु को स्पर्श करने से उत्पन्न होती है जिसे कंठ्य[1] ध्वनि कहा जाता है। अरबी-फारसी के प्रभाव से हिन्दी मे क़ ख़ और ग़ की अलिजिह्व ध्वनियाँ आ गई हैं जिन्हें क्रमशः क़ ख़ ग़ लिखा जाता है किन्तु मध्य-पहाड़ी में अत्यंत सीमित रूप से अलिजिह्व ध्वनियाँ हैं कोमलतालव्य ये वैदिक[2] ध्वनियाँ हैं। जिनका अवशेष मध्य-पहाड़ी मे रह गया है। क ख ग का क़ ख़ ग़ उच्चारण तभी होता है जब ये ध्वनियाँ गढ़वाली के ळ ध्वनि या ल की स्थानापन्न कुमाउंनी की व ध्वनि के पूर्व आती हैं जैसे क़ाळो (ग०) या क़ावो (कु०)। इन ध्वनियों का प्रयोग गढ़वाली मे ही अधिक होता है क्योंकि ळ ध्वनि कुमाउंनी मे नहीं है। गढ़वाली और कुमाउंनी में अरबी-फारसी की क़, ख़, ग़ ध्वनियाँ नहीं हैं।

च वर्ग:— चवर्गीय ध्वनियाँ संस्कृत मे स्पर्श[3] मात्र मानी गई हैं किन्तु आ० भारतीय आर्य-भाषाओं मे ये कुछ संघर्षी भी हो गई हैं अतएव हिन्दी मे इन्हें स्पर्श-संघर्षी भी कहा जाता है। मध्य-पहाड़ी में ये ध्वनियाँ हिन्दी की अपेक्षा अधिक संघर्षी हैं। फ़ारसी के प्रभाव से हिन्दी मे ज की एक संघर्षी ध्वनि ज़ भी है। जो मध्य-पहाड़ी में नहीं है।

ट वर्ग.— टवर्गीय ध्वनियाँ आधुनिक बंगला मे तालव्य-वर्त्स्य[4] कही गई हैं किन्तु खड़ीबोली की जन्मभूमि मेरठ तथा पश्चिमी रुहेलखण्ड में ये शुद्ध मूर्द्धन्य हैं। मध्य-पहाड़ी मे भी ये ध्वनियाँ मूर्द्धन्य ही हैं। और संस्कृत मे भी मूर्द्धन्य[5] हैं। बंगला पर कदाचित् अंग्रेजी प्रभाव हो। हिन्दी मे भी कुछ लोग ट वर्गीय ध्वनियों का वर्त्स्य उच्चारण करते हैं। ट वर्गीय ध्वनियों का द्रविड़ भाषाओं से प्र० भा० आ० भा० में आगम माना जाता है।

त वर्ग.— तवर्गीय ध्वनियाँ हिन्दी और मध्य-पहाड़ी मे दन्त्य हैं। प्रातिशाख्यों[6] मे इन्हें वर्त्स्य माना गया है। किन्तु संस्कृत में ये दन्त्य हैं। और हिन्दी तथा मध्य-पहाड़ी में भी दन्त्य ही हैं। न अभी भी वर्त्स्य ध्वनि ही है। जैसा कि यह प्रातिशाख्यों मे मानी गई है। कुमाउंनी में न की एक महाप्राण ध्वनिन्ह भी है।

---

१ अकुहविसर्जनीयनां कंठ. (सिद्धान्त कौमुदी)

२ हि भा इ पृ. ११५।

३ कादयोमावसाना स्पर्शाः।

४ भ. व ल. पृ. २६८।

५ ऋटुरषाणां मूर्द्धा।

६ भ. व. ल पृ. २४३।

प वर्ग— हिन्दी तथा मध्य पहाड़ी की पवर्गीय ध्वनियों में कोई अन्तर नहीं है। फ को एक स्पर्श संघर्षी ध्वनि फ़ हिन्दी में फारसी के प्रभाव से आ गई है। यह ध्वनि मध्य-पहाड़ी में नहीं है। म की महाप्राण ध्वनि म्ह केवल कुमाउँनी में पाई जाती है। इसी वर्ग में दन्तोष्ठ्यव को भी लिया जा सकता है। यह ध्वनि मध्य-पहाड़ी में नहीं है। हिन्दी में भी इस ध्वनि का प्रयोग केवल संस्कृत के तत्सम शब्दों में या विदेशी शब्दों में होता है। जैसे–कविता, व्याख्या, वैरी।

अन्तस्थ–संस्कृत व्याकरणों के अनुसार य, र, ल, व अन्तस्थ[1] ध्वनियां हैं। क्योंकि इनका स्थान स्वर और व्यंजन ध्वनियों के बीच में है। चटर्जी महोदय ने प्रा. भा. आ. भा. की ध्वनियों का वर्गीकरण[2] करते हुए इँ (य) और उँ (व) को ही अर्द्धस्वर माना है। जो क्रमशः तालव्य और द्व्योष्ठ्य ध्वनियां बताई गई हैं। ल को वर्त्स्य-पार्श्विक, र को वर्त्स्य लुंठित और ल तथा ल्ह को मूर्द्धन्य-पार्श्विक माना गया है। इँ [य] ध्वनि पाणिनि के पूर्व ही य हो गई थी और उसका प्रयत्न कुछ संघर्षी होना आरम्भ हो गया था। ईस्वी सन् २०० पूर्व के लगभग य पूर्ण तालव्य-संघर्षी ध्वनि हो गई थी। कालान्तर में मध्य कालीन भारतीय आर्य भाषाओं में ज ने य का स्थान ग्रहण कर लिया था। वर्तमान भारतीय आर्य-भाषाओं में य ध्वनि पुनः आ गई है। मध्य पहाड़ी में भी यह ध्वनि पाई जाती है।

उँ(व) की दो[3] ध्वनियां हो गई थीं। दन्तोष्ठ्य संघर्षी व्यंजन 'व' और द्व्योष्ठ्य अस्थिर व जिनके उदाहरण क्रमशः स्वामी और कविता में प्रयुक्त व की ध्वनियाँ हैं। ये ध्वनियां संस्कृत में भी अलग अलग थीं किन्तु संस्कृत व्याकरणचार्यों ने इनका अलग अलग भेद नहीं बताया है। केवल 'वकारस्य दंतोष्ठम्' कह दिया है। आ भा में दंतोष्ठ्य व ध्वनि केवल तत्सम शब्दों में रह गई है। मध्य-पहाड़ी में यह ध्वनि नहीं है। इसका स्थान पूर्णरूप से ब ने ले लिया है।

ल ध्वनि वैदिक काल से अब तक वर्त्स्य ही है। हिन्दी तथा मध्य-पहाड़ी में उसका वर्त्स्य उच्चारण ही होता है। संस्कृत व्याकरणाचार्यों ने ल को दंत्य[4] ध्वनि माना है। ऐसा प्रतीत होता है कि संस्कृत में ल का कदाचित दंत्य उच्चारण न रहा हो। संभव है, दंतमूल के समीप वर्त्स्य होने से उसको दंत्यमान लिया गया हो। केवल गढवाली में दंताग्र ल ध्वनि अभी भी पाई जाती है।

---

१ स्पृष्टं प्रयत्नं स्पर्शनाम्। इषत्स्पृष्टमन्तस्थानाम्। ईषद्विवृतमूष्माणाम्। विवृतं स्वराणाम्।

२ च. ब. ल. पृष्ठ २४०।

३ च. ब. ल.।

४ लृतुलसानां दन्ताः।

और ग की दो दो ध्वनियाँ हैं। एक तो हिन्दी के समान ही जिह्वा के पिछले भाग से कोमल तालु को स्पर्श करने से उत्पन्न होती है जिसे कंठ्य[1] ध्वनि कहा जाता है। अरबी-फारसी के प्रभाव से हिन्दी में क ख और ग की अलिजिह्व ध्वनियाँ आ गई हैं जिन्हें नमशः क़ ख़ ग़ लिखा जाता है किन्तु मध्य-पहाड़ी में अत्यन्त सीमित रूप से *अलिजिह्व ध्वनियाँ हैं कोमलतालव्य ये वैदिक*[2] ध्वनियाँ हैं। जिनका अवशेष मध्य-पहाड़ी में रह गया है। क ख ग का क़ ख़ ग़ उच्चारण तभी होता है जब ये ध्वनियाँ गढ़वाली के ल़ ध्वनि या ल की स्थानापन्न कुमाउंनी की व ध्वनि के पूर्व आती हैं जैसे क़ालो (ग०) या क़ाव़ो (कु०)। इन ध्वनियों का प्रयोग गढ़वाली में ही अधिक होता है क्योंकि ल़ ध्वनि कुमाउनी में नहीं है। गढ़वाली और कुमाउंनी में अरबी-फारसी की क़, ख़, ग़ ध्वनियाँ नहीं हैं।

च वर्ग.— चवर्गीय ध्वनियाँ संस्कृत में स्पर्श[3] मात्र मानी गई हैं किन्तु आ० *भारतीय आर्य-भाषाओं में ये कुछ संघर्षी भी हो गई हैं अतएव हिन्दी में इन्हें स्पर्श-*संघर्षी भी कहा जाता है। मध्य-पहाड़ी में ये ध्वनियाँ हिन्दी की अपेक्षा अधिक संघर्षी हैं। फ़ारसी के प्रभाव से हिन्दी में ज की एक संघर्षी ध्वनि ज़ भी है। जो मध्य-पहाड़ी में नहीं है।

ट वर्ग.— टवर्गीय ध्वनियाँ आधुनिक बंगला में तालव्य-वर्त्स्य[4] कही गई हैं किन्तु खड़ीबोली की जन्मभूमि मेरठ तथा पश्चिमी रुहेलखण्ड में ये शुद्ध मूर्द्धन्य हैं। मध्य-पहाड़ी में भी ये ध्वनियाँ मूर्द्धन्य ही हैं। और संस्कृत में भी मूर्द्धन्य[5] है। *बंगला पर कदाचित् अंग्रेजी प्रभाव हो।* हिन्दी में भी कुछ लोग ट वर्गीय ध्वनियों का वर्त्स्य उच्चारण करते हैं। ट वर्गीय ध्वनियों का द्रविड़ भाषाओं से प्र० भा० आ० भा० में आगम माना जाता है।

त वर्ग — तवर्गीय ध्वनियाँ हिन्दी और मध्य-पहाड़ी में दन्त्य हैं। प्राति शाख्यों[6] में इन्हें वर्त्स्य माना गया है। किन्तु संस्कृत में ये दन्त्य हैं। और हिन्दी तथा मध्य-पहाड़ी में भी दन्त्य ही हैं। न अभी भी वर्त्स्य ध्वनि ही है। जैसा कि यह प्रातिशाख्यों में मानी गई है। कुमाउंनी में न की एक महाप्राण ध्वनिन्ह भी है।

---

१ *अकुहविसर्जनीयाना कंठः* (सिद्धान्त कौमुदी)
२ हि भा इ. पृ. ११५।
३ कादयोमावसना स्पर्शाः।
४ च. व ल. प. २६८।
५ ऋटुरषाणां मूर्द्धा।
६ च. व. ल पृ. २४३।

प वर्ग— हिन्दी तथा मध्य पहाड़ी की पवर्गीय ध्वनियों में कोई अन्तर नहीं है। फ़ की एक स्पर्श संघर्षी ध्वनि फ़ हिन्दी में फारसी के प्रभाव से आ गई है। यह ध्वनि मध्य-पहाड़ी में नहीं है। म की महाप्राण ध्वनि म्ह केवल कुमाउँनी में पाई जाती है। इसी वर्ग में दन्तोष्ठ्य व को भी लिया जा सकता है। यह ध्वनि मध्य-पहाड़ी में नहीं है। हिन्दी में भी इस ध्वनि का प्रयोग केवल संस्कृत के तत्सम शब्दों में या विदेशी शब्दों में होता है। जैसे—कविता, व्याख्या, वैरी।

अन्तस्थ—संस्कृत व्याकरणों के अनुसार य, र, ल, व अन्तस्थ[1] ध्वनियाँ हैं। क्योंकि इनका स्थान स्वर और व्यंजन ध्वनियों के बीच में है। चटर्जी महोदय ने प्रा. भा. आ. भा. की ध्वनियों का वर्गीकरण[2] करते हुए इँ (य) और उँ (व) को ही अर्द्धस्वर माना है। जो क्रमशः तालव्य और द्व्योष्ठ्य ध्वनियाँ बताई गई हैं। ल को वर्त्स्य-पार्श्विक, र को वर्त्स्य लुंठित और ल तथा ळ्ह को मूर्द्धन्य-पार्श्विक माना गया है। इँ [य] ध्वनि पाणिनि के पूर्व ही य हो गई थी और उसका प्रयत्न कुछ संघर्षी होना आरम्भ हो गया था। ईस्वी सन् २०० पूर्व के लगभग य पूर्ण तालव्य-संघर्षी ध्वनि हो गई थी। कालान्तर में मध्य कालीन भारतीय आर्य भाषाओं में ज ने य का स्थान ग्रहण कर लिया था। वर्तमान भारतीय आर्य-भाषाओं में य ध्वनि पुनः आ गई है। मध्य पहाड़ी में भी यह ध्वनि पाई जाती है।

उँ(व) की दो[3] ध्वनियाँ हो गई थी। दन्तोष्ठ्य संघर्षी व्यंजन 'व' और द्व्योष्ठ्य अस्थिर व जिनके उदाहरण क्रमशः स्वामी और कविता में प्रयुक्त व की ध्वनियाँ हैं। ये ध्वनियाँ संस्कृत में भी अलग अलग थीं किन्तु संस्कृत व्याकरणचार्यों ने इनका अलग अलग भेद नहीं बनाया है। केवल 'वकारस्य दंतोष्ठम्' कह दिया है। आ भा में दंतोष्ठ्य व ध्वनि केवल तत्सम शब्दों में रह गई है। मध्य-पहाड़ी में यह ध्वनि नहीं है। इसका स्थान पूर्णरूप से व ने ले लिया है।

ल ध्वनि वैदिक काल से अब तक वर्त्स्य ही है। हिन्दी तथा मध्य-पहाड़ी में उसका वर्त्स्य उच्चारण ही होता है। संस्कृत व्याकरणाचार्यों ने ल को दंत्य[4] ध्वनि माना है। ऐसा प्रतीत होता है कि संस्कृत में ल का कदाचित दंत्य उच्चारण न रहा हो। संभव है, दंतमूल के समीप वर्त्स्य होने से उसको दंत्यमान लिया गया हो। केवल गढ़वाली में दंताग्र ल ध्वनि अभी भी पाई जाती है।

---

१ स्पृष्ठ प्रयत्नं स्पर्शानाम्। इषत्स्पृष्टमन्तस्थानाम्। ईषद्विवृतमूष्माणाम्। विवृतं स्वराणाम्।

२ च. व. ल. पृष्ठ २४०।

३ च. घ. ल.।

४ लृतुलसानां दंताः।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि तवर्गीय ध्वनियाँ, र और ल प्रातिशाख्यों में वर्त्स्य बताई गई है किन्तु संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा वर्तमान आर्य भाषाओं में त थ द ध दन्त्य है। यह परिवर्तन प्राकृतो से ही आरम्भ हो चुका था जिनका पूर्ववर्ती काल ६००[1] वर्ष ईस्वी पूर्व से २०० वर्ष ईस्वी पूर्व माना जाता है। पाणिनि के समय में यह परिवर्तन हो चुका था। र ल और न की ध्वनियो में यह परिवर्तन नही हुआ वे वर्त्स्य ही बनी रही। संभव है कि पाणिनि के जन्मस्थान उत्तर पश्चिम भारत में वर्त्स्य ल का स्थान दन्त्य ल ने ले लिया होगा जिसका अवशेष मध्य-पहाड़ी के गढ़वाली बोली में पाया जाता है। उत्तर पश्चिम की भाषाओ का मध्य-पहाड़ी पर प्रभाव स्पष्ट ही है। अन्य प्रदेशो में अर्थात् भारत के मध्य, पूर्व और दक्षिण में ल का वर्त्स्य उच्चारण ही रहा। पाणिनि के आधार पर ही संस्कृत के परवर्ती व्याकरणाचार्य ल को दन्त्य ध्वनि ही मानते रहे है। मध्य-पहाड़ी में वर्त्स्य ल की एक महाप्राण ध्वनि ल्ह भी है।

मध्य-पहाड़ी की गढ़वाली बोली में ल की जो दन्त्य ध्वनि है उसका उच्चारण जिह्वा के अग्र भाग को ऊपर के दाँतो के निम्न भागो के इषत् स्पर्श से किया जाता है। यह ध्वनि पूर्वी पहाड़ी अर्थात् नैपाली मे नही है। कुमाउँनी मे इस ध्वनि के स्थान मे व ध्वनि हो जाती है। कुछ पश्चिमी पहाड़ी बोलियो में भी यह ध्वनि व में परिवर्तित हो जाती है।

ग०	कु०	जौ०
बादल् (बादल)	बादव	बादौ

ल का मूर्द्धन्य उच्चारण मध्य-पहाड़ी मे नही है। ग्रियर्सन महोदय ने भ्रम से मध्य-पहाड़ी में भी गुजराती और राजस्थानी के समान ही मूर्द्धन्य ल की कल्पना कर ली। उन्होने जो उदाहरण दिए है उनसे पता चलता है कि उन्होंने गढ़वाली की दन्ताग्र 'ल' ध्वनि को जो अन्य वर्तमान भारतीय आर्य भाषाओ मे नही पाई जाती मूर्द्धन्य ल समझ लिया। वैदिक काल मे मूर्द्धन्य ळ ध्वनि अवश्य थी जिसका महाप्राण रूप ळ्ह था ये दोनो ध्वनियाँ पाली मे तो अवश्य है किन्तु परवर्ती प्राकृतो मे नही पाई जाती। संस्कृत मे भी ये ध्वनियाँ नही है। वर्तमान भारतीय आर्य भाषाओ मे से गुजराती राजस्थानी तथा कुछ पश्चिमी पहाड़ी बोलियो मे ल की मूर्द्धन्य ध्वनि ळ अभी शेष है। कुछ पश्चिमी पहाड़ी बोलियो मे ळ के स्थान पर ड भी हो जाता है।

हि०	गढ़वाली	कुमाउनी	जौनसारी	क्यूंथाली
अकाल	अकाल	अकाल या अकाव	काड	अकाळ

---

१ च व ल पृ १७।

र ध्वनि मध्य-पहाड़ी में हिन्दी के ही समान वर्त्स्य है। किन्तु संस्कृत व्याकरणों में र को मूर्द्धन्य ध्वनि बताया गया है। प्रातिशाख्यों[1] के अनुसार र ध्वनि वर्त्स्य है। ऐसा ज्ञात होता है कि वैदिक में ही प्रान्तीयता के कारण र और ल की कई ध्वनियाँ हो गई थी क्योंकि इन दोनों का उच्चारण वर्त्स से लेकर मूर्द्धा तक सब स्थानों से किया जा सकता है। यह आश्चर्य की बात है कि संस्कृत व्याकरणों में मूर्द्धन्य र और ऋ का ही उल्लेख है वर्त्स्य का नहीं। वर्तमान संस्कृत में र का वर्त्स उच्चारण ही होता है। यह भी ठीक है कि टवर्गीय ध्वनियाँ तथा ष से पूर्व र का उच्चारण आज भी कुछ मूर्द्धन्य अवश्य हो जाता है साथ ही संस्कृत व्याकरण के अनुसार विशेष परिस्थितियों[2] में किसी पद में र और ष के परे न दन्त्य का ण मूर्द्धन्य हो जाता है। र की इसी प्रवृति के कारण कदाचित् संस्कृत व्याकरणों में र को मूर्द्धन्य माना गया हो। कुछ विद्वानों[3] का कहना है कि ड और ढ व्यजनों के दो स्वरों के बीच में आने से प्राकृत काल मे ही ड़ और ढ़ ध्वनियाँ हो गई थी जो मूर्द्धन्य र रह् से सर्वथा साम्य रखती है। इसीलिए कदाचित् मूर्द्धन्य र की आवश्यकता न रही हो। मध्य-पहाड़ी मे जैसा कि पहले बताया गया है कि केवल वर्त्स्य र है और उसकी महाप्राण ध्वनि रह् है।

ऊष्म—श ष स और ह ऊष्म ध्वनियाँ है। ष का स्थान प्राकृतों मे स ने ले लिया था। पूर्वीप्राकृत मागधी ने श को और पश्चिमी प्राकृतों ने स को अपना लिया था। फलस्वरूप मागधी से निकली हुई बंगला आदि भाषाओं मे बोलचाल मे स के स्थान पर श का ही प्रयोग होता है। केवल मैथिली मे मध्य देशीय प्रभाव के कारण स का ही प्रयोग होता है। अवधी,[4] ब्रज,[5] खड़ीबोली तथा पजाबी[6] मे केवल स है। डिंगल मे यद्यपि ध्वनियाँ स और श दोनो हैं किन्तु वर्णमाला में श नही है उसके स्थान पर भी स ही लिखा जाता है। अतः डिंगल[7] की रुचि भी स की ही ओर अधिक है। उत्तर पश्चिम की प्राकृतों मे-अर्थात् दरद तथा पैशाची मे-श, ष और स तीनों ध्वनियाँ बहुत पीछे[8] तक चलती रही। किन्तु कलान्तर में ष

१–च० व० ल० पृ० २४३

२–अट्कुप्वाङ्नुम् व्यवायेऽपि ८'४'२ अष्टाध्यायी।

३–हि० भा० इ० पृ० १८०।

४–वा० अ० भा० ५४।

५–धी० ब्र० भा० ५४।

६–दु० प० हि० पृष्ठ १७०।

७–रा० भा० सा० पृष्ठ ३३।

८–च० व० ल० २४५।

का लोप हो गया। उसका स्थान श या स ने ले लिया। अतः प्राकृतों में भी यही प्रवृति रही। पहाड़ी भाषाओं में विशेषकर मध्य-पहाड़ी में स और श दोनों ध्वनियाँ बनी हुई हैं किन्तु इनके प्रयोग में बहुत अधिक भ्रम है। श के स्थान पर स और स के स्थान पर श का प्रयोग सामान्य प्रवृति है। बहुत अधिक सीमा तक मध्य-पहाड़ी में ये व्यक्तिगत ध्वनियाँ हो गई हैं। यह बोलने वाले की प्रवृत्ति पर निर्भर है कि श का प्रयोग करे अथवा स का। जैसे, सिंह या शिंग, सिउ या शिउ, सड़क और शड़क, मुसा या मुशा, यसो या यशो, आँसू या आँशू, सर्म या शर्म, मास या माश, सुप या शुप। गढ़वाली में प्रायः स का ही अधिक प्रयोग होता है। इसके विपरीत कुमाउँनी में श का अधिक प्रयोग है।

ग०	कु०
साहब	शांब
दिसा	दिशा
देस	देश
से गए (सो गया)	शिण पड़ि गए।
सिउ	शिउ
सुप्पो	शुप
सींग	शिंग

पूर्वी पहाड़ी में भी श का अधिक प्रयोग नहीं है। जौनसारी तथा उससे पश्चिम की पहाड़ी बोलियों में श का प्रयोग बढ़ता जाता है। अतः स्पष्ट है कि स की अपेक्षा श का प्रयोग पहाड़ी बोलियों में अधिक है। किन्तु गढ़वाली में स का ही प्रयोग अधिक है और यह स्पष्ट ही खड़ीबोली और ब्रज का प्रभाव है।

गढ़वाली की अपेक्षा कुमाउनी में ह ध्वनि का प्रयोग भी अधिक है इसीलिए कुमाउनी की बोलियों में न, म, ल, और र की महाप्राण ध्वनियाँ भी पाई जाती हैं। गढ़वाली में यह प्रवृति नहीं है। गढ़वाली—दुसरी, भौत, मैना (महीना), औरो कूँ, लास कुमाउनी-दुहरो, बहोत, म्हैन, होरम कणि, ल्हास (लाश)

क—वर्ग

क. यह अघोष-अल्पप्राण-स्पर्श कण्ठय ध्वनि है। मध्य-पहाड़ी में यह ध्वनि शब्द के आदि और मध्य दोनों स्थानों में पाई जाती है।

आदि—

हि०	ग०	कु०
कीचड़	कचीर	कच्चार
कधा	कांगलो	कांगिलो।
कुत्ता	कुकुर, कुता	कुकुर

कुल्हाड़ा	कुल्याड़ो	कुल्याड़ो
कवा	कौणो	कौ

मध्य—

हि०	ग०	कु०
लकड़ी	लाखड़ा	लाकड़ा
चाचा	काका	काका
जोंक	जोंको	ज्वांको
झुमक	झुमका	झुमूक
पकाना	पकाणो	पकूणों

मध्य पहाड़ी की क ध्वनि का मूल—

१—प्राचीन आर्य भाषाओं की क, ध, स्क, ष्क, ग, के से—

मूल	प्रा०	ग०	कु०
कीटक:	कीडय	कीड़ो	किड़ो
जलूका	जलुगा	जोका	ज्वांका
बुभुक्षा	भुभुक्खा	भूक	भुक
स्कंध	खंध	कांधि	कान्
शुष्क	सुक्क	सूको	सुको
शुष्क	सुक्क	सूक	सूक
कुर्कुट	कुक्कुड	कुखड़ो	कुकाड़ो

२—देशज शब्दों में—

ग०	कु०
कोयला	कोयालां (बड़ा मैला)
कडालो	कंडाई (एक प्रकार का घास)
कौणि	कौणि (अनाज विशेष)
रांको	रांकों (मशाल)

३—विदेशी शब्दों में—

वि०	हि०	ग०	कु०
काग़ज़	कागद	कागत	कागत
किफ़ायत	किफायत	किफैत	क्फैत
इक़रार	इकरार	करार	करार
मालिक्	मालिक	मालिक	मालक

कोट	कोट	कोट	कोट
बावस	बक्स	बक्स	बकस

क़:—यह अघोष-अल्पप्राण-स्पर्श अलिजिह्व ध्वनि है। यह गढ़वाली के ल ध्वनि से पूर्व बोली जाती है। कुमाउँनी में प्राय: उसी व के पूर्व बोली जाती है जो ल की स्थानापन्न है।

हि०	ग०	कु०
काला	क़ालो	क़ावो
चढ़ाई	उक़ाल	उक़ाव
किन्तु	अकाल	अकाल

ख:—यह अघोष-महाप्राण-स्पर्श कंठय ध्वनि है। और मध्य-पहाड़ी की दोनों बोलियों में पाई जाती है।

आदि—

हि०	ग०	कु०
खण्डहर	खद्वार	मन्यार
—	खाड़ू	खाड़ (मेढ़ा)
कथा	खतड़ो	खांतड़ो

मध्य—

हि०	ग०	कु०
अखरोट	अखोड, खरोंट	अखोड़

हि०	ग०	कु०
औषधि	ओखद	ओखद
मक्खियाँ	माखा	माखा

म० प० की ख ध्वनि का मूल—

शब्द के आदि के प्रा० भा० आ० भा० के क, ख, क्ष, एक की स्थानापन्न और मध्य में ख क्ष स्क तथा त्र की स्थानापन्न हैं।

मूल	पा०	ग०	कु०
कुण्ठ	कुंठ	ख्वीड़ो	हिवड़ो
कर्कटिका	कक्कडिया	ककड़ो	ककड़ि
खन	खस	खस्या	खस्या
खर्पर	खप्पर	खारो	ख्वारो
क्षार	खार	खोरो	ख्वारो
मक्षिका	मक्खिया	माखा	माखा

मुद्गर	मुग्गर	मुंगर	मुंगर
वक्र	वक्क	बांगो	बांगो
नग्न	णग्ग	नंग	नग
गात्र	गत्त	गातो	गाति
नग्न	णग्ग	नंगो	नांगो
अग्र	अग्गे	अगाड़ो	आगिन
यज्ञ	जग्ग	जग्ग	जग

२—देशज शब्दों में—

ग०	कु०
गुल्ल्या	गुल्यो (मोटा)
गदेरा	गधेरा (छोटी नदी)
फूंगा	फूंगा (पूंछ)

३—विदेशी शब्दों में—

हि०	ग०	कु०
ग़रीब	गरीब	गरीब
नक़द	नगद	नगद
जगह	जगा	जागा
टिकट	टिगट	टिगट

ग़ :—क़ और ख़ की ही भाँति ग़ भी स्पर्श अलिजिह्व ध्वनि है। इसका उच्चारण भी केवल ल अथवा ल के स्थानापन्न व से पूर्व होता है।

हि०	ग०	कु०
गलना	ग़ळणो	ग़वणो
गाली	गाळो	गालि या ग़ार।

घ :—यह घोष-महाप्राण-स्पर्श कंठ्य ध्वनि है। यह आदि मध्य दोनों स्थानों पर पाई जाती है। मध्य में भाषण के समय घ के स्थान पर प्रायः ग बोला जाता है।

हि०	ग०	कु०
घुटना	घुंडो	घुनों
घोड़ा	घोड़ो	घ्वाड़ो
—	घाघ्रो (घाग्रो)	घाघ्रों (घाग्रो)
विघ्न	विघन (विगन)	विघन (विगन)

म०प० की घ ध्वनि का मूल—

१–प्रा० भा० आ० भा० के घ, ग और गृ से—

मूल	प्रा०	ग०	कु०
घृणा	घिणा	घोण	घिण
घरट्ट	घरट्ट	घट	घट
गृह	घर	घर	घर
अग्रिम	अग्गिलिय	अगिलो	आघिलो

२–देशज शब्दों में—

ग०	कु०
घाघुरो	घाघरों (घागरों)
घुगुतो	घुगतों (एक चिड़िया)
घ्वोड़	घ्विड़ (एक प्रकार का हिरण)

३–अरबी-फ़ारसी में घ ध्वनि नहीं है। अंग्रेज़ी में भी घ ध्वनि का प्रयोग बहुत कम होता है। घ का क ख और ग के समान स्पर्श संघर्षी अलिजिह्व ध्वनि भी नहीं है।

च–वर्ग

इस वर्ग की ध्वनियाँ हिन्दी में स्पर्श-संघर्षी[1] हैं। वैदिक काल में ये ध्वनियाँ केवल स्पर्शी[2] थी। इस वर्ग की ध्वनियों का उच्चारण स्थान तालु है। म० प० में हिन्दी की अपेक्षा इस वर्ग की ध्वनियाँ अधिक संघर्षी हैं।

च—यह अघोष-अल्पप्राण-स्पर्शसंघर्षी तालव्य ध्वनि है।

हि०	ग०	कु०
चिड़िया	चखुली	चाड़ा
चौमास	चौमास	चौमास
अचानक	अचाणचक	अचाणचक
कीचड़	कचीर	कच्यार
कच्चा	काचो	काचो

च ध्वनि का मूल—

प्रा० भा० आ० भा० के च, त्य, त्म ध्वनियों से—

मूल	प्रा०	ग०	कु०
चतुर्मास	चाउमास	चौमासा	चौमासा

१—हि० भा० इ० पृष्ठ ११७।

२—कादयोभावमानः स्पर्शाः। सिद्धान्त कौमुदी।

चित्रल	चित्तल	चित्तल	चितल (हिरण)
भूमिचल	—	भुइँचलो	भुइँचाल
नृत्य	नच्च	नाच	नाच
वत्स	वच्छ	बच्चा	बच्चा

२—देशज शब्दों में—

ग०	कु०
चिफलो	चिफलो (फिसलनदार)
चुतर्योलो	चुतरौल (एक जानवर)

३—विदेशी शब्दों में—

वि०	ग०	कु०
चुगली	चुगुली	चुगलि
चाकू	चक्कू	चकु
चिमनी	चिमनी	चिमनि

छ—यह अघोष—महाप्राण स्पर्श संघर्षी तालव्य ध्वनि है।

हि०	ग०	कु०
छाया	छैल	छैल
छिपकली	छिपड़ो	छिवाडो
मछली	माछा	माछा, मच्छ
बछड़ा	बाछो	बाछि
पीछे	पिछनै	पाछिन

छ ध्वनि का मूल—

प्रा० भा० आ० भा० के छ, श, क्ष, प, त्स्य, त्स और श्च में—

मूल	प्रा०	ग०	कु०
छद	छत	छत	छत
शल्कल	सक्कल	छिकलो	छिकलो
पश्चात्	पच्छ	पिछनै	पाछिन
षड्शीति	छलसोइ	छियासी	छियासि
मत्स्य	मच्छ	माछा	माछा
मत्सर	मच्छर	मच्छड़	मछड
क्षालन	छालन	छलणो	छावणो

देशज शब्दों मे—

ग०	कु०
छबड़ो	छपड़ि (बड़ी टोकरी)
छनि	छानि (गोशाला)

३—सहायक क्रिया छ के रूप मे जो हिन्दी की ही क्रिया की स्थानापन्न है और जिसका विस्तृत विवेचन क्रिया प्रकरण मे किया गया है।

ज—यह घोष—अल्पप्राण—स्पर्श संघर्षी तालव्य ध्वनि है।

हि०	ग०	कु०
जाया	ज्वे	ज्वे
जुन्हाई	जून	जून
जोंक	जोंको	ज्वांको
वन्ध्या	बाज	बांज
जागना	बिजणो	बिजंणो
कलह	कज्या	कजिया

ज ध्वनि का मूल—

१—प्रा० भा० आ० भा० की ज, ज्य, ज्व, द्य और य ध्वनियो से—

मूल	प्रा०	ग०	कु०
जन्मन्	जम्मण	जमणो	जामणो
ज्योत्सना	जुण्हा	जून	जुन
ज्वर	जर	जर	जर
विद्युत	बिज्जु	बिजली	बिजली
यंत्र	जंत	जाँदरो	जानरो (चक्की)

२—देशज शब्दों मे—

ग०	कु०
जागरी	जगरिया (भूत प्रेत को नचाने वाला)
जड़्या	जड़्या (एक प्रकार की लाई)
जुँगा	जुँगा (मुँछ)

३—विदेशी शब्दो में—

वि०	ग०	कु०
जगह	जगा	जागा
जुल्म	जुलम	जुलुम
सजा	सजा	सजा

जेल	जेल	जेहल
जज	जज	जज

झ :—यह घोष-महाप्राण-स्पर्श संघर्षी-तालव्य ध्वनि है। मध्य पहाड़ी में उच्चारण केवल शब्द के आरम्भ में होता है। मध्य में इसका स्थान ज ले लेती है।

हि०	ग०	कु०
झूला	झूला	झुल
झूमक	झुमका	झुमक
समझना	समजणो	समजणो
बोझ	बोजो	ब्वाजो

झ ध्वनि का मूल—

प्राचीन तथा मध्य कालीन भा० आ० भाषाओं के झ से—

मूल	प्रा०	ग०	कु०
झठि	—	झाड़	झाड़
झटिति	झडति	झट	झट
—	झडलि	झटेली	झटील(पूर्व प से उत्पन्न लड़की
—	झड़ी	झड	झड
—	झमाल	झमेला	झम्यालो (झगड़ा)

ट—वर्ग

मध्य-पहाड़ी और हिन्दी की मूर्द्धन्य ध्वनियों में कोई अन्तर नहीं है। अ में ये ध्वनियाँ तालव्य-वर्त्स्य[1] हो गई हैं। और अंग्रेजी के टी और डी से मि हैं। कुछ लोगों का विचार है कि ये ध्वनियाँ अनार्य[2] भाषाओं से ली गई हिन्दी-भाषा-भाषी पढ़े लिखे लोगों के भाषण में भी कभी-कभी टवर्गीय ध्वनि तालव्य-वर्त्स्य उच्चारण स्थान धारण कर लेती हैं। किन्तु खड़ी बोली की उ भूमि मेरठ और पश्चिमी रुहेलखण्ड में मूर्द्धन्य ही उच्चारण होता है। सम्भ कि पढ़े-लिखे लोगों पर अंग्रेजी का प्रभाव पड़ा हो। इस वर्ग की ड और ढ क और ढ उत्क्षिप्त मूर्द्धन्य ध्वनियाँ भी हैं। ये ध्वनियाँ प्रा. भा. आ. भा. में

१—च. व. ल. पृष्ठ २९८।

२—हि. भा. इ. पृष्ठ १६४।

थी। ये आ० भा० आ० भाषाओं में पाई जाती है। गढ़वाली की ट ठ ड ढ ध्वनियो से पूर्व यदि अनुनासिकता हो तो कमाउँनी में ये ध्वनियाँ न में परिणत हो जाती है। यथा

ग० काँडो→कु० कानो; ग० टूँट→कु० ठून; ग० ढूँढ़→कु० ढून;
ग० डूँडो→कु० डुनो।

ट.—यह अघोष-अल्पप्राण-स्पर्श मूर्द्धन्य ध्वनि है। शब्द के आदि और मध्य दोनो स्थानों पर पाई जाती है।

हि०	ग०	कु०
टूट गई	टूटिगे	टूट गई
—	तमोटा	टमटा
कूटना	कुटणा	कुटणो
रोटी	रोटो	र्वाटो
चिल्लाहट	चिल्लाट	चिल्लाट

१—ट ध्वनि का मूल—

प्रा० भा० आ० भा० के ट, ड, त्त, र्त, ष्ठ ध्वनियो से—

मू०	पा०	ग०	कु०
टंक	टक	टक्का	टका
खट्वा	खट्टा	खाट	खाट
पीडन	पिट्टण	पिटणो	पिटणो (पिटरण)
त्रुट	टुट्ट	टूट	टुट
कर्त	कट्ट	काट	काट
षष्ठ	छट्ट	छटो	छटो (छट)

देशज शब्दों में—

ग०	कु०
लाटों	लाटो (मूर्ख)
पटाई	पटई (थकावट)
चिट्टो	चिटो (सफेद)

विदेशी शब्दो में—

वि०	ग०	कु०
स्टैम्प	स्टाम	स्टाम
बूट	बूट	बूट
लैनटर्न	लालटीन	लालटिन

जेल	जेल	जेहल
जज	जज	जज

झ :—यह घोष-महाप्राण-स्पर्श संघर्षी-तालव्य ध्वनि है। मध्य पहाड़ी में इसका उच्चारण केवल शब्द के आरम्भ में होता है। मध्य में इसका स्थान ज ध्वनि ले लेती है।

हि०	ग०	कु०
झूला	झूला	झूल
झूमक	झुमका	झुमक
समझना	समजणो	समजणो
बोझ	बोजो	ब्वाजो

झ ध्वनि का मूल—

प्राचीन तथा मध्य कालीन भा० आ० भाषाओं के झ में—

मूल	प्रा०	ग०	कु०
झटि	—	झाड़	झाड
झटिति	झटति	झट	झट
—	झडप्ति	झटेलो	झटाल (पूर्व पश्चिम उत्पन्न लड़की)
—	झड़ो	झड़	झड़
—	झमाल	झमेला	झम्यालो (झगड़ा)

ट—वर्ग

मध्य-पहाड़ी और हिन्दी की मूर्द्धन्य ध्वनियों में कोई अन्तर नहीं है। बंगला में ये ध्वनियाँ तालव्य-वर्त्स्य[1] हो गई हैं। और अंग्रेजी के टी और डी से मिलती हैं। कुछ लोगों का विचार है कि ये ध्वनियाँ अनार्य[2] भाषाओं से ली गई हैं। हिन्दी-भाषा-भाषी पढ़े लिखे लोगों के भाषण में भी कभी-कभी टवर्गीय ध्वनियों ने तालाव्य-वर्त्स्य उच्चारण स्थान धारण कर लेती हैं। किन्तु खड़ी बोली की जन्म-भूमि मेरठ और पश्चिमी रुहेलखण्ड में मूर्द्धन्य ही उच्चारण होता है। सम्भव है कि पढ़े-लिखे लोगों पर अंग्रेजी का प्रभाव पड़ा हो। इस वर्ग की ड और ढ की ड़ और ढ़ उत्क्षिप्त मूर्द्धन्य ध्वनियाँ भी है। ये ध्वनियाँ प्रा. भा. आ. भा. में नहीं

१—प. व. ल. पृष्ठ २६८।

२—हि. भा. इ. पृष्ठ १६४।

थो। ये आ० भा० आ० भाषाओं में पाई जाती है। गढ़वाली की ट ठ ड ढ ध्वनियों से पूर्व यदि अनुनासिकता हो तो कमाउँनी में ये ध्वनियाँ न में परिणत हो जाती है। यथा

ग० कांडो—›कु० कानो; ग० ठूँट—›कु० ठून; ग० ढूँढ़—›कु० ढून;
ग० डूँडो—›कु० डुनो।

ट :—यह अघोष-अल्पप्राण-स्पर्श मूर्द्धन्य ध्वनि है। शब्द के आदि और मध्य दोनों स्थानों पर पाई जाती है।

हि०	ग०	कु०
टूट गई	टूटिगे	टूट गई
—	तमोटा	टमटा
कूटना	कुटणा	कुटणो
रोटी	रोटो	र्‌वाटो
चिल्लाहट	चिल्लाट	चिल्लाट

१—ट ध्वनि का मूल—

प्रा० भा० आ० भा० के ट, ड, त, र्त, ष्ठ ध्वनियों से—

मू०	पा०	ग०	कु०
टंक	टक	टक्का	टका
खट्‌वा	खट्‌टा	खाट	खाट
पीडन	पिट्‌टण	पिटणो	पिटणो (पिटरण)
त्रुट	टुट्‌ट	टूट	टुट
कर्त	कट्‌ट	काट	काट
षष्ठ	छट्‌ट	छटो	छटो (छट)

देशज शब्दों में—

ग०	कु०
लाटों	लाटो (मूर्ख)
पटाई	पटई (थकावट)
चिट्‌टो	चिटो (सफेद)

विदेशी शब्दों में—

वि०	ग०	कु०
स्टैम्प	स्टाम	स्टाम
बूट	बूट	बूट
लैनटर्न	लालटीन	लालटिन

ठ:—यह अघोष-महाप्राण स्पर्श मूर्द्धन्य ध्वनि है। इसका प्रयोग आदि और मध्य दोनों स्थानों पर होता है।

हि०	ग०	कु०
ठंडा	ठंडो	ठंडो
चोंच	ठूंट	ठूंन
निष्ठुर	निठुर	निठुर
पीठ	पुठो	पुठो

ठ ध्वनि का मूल—

प्रा० भा० आ० भा० के ट, ष्ट, ष्ठ, स्थ, न्थ से—

मूल	प्रा०	ग०	कु०
ठक्कुर	ठक्कुर	ठाकुर	ठाकुर
मुष्ठ	मुठ	मूंठ	मुंठ
मुष्टि	मुट्ठि	मुट्ठी	मुट्ठि
पृष्ठ	पिट्ठ	पीठ	पीठ
स्थूल	थुल्ल	ठुल्लो	ठुलो
ग्रन्थि	गंठि	गांठ	गांठ

ड:—यह घोष-अल्पप्राण-स्पर्श मूर्द्धन्य ध्वनि है। इसका प्रयोग म० प० में आरम्भ में ही होता है। मध्य में इसका प्रयोग तभी होता है जब पूर्व स्वर अनुनासिक हो या उससे पूर्व का व्यंजन नासिक्य हो अन्यथा मध्य में ड़ में परिणत हो जाती है।

हि०	ग०	कु०
डोली	डोली	डोलि
डोम	डूम	डूम
मांडा	मांडो	मांनो
निडर	निडर	निडर
दण्ड	डांड	डांन

ड ध्वनि का मूल—

प्रा० भा० आ० भा० के ट, ड, ण्ड, द से—

मूल०	प्रा०	ग०	कु०
डाकिनी	डाइणी	डाणिण	डागिणि
डोम	डोंब	डूम	डम
दंड	डंड	डांड	डांन
दस्यु	दस्सु	डाकू	डाकु
मुण्डा	मुंडा	मूंड	मून

विदेशी शब्दो मे—

वि०	ग०	कु०
डाक्टर	डाक्‌टर	डाक्‌टर
सोडा	सोडा	स्वाडा

ड़.—यह घोष-अल्पप्राण उत्क्षिप्त मूर्द्धन्य ध्वनि है। यह ध्वनि शब्द के आरम्भ मे नही है। केवल नासिक्य व्यंजन या अनुनासिक स्वर के पश्चात् यह ध्वनि प्रयुक्त नही होती अन्यथा ड का स्थान ग्रहण कर लेती है।

हि०	ग०	कु०
बड़ा	बड़ो	बड़ो
कोड़ा	कोड़ो	किड़ो
जड़ से	जड़ाते	जड़ै बटि
बुढ़िया	बुड़्ली	बुड़िया
लकड़ी	लाखड़ा	लाकड़ा

ढ.—यह घोष-महाप्राण-स्पर्श मूर्द्धन्य ध्वनि है। यह शब्द के आदि में ही प्रयुक्त होती है मध्य मे यह ढ़ मे परिणत हो जाती है।

हि०	ग०	कु०
ढेला	ढेलो	ढेलों
ढील	ढील	ढील
ढक्कन	ढकण	ढाकण
ढोल	ढाल	ढोल

ढ-ध्वनि का मूल—

प्रा० भा० आ० भा० मे यह ध्वनि बहुत कम प्रयुक्त हुई है। अतः म० प० में ढ, ट या थ आदि अन्य ध्वनियो से उत्पन्न हुई है। या मध्यकालीन भारतीय आर्य-भाषाओ की ढ ध्वनि म० प० मे भी आ गई है।

मूल०	प्रा०	ग०	कु०
ढोल	ढढोल्ल	ढोल	ढोल
अर्द्धतृतीय	अड्ढाइय	ढाइ	ढाइ
ढुंढनं	ढुंटुल्ल	ढुंडणों	ढुंनणों
--	ढक्कय	ढक्यों	ढक्यु (ढका हुआ)
शिथिल	सिढिल या ढिल्ल	ढीलों	ढिलो

ढ़—यह घोष-महाप्राण उत्क्षिप्त मूर्द्धन्य ध्वनि है। यह सदैव दो स्वरों के बीच आती है। मध्य-पहाड़ी मे प्राय ड़ मे परिणत हो जाती है। यह ध्वनि प्रा० भा० आ० भा०, के ट, थ आदि ध्वनियों की स्थानापन्न है। प्राकृतों से होती हुई म० प० मे आई है।

मूल	प्रा०	ग०	कु०
पठ	पठ	पढ़	पढ
क्वाथ	काट	काढ़ो	काढ़ी
—	सिड्ढो	सीढ़ी	सिढ़ि

ण—यह घोष-अल्प-प्राण स्पर्श अनुनासिक मूर्द्धन्य ध्वनि है। हिन्दी में ण ध्वनि केवल तत्सम शब्दों में पाई जाती है। मध्य-पहाड़ी में 'ण' ध्वनि ने बहुत अधिक सीमा तक हिन्दी के 'न' का स्थान ग्रहण कर लिया है। यह राजस्थानी का प्रभाव है। शब्द के आरम्भ में यह ध्वनि नहीं पाई जाती है। केवल प्राकृतों में ही यह शब्द के आरम्भ में होती है किन्तु वर्तमान भारतीय आर्य भाषाओं में से किसी में ण ध्वनि शब्द के आरम्भ में नहीं है।

हि०	ग०	कु०
कोना	कूणा	कुणा
अपना	अपणा	आपणा
वन	वण	वण
पानी	पाणी	पाणि
ढूँढना	ढूँडणो	ढुवणो

ण—ध्वनि का मूल—

मूल	प्रा०	ग०	कु०
प्राघूर्ण	पाहुण्ण	पौंणो	पौंण
लवण	लोण	लूण	नुण
पानीय	पाणीअ	पाणी	पाणि
नवनीत	णवणीअ	नौणी	नौणि
कम्पन	कंपण	कांपण	कांमण
स्वप्न	सुवण	स्वीणा	स्वैणा

देशज शब्दों में—

ग०	कु०
सणि	कणि (के लिए)
सैणि	सैणि
गैणा (तारे)	—

२—धातुओं पर ना लगाकर हिन्दी में क्रियार्थ संज्ञा बनाई जाती है। मध्य-पहाड़ी में णो लगाकर क्रियार्थ संज्ञा बनती है। अतएव सब क्रियार्थ संज्ञाएं णान्त होती हैं केवल ड ढ़ ड़ और ढ़ के पश्चात् णो के स्थान पर नो हो जाता है।

ग०—खाणो	पीणो	हंसणो	पकड़नो	पढ़नो।
कु०—खाणो	पिणो	हसणो	पकड़नो	पढनो।

त वर्ग

त वर्ग की ध्वनियाँ हिन्दी और म० प० में दन्त्य हैं। प्रातिशाख्यों[1] में इन्हें वर्त्स्य ध्वनि बताया गया है। संस्कृत में ये दन्त्य ध्वनियाँ हैं। जिह्वा का अग्रिम भाग आगे के दांतों के मध्य भाग को स्पर्श करके शीघ्र हट जाता है। इस वर्ग में केवल वर्त्स्य ध्वनि रह गई है।

त :—यह अघोष—अल्पप्राण-स्पर्श दन्त्य ध्वनि है। यह ध्वनि शब्द के आदि और मध्य दोनों स्थानों में पाई जाती है।

हि०	ग०	कु०
तालाब	तलौ	तलौ
ताँबा	तामो	तामो
भीतर	भितर	भितेर
तितली	पुतली	पुतइ
देवता	देवता	द्यवता

त ध्वनि का मूल—

प्रा० भा० आ० भा० के त से तथा संयुक्त व्यंजनों का सावर्ण्य के कारण त में परिणति से—

मूल	प्रा०	ग०	कु०
ताम्र	ताम्म	तामा	तामो
तप्त	तत्त	तातो	तातो
तृष्णा	तिण्हा	तीस	तिस
पुत्तलिका	पुतलिया	पुतली	पुतइ
पात्रा	——	पातर	पातुर (वेश्या)
रिक्त	रित	रीतौं	रितो

देशज शब्दों में—

ग०	कु०
चुतयोंलो	चुतरौल (एक चतुष्पद पशु)
तिमला	तिमला (एक फल)
खिरतिणों	खिरतणों (नाराज़ होना)

१—च० व० लै० पृष्ठ २४३।

वि० शब्दों में—त, ट, द की स्थानापन्न।

वि०	ग०	कु०
तलवार	तलवार	तलवार
तम्बाखू	तमखू	तमाख
मानिर	मानिर	मानर
मदद	मदत	मदत
बाटल	बोतल	बोतल
पैट्रोल	पतरोल	पतरोल

थ :—यह अघोष-महाप्राण-स्पर्श-दन्त्य ध्वनि है। शब्द के बीच में कभी-कभी यह ध्वनि त में परिणत हो जाती है।

हि०	ग०	कु०
थोड़ा	थोड़ा	थ्वाड़ा
थैला	थैलो	थौलो
हाथी	हाति	हाति
थकावट	थकाइ	थकइ
थामना	थमणो	थामणो

थ ध्वनि का मूल—

१—प्रा भा. आ. भा. में थ ध्वनि का बहुत कम प्रयोग है। थ से आरम्भ होने वाले शब्द बहुत कम हैं। प्राकृतों में संस्कृत के स्त और स्थ ध्वनियाँ थ हो जाती हैं वही ध्वनि म० प० और हिन्दी में अक्षुण्ण रहती है।

मूल	प्रा०	ग०	कु०
कथा	कहा	कथा	काथा
प्रस्तर	पत्थर	पाथर	पाथर
मस्तिष्क	मत्थय	माथो	माथो
स्थान	थान	थान	थान (देवता का स्थान)
चतुर्थ	चउथ	चौथो	चौथो

देशज शब्दों में—

ग०	कु०
कोथलो	कोथलो (बड़ा थैला)
थाल	थोल या थाल (जानवर का होंट)

थमाल्ा (लकड़ा काटने की दरांती) थमड़।

द—यह घोष-अल्पप्राण-स्पर्श-दन्त्य ध्वनि है। गढ़वाली में शब्द का मध्यवर्ती

द कभी-कभी कुमाउँनी में न में परिणत हो जाता है यदि उसके पूर्व अनुनासिकता हो।

हि०	ग०	कु०
दूसरी	दुसरी	दोहरि
दोपहर	दोफरा	दोफरि
बादल	बादल	बादव
नींद	निंद	नीन
हेमंत	ह्यूंद	ह्यून
खंडहर	खंद्वार	खन्यार

द ध्वनि का मूल—

प्रा. भा. आ. भाषा के द या द से संयुक्त व्यंजन के द में परिणत होने से—

मूल	प्रा०	ग०	कु०
दात्रिका	दत्तिया	दथुलि	दातुलि
देवता	देवता	देवता	दयता
मुद्रिका	मुद्दिआ	मुंद्ही	मुंदड़ि
हरिद्रा	हालद्दा	हल्दी	हल्दु
यंत्र	जंतर	जांद्रो	जानरौ

देशज शब्दों में—

ग०	कु०
दोण	दुण (अनाज को नापने का एक परिमाण)
गदेरो	गदेरो (छोटी नदी)

वि० शब्दों में—

वि०	ग०	कु०
दरखास्त	दरख्वास	दरखास
जियादा	ज्यादा	ज्यादा
नादान	नादान	नादान
याद	याद	याद
दर्जन	दर्जन	दर्जन

ध : यह घोष-महाप्राण-स्पर्श-दन्त्य ध्वनि है। मध्य में यह ध्वनि प्राय: द में परिणत हो जाती है। गढ़वाली को ध कभी कुमाउँनी में न हो जाती है यदि उससे पूर्व अनुनासिकता हो।

हि०	ग०	कु०
धुंधला	धुंदलो	धुंधलो

धुर	धूर	धुरा
दूध	दूद	दुध
बाधना	बाँदणो	बानणो
गधा	गदा या गदरो	गधा

ध ध्वनि का मूल—

प्रा० भा० आ० भा० की ध ध्वनि या ध में संयुक्त व्यंजन के सावर्ण्य के कारण ध में परिणति—

मूल	प्रा०	ग०	कु०
धूम	धूम	धुवाँ	धुवाँ
धूलि	धूलि	धूल	धुल
प्रधान	—	पधान	पधान
अंधकार	अंधआर	अधेरो	अन्यारो
गर्दभ	गद्दभ	गदा	गधा

देशज शब्दों में—

ग०	कु०
धाण	धाण (काम)
धार	धार (चोटी)
धौला (एक झाड़ी)	—

न—घोष-अल्पप्राण-स्पर्श-वर्त्स्य-नासिक्य ध्वनि है। म० प० में न के स्थानपर विशेषतः ण का प्रयोग होता है।

हि०	ग०	कु०
नाला	नालो	नावो
नख	नँग	नँग
अनोखा	अनोखो	अनोखो
चिनगारी	चिनगरि	चिनका
पोदिना	पोदिना	पोदिन

न ध्वनि का मूल—

१–प्रा० भा० आ० भा० के न तथा न में परिवर्तित ञ, ण आदि ध्वनियों में—

मूल०	प्रा०	ग०	कु०
नप्तृ	—	नाती	नाति
निद्रा	णिद्दा	नींद	नीन
नख	णह	नंग	नंग
ऊर्ण	उण्ण	उन	उन

खडितद्वार	—	खंद्वार	खन्यार
शुण्ड	शुण्डा	सूँड	सून

२–देशज शब्दों में—

ग०	कु०
निंगलो	निगावो (बारीक बाँस की जाति का पौधा)
निगंड (उद्योग रहित व्यक्ति)	
मंडुवा	मनुवा

विदेशी शब्दों में—

वि०	ग०	कु०
नज़दीक	नजीक	नजिक
खामिन्द	—	रख्वेन
गुमान	गुमान	गुमान
जामन	जामन	जामिन
मेहनत	मीनन	मिनत

४—क्रियार्थ संज्ञा जिसका अंतिम उपान्त्य व्यजन ड् ढ हो।

हि०	ग०	कु०
पढना	पढ़नो	पढनो
लड़ना	लड़नो	लड़नो

५–कुमाउँनी के बहुवचन के रूप बनाने मे न जुड़ता है।

दगड़िया (साथी) दगड़ियन, नोकर नोकरन, आदमि-आदमियन।

न्ह.—यह न की महाप्राण ध्वनि है। यह ध्वनि गढ़वाली मे नही है केवल कुमाउँनी मे पाई जाती है। यह ध्वनि हिन्दी मे नही है।

कु० न्हाति (नही है)

न्हातु (नही हू)

न्हातन (नही है)

न्हे गयो (चला गया है)

प वर्ग

म० प० और हिन्दी की पवर्ग-ध्वनियो मे कोई अन्तर नही है। हिन्दी मे फारसी शब्दों मे एक दन्तोष्ठ्य संघर्षी ध्वनि फ भी आ गई है। मध्य-पहाड़ी मे यह ध्वनि नही हैं। दन्तोष्ठ्य सघर्षी व भी म० प० मे नही है। हिन्दी मे भी यह केवल तत्सम शब्दो मे पाई जाती है जैसे—कविता मे। म० प० मे इसका स्थान ब ने ले लिया है।

प—यह अघोष-अल्पप्राण-स्पर्श ओष्ठ्य ध्वनि है। दोनों होंठों के स्पर्श से उत्पन्न होती है।

हि०	ग०	कु०
पहुँचा	पौंछो	पुजो
पाला	पालो	पावो
लीपना	लीपणो	लिपणो
अपना	अपणो	आपणो
सूप	सूप्पो	सुप

प-ध्वनि का मूल—

प्रा० भा० आ० भा० के प या सावर्ण्य के कारण प से संयुक्त ध्वनि की प में परिणति या त्म और क्त ध्वनियों से।

मू०	प्रा०	ग०	कु०
पुष्कर	पोक्खर	पोखरी	पुखरि
कापटिक	कप्पडिअ	कपुटो	कपटि
कर्पट	कप्पड	कपुड़ा	कापड़ा
उत्पाटन	उप्पडन	उपाड़नो	उपाड़नो
आत्मन.	अप्पणो	अपूणा	आपणो
शुक्ति	सिप्पि	सीप	सीप

देशज शब्दों में—

ग०	कु०
पैयाँ	पैया (एक प्रकार का पेड़)
पुँगड़ो	पुँगड़ा (खेत)
पटामुलकणि	पटामुलकि (मुँह से सीटी बजाना)

विदेशी शब्दों में—

वि०	ग०	कु०
पोशाक	पोसाक	पुशाक
प्लैस्टर	पलस्तर	पलस्तर
पायजामा	पैजमा	पैजाम
पैट्रोल	पतरोल	पतरोल
सिपाही	सिपै	सिपै

फ—यह अघोष-महाप्राण-स्पर्श ओष्ठ्य ध्वनि है। शब्द के मध्य में प्रायः प में परिणत हो जाती है।

हि०	ग०	कु०
फाल	फालो	फाला

फूफू	पूफू	फुफिया
--	करमफुटो	करमफुटो
दोपहर	दोफरा	दोफरि
आप	अफूँ	आपूँ

फ, ध्वनि का मूल--

प्रा० भा० आ० भा० की प, फ ध्वनि से या सावर्ण्य के कारण अन्य ध्वनि का फ मे परिणत होने से--

मूल०	प्रा०	ग०	कु०
फाल्गुन	फग्गुण	फागुण	फागुण
फुल्ल	फुल्ल	फूल	फूल
परशु	परसु	फरसो	फरसो
पाश	पासु	फाँस	फाँस
स्फाटन	फाल्न	फाड़नो	फाड़नो
द्विप्रहर	दिप्पहर	दोफरा	दोफरि

देशज शब्दों मे--

ग०	कु०
फफड़ा	फाफड़ा (छिलका)
फटकाल् मारणी	फटकाल मारणि (कूदना)
कफू	कफुआ (एक चिड़िया)

विदेशी शब्दों मे--

वि०	ग०	कु०
साफ़	साप	साफ
सफेद	सफेद	सफेद
फरेब	फरेव	फरेव
फस्ल	फसल	फसल
कफन	कप्फन	कफन
फीज़	फीस	फीस

ब.--यह घोष-अल्पप्राण स्पर्श ओष्ठ्य ध्वनि है। इसने दन्तोष्ठ्य व का स्थान भी ग्रहण कर लिया है।

हि०	ग०	कु०
ब्राह्मण	बामण	बामण
बहुत	भौत	बहौत
गोबर	गोबर	गोबर

हि०	ग०	कु०
सुभीता	सुबीतो	सोबुतो
तभी	तबी	तबै

ब ध्वनि का मूल—

प्र० भा० आ० भा० के व, व (दन्तोष्ठ्य) प० म० ध्वनियों से तथा सावर्ण्य के कारण संयुक्त व्यंजन का ब में परिणत होने से।

मू०	प्रा०	ग०	कु०
बलीवर्द	बलीवद्द	बल्द	बलद
बदर	बअर	बेर	बेर
बल्कल	बक्कल	बगोट	बक्कल
वेला	वेला	ब्यालि	बेलिया, (गतदिन)
सर्व	सब्ब	सब	सब
व्याघ्र	बग्घ	बाग	बाग
भगनी	बहिणी	बैण	बैण
सपादलक्ष	सवालक्ख	शिबालिक	शिबालिक

देशज शब्दों में—

ग०	कु०
बोल्या	बोल्या (मजदूर)
बग्वाल	बग्वाल (दिवाली)
बोकणो	बोकणो (बोझ ले जाना)

वि० शब्दों में—

वि०	ग०	कु०
बगीचह	बगेचा	बगिचा
बस्तह	बस्ता	बस्ता
बिलायत	बिलैत	बिलैत
खबर	खबर	खबर
जेनुअरी	जनवरी	जनवरी

भ :—यह घोष महाप्राण स्पर्श ओष्ठ्य ध्वनि है। यह ध्वनि आरम्भ में पाई जाती है मध्य मे ब में परिणत हो जाती है।

हि०	ग०	कु०
भेंट	भेंट	भेंट
भीतर	भितर	भितेर
भोर	भोल	भोल

अचम्भा	अचँभा	अचम्भा
बहनोई	भीना	भिना
कभी	कबि	कबै
लाभ	लाब	लाब
सांभर	साँबर	साँबर

भ ध्वनि का मूल—

प्र० भा० आ० भा० के शब्द के आरभिक भ, म, ब और व ध्वनियों से या संयुक्त व्यंजन के भ में परिणत से—

मू०	प्रा०	ग०	कु०
भांगिक	भांगिअ	भगँलो	भंगेलो (भाग के रेशों का वस्त्र)
बहिर्	बही	भैर	भैर
वेश	बेस	भेस	भ्येस
बुस	बुस	बुखो	भसो
भ्रू	भ्रू	भौं	भौं
महिषी	महिसी	भैंस	भैंस

देशज शब्दों में—

ग०	कु०
भेल	भ्यौल (अत्यन्त ढलवाँ पहाड़)
भुला	भुला (छोटा भाई)
भोट् (यह भोट-तिब्बत से निकाला हुआ शब्द भी हो सकता है)	भोट् (ऊनी भनोई)

म :—यह घोष—अल्पप्राण—ओष्ठ्य स्पर्श अनुनासिक ध्वनि है। इसकी महाप्राण ध्वनि गढवाली में नहीं है किन्तु कुमाउँनी की किसी किसी बोली में पाई जाती है।

हि०	ग०	कु०
मछली	माछा	माछा
मुखियां	मुर्खा	मुरका
—	करम फुटो	करम फुटो
क्षमा	छिमा	छिमा

म ध्वनि का मूल—

प्रा० भा० आ० भ० के म से।

मूल	प्रा०	ग०	कु०
मधु	महु	मउ	मउ

मूषक	मूसग	मुसो	मुसो
मनुष्य	मनुस्स	मैंस (पति)	मैंस
श्मशान	मसाण	मसाण (भूत)	मसाण
लम्बपुच्छ	लम्मपुंछ	लमपुच्छ्या	लमपुछि (पुच्छलतारा)
घर्म	घम्म	घाम	घाम

देशज शब्दों मे—

ग०	कु०
मैण	मण (शहद की मक्खी के छत्ते का मोम)
म्याला	म्याल (खीरे आदि के बीज)
मडुवा	मडुवा (अनाज विशेष)

विदेशी शब्दों मे—

वि०	ग०	कु०
मजदूर	मजूर	मजुर
मास्टर	मास्टर	मास्टर
जमीन	जमीन	जमिन
मैडम	मीम	मीम
खुसम	खसम	खसम

म्ह –यह घोष-महाप्राण स्पर्श ओष्ठ्य अनुनासिक ध्वनि है। यह गढ़वाली में नहीं पाई जाती है। किन्तु कुमाउंनी में है।

कुमाउंनी– म्हौतारि (माता)
म्हैन (महीना)

अन्तःस्थ

य:–यह घोष-अल्पप्राण-तालव्य-अर्द्धस्वर है। म भा आ भा. में य का स्थान ज ने ग्रहण कर लिया था मध्यवर्ती य ने स्वर का रूप ग्रहण कर लिया था। जैसे–यजमान–जजमान। यत्र-जत्र। छाया-छाआ। अतएव तद्भव शब्दों में य ध्वनि बहुत कम मिलती है। किन्तु अन्य आ भा आ भा के समान म. प. में भी य का पुनरागमन हो गया है। अतएव तत्सम शब्दों, कुछ सर्वनाम, क्रिया विशेषण, तथा क्रिया पदों में य ध्वनि आदि में पाई जाती है। मध्य में यह तद्भव शब्दों में भी पाई जाती है।

हि०	ग०	कु०
इस	ये	ये
यहाँ	यख	याँ

ग्यारह	अग्यारा	ग्यार
था	छयो	छियो
विवाह	ब्यो	ब्या
बेला	ब्यालि	ब्याल

म, प. की य ध्वनि का मूल—

प्राचीन या मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं के शब्द के मध्य में स्थित य ध्वनि से अथवा स्वर ध्वनियों से—

मूल	प्रा०	ग०	कु०
एकादश	एआरह	अग्यारा	ग्यार
विवाह	विवाह	ब्यो	ब्या
गत:	गतो, गओ,	गये	गयो
शृंगाल	सिआल	स्याल	स्याल, स्याव

हिन्दी और गढ़वाली की ए के स्थान पर कुमाउंनी में य—

हि०	ग०	कु०
देवता	देवता	द्यवता
चेले	चेला	च्याला
मेरे	मेरा	म्यारा

विदेशी शब्दों में —

वि०	ग०	कु०
याद	याद	याद
यार	यार	यार
यक़ीन	यकीन	यकीन

र :—यह घोष-अल्पप्राण लुंठित वर्त्स्य ध्वनि है। यह शब्द के आदि और मध्य दोनों स्थानों में पाई जाती है।

हि०	ग०	कु०
रहते थे	रैंहदा छया	रौंछियो
रोटी	रोटी	र्‌वाटा
भीतर	भितर	भितेर
गाय	गोरू	गोरू
चराना	चरोणो	चरूंण
परमेश्वर	परमेश्वर	परमेश्वर

र ध्वनि का मूल—

१—प्रा. भा. आ. भा. के ऋ और र से—

मूल	प्रा०	ग०	कु०
ऋक्ष	रिक्ख	रिक	रिक
रोम	रोम	रोम	रिम
कुक्कुर	कुक्कर	कुकर, कूना	कुकुर
वैरिन्	वैरिअ	वैरी	वैर
शत्रु	—	शत्रुक	शतुर

प्रा. भा. आ. भा. मे र ल का अभेद[1] हो गया है। र के स्थान मे ल और ल के स्थान पर र का प्रयोग होने लगा था। मध्यकालीन प्राकृतों में मागधी ने ल को अधिक अपनाया और शौरसेनी ने र को। म. प. मे ल के स्थान पर र ध्वनि आ गई है।

मूल	प्रा०	ग०	कु०
अबला	अबला	अबर	अबर
लाङ्गूलिन्	लांगूल	लगूर	लगुर

देशज शब्दो मे—

ग०	कु०
घुतर्याली	चुतरोल (एक छोटा पशु)
गदेरा	गधेरो (छोटा नाला।
झगारा	झगारो (अनाज विशेष

विदेशी शब्दो मे—

वि०	ग०	कु०
जरूर	जरूर	जरूर
राजी खुशी	राजी खुशी	राजि खुशि
दरखास्त	दरखास	दरखास
रेल	रेल	रेल,

ल :—यह हिन्दी की ही भाँति अल्पप्राण पार्श्विक वर्त्स्य ध्वनि है। संस्कृत मे इसे दंत्य माना गया है। इसका प्रयोग म. प मे शब्द के आरम्भ और मध्य दोनों स्थानों पर पाया जाता है।

हि०	ग०	कु०
लोहा	लोखर	लू
लंगूर	लगूर	लगूर

---

१. रलयोरभेदः।

लड़कियाँ	लासड़ा	लाकाड़ा
तालाब	तलौ	तलौ
मिला	मिले	मिलो
बिल्ली	बिरालो	बिरालु

ल ध्वनि का मूल—

प्रा० भा० आ० भा० के ल, ड, त और र से—

मूल	प्रा०	ग०	कु०
लवण	लोण	लोण	लुण
लाट:	लाटो	लाटो	लाटो (स्पष्ट बोलने वाला)
अन्नकाल	अण्णकाल	अकाल	अकाल या अकाव
आम्लिका	अंबलिया	इमली	इमिलि
शलभ	सलह	शलो	शलु
तडाक	तलाय	तलो	तलौ
पीत	पीअ	पीलो	पोलो
हरिद्रा	हलिद्दा	हल्दा	हल्दा

देशज शब्दों में—

ग०	कु०
रौलो	रौळ (छोटी नदी)
गुल्यण्या	गुल्यो (मोठा)

विदेशी शब्दों में—

वि०	ग०	कु०
लाश	लास	ल्हाश
साल	साल	साल
डबल:	डब्बल	डबल (पैसा)
लार्ड	लाट	लाट
नंबर	लँबर	लँबर
मरहम	मल्लम	मल्हम

ल को महाप्राण ध्वनि ल्ह कुमाउँनी की बोलियों में पाई जाती है। जैसे—गाला लगै ल्हिया (गले लगा लेना)।

तब ल्हैक (तब तक)

ल्हाश (लाश)

ळ :—यह ध्वनि केवल गढ़वाली में ही है। यह सदैव शब्दों के मध्य में होती है। कुमाउँनी में शब्द के मध्य में इसका स्थान प्रायः व ध्वनि धारण कर लेती है। यह ध्वनि हिन्दी में नहीं है। यह घोष-अल्पप्राण दन्ताग्र ध्वनि है।

हि०	ग०	कु०
बादल	बादळ	बादव
मल	मोळ	मोव (गोबर)
चावल	चौंळ	चावो
कम्बल	कामळो	कामवो
काला	काळो	कावो
कृमि	किरमोळो	किरमोवो
नाला	नाळो	नावो
फाल	फाळो	फावो
बैल	बळद	बवद
आलसी	आळसी	आल्सि
गलना	गळणो	गळणो या गवणो
निगलना	निगळणा	निगवणो या निगळणो

कई विदेशी शब्दों में ल (वर्त्स्य) गढ़वाली में ळ (दन्ताग्र) हो जाती है।

हि०	ग०	कु०
नालिश	नाळिश	नालिश
रूमाल	रूमाळ	रूमाल

व :—यह द्वयोष्ठ्य-घोष-अल्पप्राण-अर्द्धस्वर है। प्रा० भा० आ० भा० में द्वयोष्ठ्य अर्द्धस्वर और दन्तोष्ठ्य व्यंजन ध्वनि थी किन्तु व्याकरणों में केवल दन्तोष्ठ्य अंतस्थ 'व' को ही स्वीकार किया गया है यद्यपि द्वयोष्ठ्य अर्द्धस्वर भी संस्कृत में था। हिन्दी और म० प० में दन्तोष्ठ्य अंतस्थ 'व' जिसको भाषा विज्ञानी दंतोष्ठ्य संघर्षी व्यंजन मानते हैं ब में परिणत हो गया था। यथा, सं० वार्ता→हि० बात→ग० बात, कु० बात। सं० सर्व→हि० सब→ग० सब, कु० सब। हिन्दी में यह ध्वनि तत्सम शब्दों में पुनः दन्तोष्ठ्य ही उच्चरित होती है किन्तु म० प० में वह ब ही उच्चरित होती है। यथा, हि० कविता, कवि; ग० कबिता, कबि कु० कबिता, कबि।

द्वयोष्ठ्य अर्द्धस्वर जिसका विवेचन संस्कृत व्याकरणों में नहीं किया गया है उसका मूल उच्चारण हिन्दी तथा म० प० में पूर्ववत् चल रहा है। इसको यहाँ व ध्वनि चिह्न द्वारा व्यक्त किया गया है।

मूल	हि०	ग०	कु०
स्वामिन्	स्वामी	स्वामि	स्वामि
स्वाद	स्वाद	स्वाद	स्वाद

यह ध्वनि मूल रूप में प्राय: 'स' में संयुक्त होने पर ही प्राप्त होती है। किन्तु अब हिन्दी, गढ़वाली और कुमाउँनी में व्यापक रूप से प्राप्त होती है।

हि०	ग०	कु०
ग्वाला	ग्वालो	ग्वावो
वह	वो	उ
वहाँ	वख	वाँ
जवान	ज्वान	ज्वान

ऊष्म ध्वनियाँ

स :–यह अघोष अल्पप्राण वर्त्स्य[1] संघर्षी ध्वनि है। वैदिक काल में यह वर्त्स्य[2] ध्वनि थी और वर्तमान भारतीय आर्य-भाषाओं मे भी यह वर्त्स्य ही है। संस्कृत व्याकरणों ने इसे दन्त्य[3] माना है। मध्य-पहाड़ी में यह हिन्दी के समान ही वर्त्स्य ध्वनि है। यह ध्वनि शब्द के आदि और मध्य दोनों स्थानों में पाई जाती है। यथा सच, भैंसों।

स ध्वनि का मूल–

प्रा० भा० आ० भा० के स, ष और श से।

मूल	प्रा०	ग०	कु०
स्वर्ण	सुवण्ण	सोनो	सुन
स्वप्न	सुविणा	स्वीणा	स्वैंणा
सूर्य	सुज्ज	सुप्पो	सुप्प
शलभ	सलह	सलो	सलूँ
श्रृंगाल	सिआल	स्याल	स्याल या स्याव
श्वास	सास	सांस	स्वांस
दोष	दोस	दोस	दोस या दोश
रोष	रोस	रोस	रिश या रिस

विदेशी शब्दों में–

वि०	ग०	कु०
सस्ता	सस्तो	सस्तो

१–हि० भा० इ० पृष्ठ १२६ सारिणी।
२–ध. व. ल. २४०
३–लृतुलसानां दन्ताः। सिद्धान्त कौमुदी।

शर्त	सरत	शरेत
सरकार	सरकार	सिरकार
शलवार	सुलार	सुलार
स्वृमी	स्वृमी	स्वृमि

श :—अघोष अल्पप्राण तालव्य संघर्षी ध्वनि है। यह ध्वनि भी शब्द के आदि और मध्य दोनों स्थानों पर पाई जाती है। गढ़वाली में खड़ी बोली के अधिक प्रभाव से यह ध्वनि प्रायः नहीं है। कुमाउँनी में विकल्प से स और श दोनों का प्रयोग होता है। यथा स्याली, यशो (ऐसा)

श ध्वनि का मूल—

प्रा० भा० आ० भा० के श, स या ष से—

मूल	पा०	ग०	कु०
श्वेत	सेत	सेतो	श्यतो
शुक्ल	सुक्ल	सुकिलो	शुकिलो
श्मशान	मसाण	मसाण	मशाण
सिंह	सिंघ	सिंह या स्यू	शिंह या श्यु
मनुष्य	मणुस्स	मैंस (पति)	मैंश (आदमी)
सूर्य	सुय्य	सुर्ज्यो	शुप

विदेशी शब्दों में—

वि०	ग०	कु०
शराब	सराब	शराब
शौक	शौक	शौक
बादशाह	बादशा	बाशा

ह :—घोष महाप्राण स्वरयंत्रमुखी संघर्षी ध्वनि है। इसके उच्चारण में हवा स्वरयंत्र पर रगड़ के साथ निकलती है। और एक झोंके के साथ खुले मुँह से बाहर निकल जाती है। संस्कृत वैयाकरणों ने इसे कंठ्य ध्वनि[1] माना है। स्वर यंत्र का ऊपरी भाग कंठ है। मध्य पहाड़ी बोलियों में श्रम प्राकृत के कारण अल्पप्राण[2] की ओर झुकाव अधिक है अतएव मध्य और अन्त की ह ध्वनि प्रायः लुप्त होकर अ में परिणत हो जाती है जो पूर्व स्वर से मिलकर दीर्घ ध्वनि बन जाती है। यदि पूर्व व्यंजन अल्पप्राण हो तो कभी महाप्राण हो जाता है।

१—अकुहविसर्जनीयानां कंठः।

२—लि. स इ ९।४ पृष्ठ ११६।

हि०	ग०	कु०
बहिन	बैण	वैण
हाथ	हात	हांत
हमारा	हमरो	हमारो
कहा	–	कयो
पहुँचा	पोछो	पुजो
बहुत	भौत	बहौत
चाहिये	चैंदा	चैन
कुल्हाड़ा	कुल्याडो	कुल्योड़
बाहर	भैर	भैर
पाहुना	पौड़ो	पौण
ब्राह्मण	बामण	बामण
ब्याह	ब्यो	ब्या

कुमाउँनी मे कभी कभी इसका व्यतिक्रम भी दृष्टिगोचर होता है अर्थात अ के स्थान पर ह ध्वनि का आगम हो जाता है।

हि०	ग०	कु०
और	और	हौर
छोड़ दिए	छोडि अलो	छाडिहालीं
देख लिया	देखि आले	देखिहालो

मध्य-पहाड़ी मे ह ध्वनि शब्द के आरम्भ मे ही रहती है। मध्य में प्राय: लुप्त हो जाती है।

हि०	ग०	कु०
हल	हल	हल
–	हीलो	हिला (कीचड)
हेमन्त	ह्यूँद	ह्यून
चाहिये	चैंदा	चैन
साहं	सा	सा
बहिन	बैण	वैण
कहा	—	कयो

ह ध्वनि का मूल—

प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं के अ या ह ध्वनि से तथा प्राकृतों के घोष महाप्राण व्यंजन ध्वनियों के हकार मे बदलने से।

मूल०	प्रा०	ग०	कु०
हस्तिन्	हत्थि	हाथी	हाथि
हेमन्त	हेमन्त	ह्यूँद	ह्यूँन
पुरोहित	पुरोहिअ	पुरैत	पुरहैत
अस्थि	अट्ठि	हड्को	हाड
अकिंचन्	अकिंचण	होंचो	हूँचु

कभी कभी गढ़वाली में स के स्थान पर कुमाउँनी में ह ध्वनि हो जाती है। जैसे, दुसरी–दोहरि।

देशज शब्दों में—

ग०	कु०
हिंसालु	हिसाउ (एक प्रकार का जंगली फल)
हड़ो	हाड़ो (सूखा पेड़)

विदेशी शब्दों में—

वि०	ग०	कु०
हाज़िर	हाजर	हाजर
बहादुर	बहादुर	बादुर
शहर	शहर	शॅर

स्वराघात

किसी शब्द में उच्चारण के समय किसी विशेष स्वर पर जोर देना या उस स्वर ध्वनि को ऊँची नीची कर लेना ताकि शब्द में विशेष अर्थ पैदा किया जा सके अथवा विशेष अर्थ न होते हुए भी किसी भाषा की भाषण प्रवृत्ति के कारण उपर्युक्त क्रिया का होना, स्वराघात कहलाता है। शब्द में किसी विशेष स्वर पर जोर देना या ध्वनि को ऊँची नीची करने के आधार पर स्वराघात दो प्रकार का होता है। बलात्मक स्वराघात और गीतात्मक स्वराघात। जब किसी शब्द के किसी विशेष स्वर के उच्चारण के समय अन्य स्वरों की अपेक्षा हवा झोंके के साथ बाहर निकलती है तब बलात्मक स्वराघात होता है। इसके विपरीत किसी शब्द म किसी स्वर के उच्चारण काल मे ध्वनि को ऊँची नीची कर लेना और स्वर यन्त्र में ध्वनि कंपनों की संख्या बढ़ा देना गीतात्मक स्वराघात होता है। कभी-कभी वाक्य म पूरे शब्द पर ही जोर दिया जाता है ताकि विशेष अर्थ प्रकट हो सके। इसे भी स्वराघात ही कहते हैं। यह वाक्यगत स्वराघात कहलाता है। स्वराघात का भाषण में बहुत बड़ा महत्व होता है। शब्दों के ध्वन्यात्मक परिवर्तन में स्वराघात का बहुत बड़ा भाग रहता है। किसी भी भाषा के स्वराघात अन्य ध्वनियों के समान ही दूसरी

भाषा-भाषी के लिए अत्यन्त प्रयत्न साध्य होते हैं। कोई व्यक्ति किसी दूसरी भाषा का पूर्ण पंडित होते हुए, उस भाषा के लिखित रूप पर पूर्ण अधिकार रखते हुए, ध्वनियों के उच्चारण स्थानों तथा प्रयत्नों की सूक्ष्मताओं को समझते हुए भी भाषण के समय ध्वनियों का यथातथ्य उच्चारण करने में असमर्थ हो जाता है। यह कमी अभ्यास से ही दूर होती है। और इस कमी के मूल में बहुत सीमा तक स्वराघात ही होता है। यह कठिनाई तब और भी बढ़ जाती है जब बलात्मक स्वराघात प्रधान भाषा-भाषी गीतात्मक स्वराघात वाली भाषा को बोलता है या गीतात्मक स्वराघात प्रधान भाषा-भाषी बलात्मक स्वराघात प्रधान भाषा बोलता है। उदाहरण के लिए जब कोई अंग्रेज हिन्दी बोलता है या कोई अनभ्यस्त हिन्दी भाषी अंग्रेजी बोलता है तब यह भेद स्पष्ट हो जाता है।

विद्वानों का विचार है कि वैदिक भाषा में गीतात्मक[1] स्वराघात बहुत अधिक था इसलिए स्वर के उदात्त अनुदात्त स्वरित तीन भेद किए गए थे। यह सम्भव है कि वैदिक ऋचाओं में विशेष कर सामवेद की ऋचाओं में तथा स्तोत्रों में गीतात्मक स्वराघात की प्रधानता रही हो किन्तु साधारण बोलचाल में भाषा बहुत अधिक गीतात्मक स्वराघात प्रधान न रही हो जितना कि समझा जाता है। संभव है कि बलात्मक स्वराघात भी कुछ मात्रा में रहा हो जैसे दु:ख शब्द में उ पर बलात्मक स्वराघात है इसी प्रकार अलङ्कृत में ल से युक्त अ पर स्वराघात है। काकुवक्रोक्ति में तो स्पष्ट ही वाक्यगत बलात्मक स्वराघात होता है।

संस्कृत तथा मध्य कालीन भारतीय आर्य भाषाओं में गीतात्मक स्वराघात काव्य में चलता रहा हो किन्तु साधारण बोलचाल में वह बोलचाल की वैदिक भाषा की तुलना में और भी कम हो गया होगा। वर्तमान भाषाओं में भाषण में तो गीतात्मक स्वराघात प्रतीत नहीं होता किन्तु चटर्जी महोदय का यह कथन ठीक है कि बलात्मक[2] स्वराघात प्रायः सभी वर्तमान भारतीय आर्य भाषाओं में है। यद्यपि यह बलात्मक स्वराघात इतना स्पष्ट नहीं जितना अंग्रेजी में है। हिन्दी में प्रश्न तथा आज्ञार्थ वाक्यों में वाक्यगत बलात्मक स्वराघात स्पष्ट ही है। इसी प्रकार दंडक छंदों में विशेषकर वीर रस संबंधी दंडक छंदों में रस परिपाक के लिए शब्द गत बलात्मक स्वराघात की आवश्यकता पड़ती है। वास्तविक बात तो यह है कि बोलचाल में स्वराघात होते हुए भी स्पष्ट नहीं है। यही अवस्था मध्य-पहाड़ी की भी है किन्तु मध्य-पहाड़ी में हिन्दी की अपेक्षा बलात्मक स्वराघात अधिक मात्रा में

१—च. व. ले. पृष्ठ २७६।
२—च. व. ले. पृष्ठ २७७।

है और गढ़वाली की अपेक्षा कुमाउँनी में अधिक है। गढ़वाली में दीर्घ स्वरों का पूरा उच्चारण होता है किन्तु कुमाउँनी में ह्रस्वत्व की प्रवृत्ति है, प्रत्येक दीर्घ स्वर का ह्रस्व रूप भी है। कुमाउँनी की दीर्घत्व की कमी अवश्य है किन्तु बलात्मक स्वराघात अधिक है। उदाहरण के लिए गढ़वाली में दगड़ा शब्द में कहीं भी स्वराघात नहीं है। किन्तु कुमाउँनी में दगडा की अंतिम आ पूर्व अ को प्रभावित करती है जिससे ग से संयुक्त अ भी आ हो जाती है किन्तु दोनों आ ह्रस्व आ हो जाती हैं। शब्द दगाडा हो जाता है। भाषण में अंतिम आ कभी लुप्त भी हो जाती है। क्योंकि गा पर स्वराघात होता है। मध्य पहाड़ी बोलियों की प्रवृत्ति दरद भाषाओं के प्रभाव से अल्पप्राणत्व की ओर अधिक है किन्तु स्वराघात के कारण हिन्दी और गढ़वाली का 'ओर' कुमाउँनी में 'हौर' हो जाता है। और गढ़वाली के देखियाल (देखालिया), देखिहाल हो जाता है। क्योंकि गढ़वाली के देखिआल के आ पर कुमाउँनी में बलात्मक स्वराघात होता है जो उसे आ के स्थान पर हा कर देता है।

मध्य पहाड़ी में बलात्मक स्वराघात के सम्बन्ध में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं।

१—हिन्दी और गढ़वाली में स्वराघात की दृष्टि से अधिक अन्तर नहीं है। गढ़वाली में कभी विशेषणों में गुणाधिक्य प्रगट करने के लिये उपान्त्य स्वर पर स्वराघात होता है जैसे मिट्ठो। यह प्रवृत्ति कुमाउँनी में भी है।

२—कुमाउँनी में ह्रस्वत्व की प्रवृत्ति अधिक है। अंतिम स्वर प्रायः ह्रस्व हो जाता है। बोलने में प्रायः उसके स्थान पर अ रह जाता है। अतः शब्द के उपान्त्य स्वर पर बलात्मक स्वराघात होता है चाहे वह ह्रस्व हो या दीर्घ। जैसे मिलेर, बैणि, मिना, भुलि, चौडो, स्याला आदि शब्दों में अंतिम स्वर लिखा तो अवश्य जाता है किन्तु भाषण में स्वर ध्वनि आधी रह जाती है या अ हो जाती है फलस्वरूप उपान्त्य स्वर क्रमशः ए, ऐ, इ, उ, औ, आ पर बलात्मक स्वराघात होता है।

३—गढ़वाली में हिन्दी[1] की ही भाँति अ को छोड़कर अन्तिम स्वर पूरा उच्चारित होता है अतः उपान्त्य स्वर पर स्वराघात तभी होता है जब अंतिम स्वर अ हो। जैसे बल्द में ब पर स्वराघात है क्योंकि अंतिम अ का भाषण में लोप हो जाता है। इसी प्रकार चाल, गीत उपान्त्य स्वर आ और ई पर हलका बलात्मक स्वराघात है।

४—गढ़वाली में या हिन्दी में जब अ ध्वनि मध्य में आती है तो प्रायः लुप्त हो जाती है और उससे पूर्व स्वर पर स्वराघात होता है जैसे—किलकार (चिल्लाहट) में ल

१—का हि० व्या—पृष्ट ५०।

से संयुक्त अ का भाषण में लोप हो जाता है और उसके पूर्व इ पर स्वराघात होता है।

५—कुमाउँनी मे यदि तीन स्वर ध्वनियों का शब्द हो और तीनों ह्रस्व हो तो बीच के स्वर पर स्वराघात होता है। जैसे—हि० खिचड़ी, ग० खिच्ड़ी, कु० खिर्चाड़ (च पर स्वराघात है)। कभी कभी तीन ह्रस्व स्वरो के शब्द मे बीच का स्वर दीर्घ भी हो जाता है। जैसे—हिन्दी—भीतर। गढ़वाली—भितर। कुमाउँनी—भितेर।

६-तीन स्वर ध्वनि वाले शब्दो मे मध्य की ध्वनि अ हो और गढ़वाली मे अ का लोप हो जाता है और कुमाउँनी में पूर्व स्वर दीर्घ हो जाता है।

ग० कम्लो, कु० कामलो;

ग० मर्णो, कु० मारणो।

ग० सल्ड़ो, कु० सालडो।

३–शब्द।

अ—शब्द का सामान्य रूप

१—मध्य पहाड़ी मे शब्द स्वर व्यंजन किसी से भी आरम्भ हो सकता है। किन्तु संयुक्त व्यंजनों से शब्द का आरम्भ नही होता है। कोई व्यंजन य और व से संयुक्त होकर शब्द के आरम्भ मे हो सकता है जैसे—प्यास, ब्वे, अवे, ज्वे, क्याला। यह प्रवृति हिन्दी में भी है। कुमाउँनो मे न्हे गयो (चला गया), म्हौतारि मा।ता.) ल्हारा शब्दों मे आदि मे संयुक्त व्यंजन हैं किन्तु वास्तव मे न्ह और ल्ह म्ह क्रमशः न, म और ल की महाप्राण ध्वनियाँ हैं जिनके लिपि चिन्ह नहीं है। इसीलिए अर्द्ध न म और ल से ह का योग किया जाता है। जिन विदेशी शब्दों के आरम्भ में संयुक्त-व्यंजन हैं उनके आरम्भ मे स्वरागम हो जाता है। जैसे स्कूल का मध्य-पहाड़ी मे इस्कूल हो जाता है। दो स्वरों से भी शब्द का आरम्भ नही होता है। लि० स० इ० मे वि (उस) के लिए कही उइ और कही वि लिखा गया है। किन्तु उच्चारण मे वि ही बोला जाता है। ड़ ढ़ से शब्द का आरम्भ नही होता जैसे कुछ पश्चिमी पहाड़ी[१] बोलियों मे पाया जाता है। ण से भी शब्द का आरम्भ नहीं होता। ये प्रवृतियाँ मध्य-पहाड़ी की हिन्दी म मिलती हैं। गढ़वाली की दन्ताग्र ल़ ध्वनि भी शब्द के आरम्भ मे नही आती है।

२—मध्य-पहाड़ी मे स्वरागम के कारण शब्द के मध्य मे भी संयुक्त-व्यंजन बहुत कम पाए जाते है। गढ़वाली मे संयुक्त-व्यंजन कुमाउँनी की अपेक्षा अधिक हैं।

१–लि० स० इ० ९/४ पृष्ठ ५६०।

गढ़वाली मे हिन्दी की ही भाँति भाषण मे कभी मध्यवर्ती अ का लोप हो जाता है। जैसे—मारणो (मारना)-मर्नो तथा खिचड़ी का उच्चारण के समय खिच्ड़ी हो जाता है। इसके विपरीत कुमाउँनी मे खिचडि मे च का पूर्ण उच्चारण होता है। शब्द के मध्य में स्वर सान्निध्य प्राय नही है। हिन्दी का पिसाई शब्द मध्य पहाड़ी में प्रायः पिसै हो जाता है इसी प्रकार सिपाही का प्रायः सिपै हो जाता है।

३– लिखने मे कोई शब्द व्यंजनात नही होता किन्तु भाषण मे अकारान्त शब्दों के अन्तिम अ का लोप हो जाता है जैसे चिलम भाषण मे चिलम् रह जाता है। कुमाउँनी मे यह प्रवृति अन्य स्वरो के साथ भी पाई जाती है। भाषण मे अंतिम स्वर प्राय ह्रस्व ही नहीं हो जाता अपितु ध्वनि भी कश्मीरी[1] की भाँति आधी रह जाती है जिसे कश्मीरी मे मात्रा स्वर कहते हैं। कौवा, बिरालि, माट् छोटो का अंतिम अ, इ, उ, ओ केवल फुसफुसाहट वाले स्वर रह जाते है। और वे कौव, बिराल, माट, छोट सुनाई देते हैं।

४—हिन्दी के अकारान्त शब्द मध्य-पहाड़ी मे ओकारान्त हो जाते हैं यही प्रवृत्ति ब्रज और राजस्थानी मे पाई जाती है।

ख० बो०	ग०	कु०
भला	भलो	भलो
भौंरा	भौंरो	भौंरो
आवला	औलो	औलो
मीठा	मिट्ठो	मिठो
काला	कालो	कावो
चलना	चलणो	हिट्णो

किन्तु इस नियम के अपवाद भी पाये जाते हैं जैसे—

ख० बो०	ग०	कु०
राजा	रजा	राजा
जीजा	भीना	भिना
चाचा	काका	कका
मामा	ममा	ममा
बनिया	बण्यां	वणियाँ

किन्तु यह अपवाद केवल सज्ञा शब्दो मे ही पाये जाते हैं। विशेषण अकारान्त शब्द मध्य पहाड़ी मे अनपवाद ओकारान्त हो जाते हैं।

१–लिं० स० इ० ८/२ पृष्ठ २५९।

५—सभी ओकारान्त शब्दों के विकारी रूप मध्य पहाड़ी में आकारान्त होते हैं। जैसे-घोड़ो-घ्वाड़ा। भलो-भला।

६—हिन्दी के अकारान्त शब्द मध्य-पहाड़ी में भी अकारान्त ही रहते हैं।

ख० बो०	ग०	कु०
घर	घर	घर
बन	वण	वण
चौमास	चौमास	चौमास
भात	भात	भात
लाल	लाल	लाल

७—हिन्दी के शब्दान्त अन्य स्वर प्राय: गढ़वाली में ज्यों के त्यों रहते हैं या परिवर्तन बहुत कम होता है। किन्तु कुमाउँनी में दीर्घ के स्थान पर ह्रस्व हो जाता है। जैसे—

ख० बो०	ग०	कु०
खिचड़ी	खिचड़ी	खिचंड़ि
झाड़ू	झाड़ू	झाड़ु

८—जिस प्रकार अंग्रेजी में डू या विल आदि के साथ नाट क्रिया विशेषण जोड़ कर डोन्ट या वोन्ट शब्द बनते हैं इसी प्रकार कुमाउँनी में भी इसका एक उदाहरण मिलता है। जैसे—न्हाति (नहीं है)। इसका बहुवचन रूप न्हातन (नहीं हैं) हो जाता है।

विको वर्वै च्योलो न्हाति। उसका कोई लड़का नहीं है।

विको वर्वै च्याला न्हातन। उसके कोई लड़के नहीं हैं।

न्हाति वास्तव में नास्ति का बिगड़ा हुआ रूप प्रतीत होता है। इसका पूर्ण विवेचन क्रिया प्रकरण में किया गया है। यह रूप पश्चिमी पहाड़ी[1] बोलियों में भी पाया जाता है।

आ—शब्द समूह।

किसी भाषा के स्वरूप को निश्चित करने के लिए शब्द समूह स्थाई तत्व नहीं है। द्रविड़ भाषाओं में संस्कृत के बहुत अधिक शब्दों ने प्रवेश पा लिया है, किन्तु इन्हीं शब्दों के आधार पर द्रविड़ भाषायें आर्य-भाषाओं के अन्तर्गत नहीं आ सकती अधिक शब्दों के परिवर्तन में सबसे प्रबल प्रभाव राजनैतिक होता है। मध्य-पहाड़ी देश में जैसा कि ऐतिहासिक परिचय के प्रसंग में बताया गया है अनार्य जातियाँ रहती

१-लि० स० इ० ९/ भाग ४ पृ० ३९४; ५६८।

थी। उनके बाद खसों का प्रवेश हुआ। आर्य-क्षत्रिय राजाओं ने भी अपने राज्य स्थापित किए। नवी दसवी शताब्दी के पश्चात् गुर्जर-राजपूतों ने इस प्रदेश में प्रवेश करना आरम्भ किया। मुसलमानों के राज्यकाल में भारत के भिन्न भागों से लोग आकर इस प्रदेश में बसते गए उनके साथ उनकी प्रान्तीय भाषाओं के शब्दों के अतिरिक्त अरबी-फारसी और तुर्की भाषा के शब्द इस प्रदेश में पहुँचे। अंग्रेजी राज्य की स्थापना के पश्चात् अदालती लिपि देवनागरी होते हुए भी भाषा उर्दू हो गई अतएव इस युग में अरबी-फारसी शब्दों का आगम अधिक मात्रा में हुआ। अंग्रेजी शासन के साथ साथ अंग्रेजी शब्द तथा कई यूरोपीय भाषाओं के शब्दों ने भी मध्य-पहाड़ी में प्रवेश किया। यह क्रमिक नवागन्तुक शब्द प्राचीन शब्दों का स्थान ग्रहण करते चले गए। किन्तु प्राचीन शब्द भी सर्वथा लुप्त नहीं हुये। मूल निवासियों के शब्द-समूह के अवशेष मध्य-पहाड़ी में अवश्य होंगे किन्तु यह निश्चय करना बहुत कठिन है कि वे मूल निवासियों के शब्द हैं या देशज शब्द हैं। अतएव इस प्रकार के सब शब्द देशज के अन्तर्गत हो जायेंगे। इन शब्दों के विषय में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि लि० स० इ० में दिये हुए कई पहाड़ी भाषाओं तथा दरद भाषाओं के शब्दों में यह नहीं पाए जाते हैं। ये भारतीय आर्य भाषाओं के शब्द भी नहीं हैं। दूसरी श्रेणी में ये शब्द आते हैं जो नैपाल से लेकर चम्बा तक की पहाड़ी बोलियों में उच्चारण भेद के साथ पाए जाते हैं। इनके दर्शन दरद बोलियों में भी हो जाते है। भारतीय आर्य भाषाओं में इनका प्रयोग नहीं होता या कम होता है। इसलिए इन शब्दों को खस शब्द समूह कहा गया है। प्राचीन आर्य भाषा (भारत-इरानी) का शब्द समूह भारतीय आर्य भाषाओं, पहाड़ी भाषाओं, दरद भाषाओं और इरानी भाषाओं में बटा हुआ है अत: कुछ शब्द ऐसे हैं जो उच्चारण भेद के साथ इन सबके व्यवहार में हैं। कुछ ऐसे हैं जो पाये तो सभी आर्य भाषाओं में जाते हैं किन्तु व्यवहार में वे कुछ ही भाषाओं के हैं। शेष भाषाओं में यह नित्य के व्यवहार में नहीं आते है। कुछ शब्द ऐसे भी है जो अब केवल कुछ ही भाषाओं में रह गए हैं शेष से उनका सम्बन्ध टूट गया है। अत खस शब्द समूह से तात्पर्य केवल उन शब्दों से हैं जो भारतीय आर्य-भाषा में या तो हैं ही नहीं या उनका प्रयोग व्यवहार में नहीं है। ये शब्द पहाड़ी और दरद भाषाओं में ही पाए जाते हैं उनमें भी सब मे नहीं। कभी दो दूरस्थ दरद और पहाड़ी बोलियों में कोई शब्द समान रूप से पाया जाता है किन्तु बीच की बोलियों में नहीं है। इस बात से हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि गिलगित और चित्राल से लेकर नैपाल तक एक ही जाति या एक ही जाति की दो भिन्न शाखायें निवास करती थी जिनका शब्द समूह एक ही रहा होगा।

तीसरी श्रेणी में वे शब्द आते हैं जो मध्य-पहाड़ी के अपने शब्द नहीं हैं किन्तु जिन्हें उसने मध्य काल में अवधी राजस्थानी आदि आर्य भाषाओं से ग्रहण किया और जब खड़ी बोली हिन्दी से ग्रहण करती जा रही है। उदाहरणार्थ मध्य पहाड़ी में महोतारि शब्द के स्थान पर गढ़वाली में ढ' शब्द है और कुमाउँनी में इजा है किन्तु म्होतारि जो महतारि का बिगड़ा रूप है अवधी से लिया गया है। इसी प्रकार चौक शब्द जिसका डिंगल में अर्थ दिशा होता है और मध्य-पहाड़ी में इलाका होना है, राजस्थानी म लिया गया है। गढ़वाली तथा कुमाउँनी पिता के लिए अभी तक बबा या बबज्यु का प्रयोग होना है किन्तु हिन्दी के प्रभाव से अब कई लोग पिता जी शब्द का प्रयोग भी करने लगे हैं।

चौथी श्रेणी में विदेशी शब्द आते हैं। इसके भी तीन वर्ग हैं। पहले वर्ग में तिब्बत-बर्मी परिवार के शब्द आते हैं। ये शब्द गढ़वाल और कुमाऊँ के धुर उत्तर सीमा पर बोले जाते हैं। दूसरे में मुसलमानी प्रभाव के कारण अरबी फारसी और तुर्की के शब्द आते हैं। और तीसरे में योरोपीय भाषाओं के शब्द आते हैं।

देशज शब्द

किलमोड़ो (एक प्रकार का घास जिसकी पत्तियां खट्टी होती हैं)।कोथलो (बड़ा थैला)। कौणि (एक प्रकार का बाजरे की जाति का पीले रंग का अनाज)। खार (पच्चीस मन)। गिच्चो (मुँह)। गैणा (तारा). घुघतो (फ़ाख़ता), घ्वीड़ (हिरण), छवडि या छबडो (टोकरी), जुंगा (मूँछ), जड़या (लाई, झुंगारो या झंगारो (अनाज जिसका भात बनता है), डांडो (ऊंचा पहाड़), तिमला (अंजीर की जाति का फल), निंगालो (बांस की जाति का पेड़ किन्तु बहुत कम मोटा होता है), पुंगड़ों (खेत), बग्वाल (दिवाली), बटि (से)।

खस शब्द[1] समूह

आरम्भ में हिन्दी का शब्द दिया गया है पुनः उसके पर्यायवाची पहाड़ी दरद बोलियों के शब्द दिए गए हैं।

१. पिता :—नैपाली—बुवा। कुमाउँनी—बबा। गढ़वाली—बाबा। जौनसारी—बबा। क्यूँथाली—बाबे। कुलुई—बाब, मंडयाली—बाव, चम्याली—बब्ब, काश्मीरी—बाब, शिणा—बवा।

२. मां :—कुमाउँनी—इजा, जौनसारी—इजो, क्यूँथाली—इजो, गादि—इजि, शिणा—आजे।

१—ये शब्द लि. भ. इ ई और ड़ से लिए गए हैं।

२१. बुरा :–गढ़वाली–नखरो, शडोची–निकरो, काश्मीरी–नाकार, पश्तो–नाकार, पशाई–नाकारा ।

२२. नीच या छोटा :–कुमाउनी–ह्रु छु, गढ़वाली–ह्रु चो, कुलुई–होच्छा, सिराजी–होच्छो ।

२३. सफेद :–कुमाउनी–श्येतो,जौनसारो–शेता, कुलुई–शेत्ता, शोडोची–शित्तो, सिराजी–शिता ।

२४. अवर्षण :–गढ़वाली–बिदो, शोडोची–बिजा ।

२५. घूमना :–कुमाउनी–हड़िणा, गढ़वाली–हड़िणो (बेकार घूमना), शोडोची –हड़नो, पगवाली–हुटणा, चम्याली–हुंणटण ।

२६. जाना :–कुमाउनी–नासिणो, क्यूंथाली–नौसना, सिराजी–नसण, मड्याली–न्हैंदाण, चम्याली–न्हसणा ।

२७. पहुंचना :–कुमाउनी–पुजो, मड्याली–पुजणो, चम्याली–पुंजना, चुराही –पुंजणा ।

२८. प्रसन्न होना :–गढ़वाली–चमकणो या सिरिड़नो । चम्याली–चमकणा, गादी–सरकना ।

२९. उल्टा :–कुमाउनी–उतणो, गढ़वाली–उतणो, शोडोची–ओतणो ।

३०. काफी :–कुमाउनी–मुकुतो, गढ़वाली–मुकुतो, जौनसारी–मुकतो चम्याली –मुकतियारी ।

ऊपर दिये गये कुछ शब्द लि. स. इ. जिल्द ९ चतुर्थ भाग तथा जिल्द ८ द्वितीय भाग से लिये गये है । इन शब्दो का प्रयोग केवल पहाड़ी भाषाओं या दरद भाषाओं मे होता है । अन्य भा० आ० भाषाओ मे नही होता है ।

यहां तीस शब्द उदाहरण के लिए दिए गए हैं । इस प्रकार के अनेको शब्द हैं जिनका प्रयोग केवल पहाड़ी और दरद भाषाओ मे ही होता है अन्य भारतीय आर्य भाषाओ मे नहीं होता ! या कम होता है ।

[अन्य भारती आर्य भाषाओं से लिए हुए शब्द]

यहां अन्य भारतीय आर्य-भाषाओ से लिए गए शब्दो के साथ उनके मध्य-पहाड़ी पर्यायवाची शब्द भी दिए गए हैं । उदाहरण के लिए ऐसे कुछ शब्दो का दिया गया है जो शनै. शनैः मध्य-पहाड़ी से उसके प्राचीन शब्दो को अलग कर उनका स्थान ग्रहण कर चुके हैं या करते जा रहे हैं अथवा वैकल्पिकरूप से प्रयोग मे आते हैं । इन शब्दों का प्रयोग शिष्टता का द्योतक भी समझा जाता है ।

खड़ी बोली से.—पिता (बबा), मां (ब्वे या इजा), चचा (कका), चाची (काकी), दादा (बूबा) दादी (बूबू), स्त्री (ज्वें या सैणि), जीजा (मौना),

तितली (पुरपुतई या पुतली), बिजली (चाल), दिवाली (बग्वाल), धूप (घाम), दुबला-पतला (हरान), गोबर (मोल या मोव) हेमन्त (ह्यूंद), चक्की (जादरों) मूंछ (जूंगा), लगूर (गूणी) नाला (गधेरो), नाच (ढूंगो), रही (पातर), कुदणो (फटकाल मारणी) कपास (रुवो), गन्ना (रीखू), खेत (पुंगड़ो), जगल (बण) रुपया (कलदार या ढेपुवा) गौशाला (छन या छानो)।

अवधी से.— महतारी (म्हौतारि) कपार (रुवार या मुंड), कूकर (कुकुर या कुकर), बेलरा (ब्यालो)।

राजस्थानी से-ये शब्द राजस्थानी और मध्य-पहाड़ी में ही काम में लाये जाते हैं। हिन्दी में या तो ये हैं ही नहीं या वे प्रयोग में नहीं आते। कभी कहीं प्राचीन हिन्दी में उनका प्रयोग पाया जाता है।

राजस्थानी	गढवाली	कुमाउंनी	हिन्दी
थोक (दिशा)	थोक	थोक	इलाका
भड़	भड़	पैक	वीर
बाहलो[1]	बालो	बावो	पहाड़ी नाला
डार[2]	डार	डार	मुंड
मुंदड़ी[3]	मुदड़ी	मुंदड़ि	अगूठा
मंजक[4] (बकरी का बच्चा)	लाट्	लाट्	मेंडा
बोर[5] (गुजराती	बोरो	ब्वारो	रास्त के लिए अनाज
कहरो[6] (गुजराती)	कोरो	कोरो	मकान की एक दीवाल

विदेशी शब्द

मध्य पहाड़ी में विदेशी शब्द हिन्दी की अपेक्षा बहुत कम हैं। हिन्दी की अपेक्षा विदेशी ध्वनियों को भी कम ग्रहण किया गया है। हिन्दी-भाषी नागरिकों ने विदेशी ध्वनियाँ जैसे, क़ ग़ फ़ आदि को ग्रहण कर लिया है। किन्तु ग्रामीणों ने विदेशी ध्वनियों को अपने भाषा के निकटतम ध्वनियों में परिवर्तित कर दिया है। विदेशी ध्वनियों की यही अवस्था मध्य-पहाड़ी में भी हुई है। मुसलमानों के प्रभाव से अरबी-फ़ारसी तथा तुर्की के शब्द.—

आदिमी (आदमी), उतौल, (उतावला), उजबक, कर्ज, कबीला, कफन, कागत (कागज)। किफैत (किफ़ायत)। कैंची, खसम, खौसा (कौसह), गवाही, चक्कू (चाकू), चुगली, चौगिर्द, जमीन, जक्कर, जामिन, जागा (जगह), जोर,

---

१–२-३-४ लि० सं० इ० जिल्द ९ भाग २ पृष्ठ ६७ ६८ ६९।

५-६ लि० स० इ० जिल्द ९ भाग २ पृष्ठ ३४७-३४९।

त्यौर (तैयार), तोप, तलवार, दमक्त (दस्तखत), नादान, नालिश, निसाब (इसाफ), फैदा (फ़ायदा), फरेब, फसल, फजल, बाछा (बादशाह), बादुर (बहादुर), बजार, बखत (बक्त)। बेशक, बेशरम, बुगचा (बग़ूचह)। बुरा, मालक (मालिक), मेनत (मेहनत) मुचलका, मदत (मदद) मग्र। (मग्र)। मजबूत, याद, यार, ल्हास (लाश)। शौक, सदूक, सलाह, सडक, सरत (शर्त), सिरकार (सरकार), सिपै (सिपाही)। हवलदार, हाइतोबा।

योरोपीय भाषाओं के शब्द।

पुर्तगाली-अलमरि। अचार। कटर। कप्तान। गोबि। गुदाम। चाबि तमाखु। परात। बल्टी। बोतल।

फ्रांसिसी-कार्तूस। कुपन। फिरंगी।

अंग्रेज़ी-अपील। अर्द्'ली। अस्पताल। असम्बली। निमपैटर। इस्कूल। इस्टाम। कल्लटर। कमिश्नर। कपनी। कपोडर। कन्नल। कमेटि। कापी। कारड। कांग्रेस। कालिज। वर्चेलतार। कुनैन। कितली। कोट। गिलास। गिन्नी। जेल। टिकट। टिमाटर। टीम। टेम। डब्बल। डाक्टर। डिपटी। लोट। पल्टन। पल्मतर। पतलून। पार्मल। पेनशन। पिसिल। पिलिग। पुलिस। पैसा। पनरोल। फीस। फेल। बम। बरंडी। बैंक। बटन। बकस। बनैन। बूट। बैरग। मशीन। मनीआर्डर। मुलेजर। मास्टर। मिम्बर। मोम। मोटर। रंगरूट। रबड़। रसीद। रपोट। रासन। रेंजर। रजिस्टिरी। रिटैर। रेल। लैंप। लिपटेन। लंबर। लाट। लालटीन। लैन। समन। सतरि। सिगरेट। सलीपर। सिलेट। होल्डर। होटल।

तिब्बती वर्मी भाषा परिवार[1] के शब्द

इन शब्दों को गढवाल के मार्छा तथा अलमोड़ा के शौक लोग जो इन दोनो जिलों की उत्तरी सीमा पर रहते हैं काम मे लाते हैं।

न्हीम–दो। तिग्–एक। हिज–था या थे। फुलत–सम्बल। ती–पानी। में–आग। जै –खाना। सौंग–लकड़ी। मी–आदमी।

सामासिक शब्द

उपर्युक्त चार प्रकार के शब्दों के अतिरिक्त सामासिक शब्द भी पाए जाते हैं। मध्य-पहाड़ी मे सामासिक शब्द बहुत कम हैं। संस्कृत के प्रभाव से हिन्दी मे सामासिक शब्द प्रतिदिन बढते जा रहे हैं। यद्यपि भाषण मे उनकी मात्रा अधिक नहीं है। यहाँ मध्य-पहाड़ी के कुछ सामासिक शब्द उदाहरण के लिये दिये जाते हैं।

१—प० भा० प्र० पृ० ८६। मोर प्रकाश। कु० भा० इ० पृ० ६३६।

अब्विवाई [अविवाहिता], औंस्वें [रक्तातिसार], करमफुटो या करम फुटिया [अभागी], चौगिर्द [चारों तरफ], चौमास [बरसात], तामाखोरी [गंजा], पेट-मुल्या या पेटमुयुवा [पिता के मरते समय माँ के गर्भ में], रिसराग [ईर्ष्या], सत्यानाश [अफल्या], अल्पायुस [छोटी आयु में मरने वाला]।

कुछ सामाजिक शब्दों में पुनुरुक्त है।

अदलो-बदलो, भूल-बिसर, दई-भई, दान-पुन, घर-कूड़ी, हाइ-तोबा, देखणो-भालणों, जड़ी-बूटि, कथा-कहानी, कुटुम्ब-कबोला, दुबला-पतलो।

कुछ पुनरुक्त शब्दों में दूसरा शब्द निरर्थक होता है।

सटपट, फुलफटक [निर्मल चाँदनी] ठोकठाक [मरम्मत], पुआड़ुआ, धूम-धाम, अछतै-पछतै।

हिन्दी के समान ही पुनरुक्त शब्दों का दूसरा भाग प्राय. ह से आरम्भ होता है। जैसे—चोर-होर, मकान-हकान, लड़का-हड़का, ज्वें ह्वें, बवा-हुवा।

मध्य-पहाड़ी में प्राय: निम्नांकित विस्मयादिबोधक शब्द काम में लाए जाते हैं।

अहा! [हर्ष], ओ इजा!, ओ बोये!, हे राम! [शोक], ऍं!, ओ बाबा! [आश्चर्य], शाबास! [समर्थन], हत्तेरी!, छी! [घृणा]; हो या हों [स्वीकार]।

कभी कभी स्वीकृत का काम झटके के साथ साँस लेने से ही किया जाता है जिसमें हूँ की ध्वनि निकलती है।

इ अर्थ भिन्नता

यहाँ उन शब्दों का विवेचन किया जाता है जो एक बोली में एक अर्थ में तो दूसरी बोली में दूसरे ही अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। कुछ शब्द दोनों बोलियों में होते हुए भी अधिकांश व्यवहार में एक ही में आते हैं। दूसरी बोली में उसका पर्यायवाची शब्द काम में आता है। कुछ शब्द ऐसे भी हैं जो एक ही बोली में हैं और दूसरे में उसका सर्वथा अभाव है।

एक ही शब्द का दोनों बोलियों में भिन्न भिन्न अर्थ :—

ग०	कु०
मैंस—पति	मैंस—मनुष्य
सैणी—पत्नी	सैणि—स्त्री मात्र
बोड़—गाय का बछड़ा	बहड़—बैल
बसणों—निवास करना	बसणों—बात पर पक्का रहना
बोट—झाड़ी	बोट—बड़ा वृक्ष

ब्यालि—कल व्यतीत	ब्याल—संध्या
चेलो—शिष्य	च्यालो—लड़का
दादा जी—पितामह	दाज्यू—बड़ा भाई
थाप—पशुओं का खुला मुंह	खाप—मुंह
पाथर—छत को ढकने के पत्थर	पाथर—पत्थर मात्र
रीश—क्रोध	रिश—ईर्ष्या, क्रोध
थोल—शुअर के होठ	थोल—होंठ मात्र

दोनों बोलियों में होते हुए भी निम्नांकित शब्द एक ही के व्यवहार में अधिक आते हैं।

हि०	ग०	कु०
कहता	बोलणों	कूंणों
चलना	चलणों	हिटणों
खड़ा होना	खड़ो होणो	ठाड़ो होणों
चला गया	चलि गये	न्है गयो

निम्नांकित शब्द एक ही बोली में हैं दूसरी में उसका सर्वथा अभाव है।

हि०	ग०	कु०
तारे	गैणा	तारा
मुंह	गिचो	मुख
दूर	दूर	टाड़
हुआ	होये	भयो
से	ते	है
माँ	ब्वै	इजा या म्हौतारि
नहीं है	नीछ	न्हाति
मत, जनि	नि	झन

४—संज्ञा

[अ] स्त्रीलिंग

हिन्दी के समान ही मध्य-पहाड़ी में भी लिंग निर्णय सरल कार्य नहीं है। क्योंकि इसके लिए कोई निश्चित नियम नहीं है। लिंग की अनिश्चितता प्राचीन भारतीय आर्य-भाषाओं में और भी अधिक थी। संस्कृत में स्त्री कलत्र और दारा शब्द पर्यायवाची होते हुए भी व्याकरण की दृष्टि से क्रमशः स्त्री लिंग, नपुंसक लिंग और पुलिंग है। किसी भी जीवधारी के प्राकृतिक लिंग और उसके व्याकरणीय लिंग में सर्वथा एकरूपता नहीं है। निर्जीव वस्तुएं भी कुछ पुलिंग हैं और कुछ स्त्रीलिंग और

कुछ नपुंसक लिंग। प्राचीन आर्य-भाषाओं की इस प्रवृत्ति के समर्थन में यही बात कही जा सकती है कि निर्जीव वस्तुओं पर व्याकरण की दृष्टि से पुलिंग व स्त्रीलिंग का आरोप प्राय. उनके विशेष गुण—कठोरता, कोमलता, विशालता या लघुता के आधार पर किया गया है। जैसे लता और नदी स्त्रीलिंग है तो वृक्ष और सिंधु पुलिंग है। यह आरोप सर्वथा कल्पना प्रसूत होने से नियमित नही है। प्राचीन आर्य-भाषा की यह प्रवृत्ति हिन्दी और मध्य-पहाड़ी ने समान रूप से ग्रहण की है।

मध्य-पहाड़ी मे प्राचीन भारतीय आर्य-भाषाओं के तीन लिंगों मे से केवल दो लिंग रह गए हैं। नपुंसक लिंग का लोप मध्य देशीय भाषाओं मे अपभ्रंश काल से ही आरम्भ हो गया था। यह लिंग केवल मराठी[1] और गुजराती[2] मे बचा हुआ है। नपुंसक लिंग के लोप के साथ वे सब शब्द जो प्राचीन भारतीय भारतीय आर्य-भाषा मे नपुंसक लिंग में थे पुलिंग हो गए हैं। कुछ—यद्यपि बहुत कम मात्रा में—स्त्रीलिंग हो गए। लिंग की अनिश्चितता भारतीय आर्य भाषाओं मे ही नहीं किन्तु दरद भाषाओं, जैसे, शिणा तथा काश्मीरी में भी पाई जाती हैं। इन भाषाओं का पहाड़ी बोलियों से घनिष्ट सम्बन्ध है अत. मध्य-पहाड़ी मे लिंग निर्णय के लिए अंग्रेजी की भांति निश्चित नियम नही है। यद्यपि अंग्रेजी में भी अपवाद हैं परन्तु बहुत कम। अत. मध्य-पहाड़ी मे लिंग के सम्बन्ध में यहाँ कुछ सामान्य नियम दिए जाते है जिनमें अनेकों अपवाद भी हैं।

१— जीवधारियों के नाम—जातिवाचक या व्यक्तिवाचक—प्रायः उनके प्राकृतिक लिंग के अनुसार ही पुलिंग या स्त्री लिंग होते हैं। जैसे, बल्द (बैल)। पुलिंग हैं। और भैंस स्त्रीलिंग है। यद्यपि दोनो अकारान्त शब्द हैं। इसी प्रकार मोती शब्द पुलिंग है और सावित्री स्त्रीलिंग। यद्यपि दोनों इकारान्त हैं। किन्तु अपवाद स्वरूप भैंसो और गोरू (गाय) पुलिंग शब्द है।
   ग०—मेरी भैंसी बिकि गए या भलो गोरू छ।
   कु०—म्यारो भैंसो बिकि गया या भलो गोरू छ।

२— कुछ जीवधारियों के दोनों प्राकृतिक लिंगों के लिए एक ही शब्द काम में आता है या तो वह पुलिंग ही होता है या स्त्रीलिंग ही। जैसे उल्लू, कौवा या काणो जूंको या जरोंका, माम्रो, ऊँट, स्याल या दयाल। स्यू दयु। सरसु (खटमल), जुर्वा या जुं आदि शब्दों के स्त्रीलिंग रूप नहीं हैं। स्याल या दयाल का स्त्रीलिंग रूप कभी दयलोण भी हो जाता है। इसी प्रकार ऊनवाचक के लिए माखो का स्त्रीलिंग कभी माखी हो जाता है।

१—हि० भा० इ० पृ० २५१।
२— „ „ २५१।

कुछ जीवधारियों के लिए दोनो प्राकृत लिगो के लिए एक ही स्त्रीलिंग शब्द काम मे आता है जैसे पुतली या पुरपुतई (तितली), जोंगिण या जुग्याण (जुगनू), गिलहरी इत्यादि।

३— जहाँ किसी जाति के पुंलिंग या स्त्रीलिंग दोनों की समष्टि हो तो कभी पुलिंग और कभी स्त्रीलिंग शब्द का प्रयोग होता है।

ग०—मेला माँ मिल्यां आदिमि छया (मेले मे बहुत आदमी थे)।

कु०—म्याला मे बहोत आदिमि छ्या :

इस वाक्य मे आदिमि शब्द पुलिंग और स्त्रीलिंग दोनो के लिए प्रयुक्त हुआ है यद्यपि आदिमि शब्द पुंलिंग है। इसी प्रकार ग० मेरो नाती गोरू भैंसा चरौण कूँ बण माँ जायूँ छ (मेरा नाती गाय भैंस चराने के लिए जंगल गया हुआ है)।

कु०—मेरो नाती गौरू भैंसन चर्हण हुणि बण जे रछ।

यहाँ गोरू भैंसा या भैंसन (गाय भैंसे) स्त्रीलिंग बहुवचन शब्द हैं किन्तु बैलो के लिए भी प्रयुक्त हुआ है।

४— प्राणियों के समूह बोधक शब्द कभी पुंलिग और कभी स्त्रीलिंग होते हैं।

पुंलिग—झुंड, कुटुम्ब।

स्त्रीलिंग—डार (भीड़), पलटन।

५— निर्जीव वस्तुओ के लिंग निर्णय के लिए कोई नियम नही है। उनका लिंग प्राय. कोमलता, कठोरता, विशालता और लघुता पर निर्भर रहता है जैसा कि पहले बताया जा चुका है।

६— अ, आ, इ या ई से अन्त होने वाले शब्द दोनो लिंगो मे हो सकते है चाहे वे चेतन हो या अचेतन। अकारान्त स्त्रीलिंग शब्द बहुत कम हैं इसी प्रकार आकारान्त पुंलिग शब्द बहुत कम हैं। आकारान्त पुलिग शब्दों का बहुवचन रूप आकारान्त हो जाता है। ए, ऐ से अन्त होने वाले शब्द प्राय: स्त्रीलिंग होते हैं। उ, ऊ और औ से अन्त होने वाले शब्द प्राय: पुंलिग होते हैं और आकारान्त शब्द तो सभी पुलिंग होते हैं।

	पुंलिग	स्त्री लिंग
अ—	बल्द या बलद, बादल या बादव, स्याल।	भैंस, सौत, बैण।
आ—	घोड़ा, आंखा, डाला।	राधा, आशा, माला।
इ—ई	बैरी या बैरि, हाथी या हाति।	बेलि, नौनी बत्ती या बत्ति।
उ—ऊ	भालु, झाड़ु, स्यु या स्यु।	सासु या सासू।
	ज्यु या ज्यू (प्राण)।	
ए—	ल्वे (रक्त)।	ब्वे (मा), ब्वे (स्त्री)

ऐ— सिपै (सिपाही)। पिसै, लडै, मलै।

ओ— बाखरो या बाखरो, चलणों।

औ— जौ, भौ, तलौ (तालाब)

७—जीवधारियों के पुलिंग शब्दों से स्त्रीलिंग रूप बनाने के लिए मुख्यतः दो प्रत्यय काम में आते हैं। इ या ई और इणि या इण। इणि या इण प्रत्यय जीवधारियों पर ही लगता है जैसे हाथी या हाति—हथीण या हाथिण, पंडित - पंडतिण, या पंडतीण बाग बागिण, सम्या-ससीण, बामण, बमणि। जीवधारियों में भी उच्च श्रेणी के प्राणियों पर ही इणि प्रत्यय लगता है कौटुम्बिक सम्बन्ध को प्रगट करने वाले शब्दों पर अधिकांश इ प्रत्यय जोड़ा जाता है। जैसे मामा—मामी, काका—काकी, दादा—दादी। मुला—मुली, दादा-दिदी, मौसा—मौसी, किन्तु कभी नाती या नाति नातिण या नानिणी भी हो जाता है।

शेष सब जीवधारी शब्दों का स्त्रीलिंग रूप इ या ई प्रत्यय जोड़ कर बनाया जाता है। कुकर—कुकरी। भौंरो-भौंरी। तितरो—तितरी। चखुलो-चखुली।

८—ऊनवाचक शब्द बनाने के लिए सदैव इ या ई प्रत्यय काम में लाया जाता है। टोपरो या ठोपरो, ठोकरि या ठोपरि, लाठो या लाठी, डालो-डाली या डाई।

ऊनवाचक स्त्रीलिंग शब्द जीवधारियों के भी बनाये जाते हैं। उन पर भी इ या ई प्रत्यय जोड़ा जाता है। और लघुत्व का बोधक होता है। जैसे-माछो-माछी। माछो-माछो।

९-कई जीवधारी शब्दों को पुंलिंग से स्त्रीलिंग शब्द बनाने के लिए कोई निश्चित नियम नहीं हैं।

ग० जैसे,—देवता—देवी, अदिमि—जननो, बल्द—गौड़ो। नौनो—वोठो, बाबा-जुग्याथ।

कु०—दयता—देवि, मैस—रैंयणि, बहड-गोरु। च्यालो वोहि।

१०—विदेशी शब्दों के स्त्रीलिंग रूप मध्य पहाड़ी भाषा के नियमों के अनुसार ही बनते हैं। जब तक उनके स्त्रीलिंग और पुंलिंग शब्द भिन्न-भिन्न न हों।

मास्टर—मास्टरिण या मास्टरिणि, डाक्टर डाक्टरिण या डाक्टरिणि, किन्तु साहबमेम।

११—कुछ शब्द ऐसे होते हैं जो मध्य-पहाड़ी में हिन्दी से भिन्न लिंग रखते हैं।

हि०— आंख (स्त्रीलिंग), डर (पुलिंग), चांद (पुलिंग)

मध्य-पहाड़ी — आंखो (पुंलिग)। डर (स्त्रीलिंग)। जून चन्द्रमा (स्त्रीलिंग)।

आ—वचन

हिन्दी की ही भांति मध्य पहाड़ी में भी केवल दो वचन हैं। दरद भाषाओं तथा राजस्थानी मे भी दो ही वचन रह गए हैं। द्विवचन का लोप मध्यकालीन आर्य-भाषाओ मे हो गया था।

१—ओकारान्त शब्दो को छोड़कर शेष शब्दो के कर्ताकरण के एक वचन और बहुवचन के रूप समान होते हैं।

कर्त्ताकारक

ए० व०	ब० व०
ग०—आदिमि, भैंस, ममा, नौनी, स्यू।	आदिमि, भैंस, ममा, नौनी, स्यू।
कु०—मैंश, भैंस, ममा, चेलि, नाति	मैंश, भैंस, ममा, चेलि नाति, स्यु, स्यु।

२—ओकारान्त शब्दो के कर्त्ताकारक का बहुवचन का रूप ओ का लोप और आ के आगम द्वारा बनता है।

कर्त्ताकारक

ए० व०	ब० व
ग०—नौनो, ससुरो, काळो।	नौना, ससुरा, काळ।
कु०—च्यालो, ससुरो, क़ाळो या कालो।	च्याला, ससुरा काळा या काला।

३—ओकारान्त शब्दो को छोड़कर अन्य कारको में अन्य सब शब्दो के एक वचन के रूप कर्ता कारक के समान ही रहते हैं। किन्तु ओकारान्त शब्दों के एक वचन मे विकारी रूपआकारान्त हो जाते हैं। नौना मा या च्याला मे।

४—कुमाउनी मे कर्ताकारक को छोड़कर अन्य कारकों मे अवधी और व्रज की भांति न जोड कर बहुवचन का रूप बनाया जाता है। जैसे, मैंश—मैंशन। मैंस-मैंशन। स्यैणि—स्यैणिन। ज्वैं—ज्वेन। डांकु—डांकुन। तलौ—तलौन

कुंमाउंनी मे ओकारान्त शब्दों का विकारी रूप आकारान्त होने पर तथा बहुवचन का न प्रत्यय लगने से पूर्व अन्तिम आ के स्थान पर अ हो जाता है। यह नियम आकारान्त शब्दो के लिए भी काम में लाया जाता है।

घोडो—घ्वाड़ा—घ्वाड़न। दर्गड़िया—दर्गड़ियन।

५—गढवाली मे अन्य कारकों मे (कर्त्ता को छोडकर) अकारान्त, आकारान्त और ओकारान्त शब्दों के अन्त के स्वर को लोप करके उनके स्थान पर बहुवचन

के लिए ओं या ऊँ जोड़ देते हैं। इकारान्त या ईकारान्त शब्दों के अन्तिम इ या ई को लोप करके उनके स्थान पर इयों या इयूँ तथा एकारान्त शब्दों के अन्त में भी यों या यूँ जोड़ देते हैं। इकारान्त तथा ऊकारान्त शब्दों के अन्तिम स्वर को दीर्घ करके अनुस्वरान्त कर देते हैं। ओकारान्त शब्दों के अन्तिम स्वर का लोप होकर ऊँ का आगम हो जाता है उदाहरणार्थ—

ग० भैंस—भैंसों या भैंसूं, दगड़िया—दगड़ियों, पड़ोसी—पड़ोसियों, नौनी—नौनियों या नौन्यों, ब्वे—ब्यों या ब्यूं, डाकू—डाकूँ, म्यू—म्यूं या मिऊँ, तल्लो—तल्ऊँ, नौनो—नौनों।

६—दोनों बोलियों में विदेशी शब्द को भी उपर्युक्त नियमों का पालन करना पड़ता है।

जैसे-मास्टर—मास्टरों या मास्टरन, मालिक—मालिकों या मालिकन, डिप्टी—डिप्टियों या डिपटयन, चक्कू—चक्कूं या चक्कुन।

७—कभी कभी लोग शब्द जोड़कर भी बहुवचन का बोध कराया जाता है।

ग०—भंडारी लोग निखन (भंडारी नहीं है)

कु०—भंडारि लोग न्हातन।

८—कुछ अनाजों के नाम सदैव बहुवचन में होते हैं जब तक एक दाने से तात्पर्य न हो। ग्युं, चणा या चाणा, भट, गहथ या गहथा।

९—आदरार्थ जी साहब आदि शब्द लगाये जाते हैं। जिससे उनके साथ की क्रिया का रूप बहुवचन में हो जाता है। जैसे

ग०—पटवारी जी रहेंदा छया, मास्टर साहब पढ़ौंणा छन।

कु०—पटवारि ज्यु रौंछिया, मास्टर ज्यू पढ़ौंण लै रैं।

इ—कारक

मध्य पहाड़ी में हिन्दी तथा अन्य वर्तमान भारतीय आर्य भाषाओं के समान ही संज्ञा तथा सर्वनाम शब्दों के कारकों को प्रगट करने के लिए उनके पश्चात कुछ शब्द रखे जाते हैं जिन्हें कारक चिह्न या परसर्ग कहते हैं। परसर्गों लगने से पूर्व कुछ शब्दों में विकार हो जाता है उनका यह रूप विकारी रूप कहलाता है। भिन्न भिन्न स्वरों में अन्त होने वाले शब्दों के विकारी और अविकारी रूप नीचे दिये जाते हैं।

केवल ओ में अन्त होने वाले शब्दों का बहुवचन में अविकारी रूप आकारान्त हो जाता है शेष में एक वचन का ही रूप बहुवचन में भी होता है। अर्थात मूल शब्द दोनों वचनों में रहता है।

परसर्ग लगने पर केवल ओकारान्त शब्दों को छोड़कर शेष के एक वचन के रूप

अविकारी शब्दों के समान ही मूल शब्द काम मे आता है किन्तु बहुवचन मे रूप बदल जाते हैं।

विकारी

	ग०		कु०	
	ए० व०	ब० व०	ए० व०	ब० व०
अ	बीर	वीरों	पैंक	पैंकन
आ	दगड़िया	दग्ड़ियों	दगाड़िया	दगाडियन
इ, ई	बैरि, नौनी	बैर्यों, नौन्यों	बैरि, चेलि	बैरिन, चेलिन
उ, ऊ	डाकु, स्यू	डाकू, सिऊँ	डाकु, स्यु	डाकुन, सिउन
ए	ब्वे, ज्वे	ब्वेयों ज्वेयों	ज्वे	ज्वेन
ऐ	सिपै	सिपयों	सिपै	सिपैन
ओ	तलो	तलऊँ	तलो	तलोन

ओकारान्त शब्द परसर्ग न लगने पर भी रूप बदलते हैं। उनके विकारी और अविकारी रूप दोनो दिए जाते हैं।

अविकारी

	ग०		कु०	
	ए० व०	ब० व०	ए० व०	ब० व०
ओ	घोड़ो	घ्वाड़ा	घोड़ो	घ्वाड़ा

विकारी

घ्वाड़ा	घ्वाड़ों	घ्वाड़ा	घ्वाडन

अपवाद—

गढ़वाली में कुछ अकारान्त स्त्रीलिंग शब्द जैसे रात, बात, घात, वाद आदि का कर्त्ता कारक बहुवचन का विकारी रूप रता, बता, घता और घदा आदि हो जाता है। अन्य कारकों में बहुवचन का विकारी रूप रातों, बातों आदि के साथ रतूं, बतूं आदि हो जाता है।

कुछ आकारान्त शब्दों के विकारी रूपों के बहुवचन मे अन्तिम आ का लोप नही होता। उन पर ओं प्रत्यय जोड़ा जाता है जैसे-बबा-बबाओं। सेवा-सेवाओं। आज्ञा-आज्ञाओं।

कुमाउँनी मे आकरान्त शब्दो के बहुवचन के विकारी रूपो का अंतिम आ लुप्त होकर अ रह जाता है। उसके पश्चात न प्रत्यय लगता है जैसे—दगाड़िया—दगड़ियन।

के लिए औं या ऊँ जोड़ देते हैं। इकारान्त या ईकारान्त शब्दों के अन्तिम इ या ई को लोप करके उनके स्थान पर इयौं या इयूँ तथा एकारान्त शब्दों के अन्त में भी यौं या यूँ जोड़ देते हैं। उकारान्त तथा ऊकारान्त शब्दों के अन्तिम स्वर को दीर्घ करके अनुस्वरान्त कर देते हैं। ओकारान्त शब्दों के अन्तिम स्वर का लोप होकर ऊँ का आगम हो जाता है उदाहरणार्थ—

ग० भैंस—भैंसौं या भैंसू; दगड़िया—दगड़ियौं, पहाड़ी—पहाड़ियौं, नौनी—नौनियौं या नौन्यौं, ब्वे—ब्वौं या ब्वयूँ, डाकू—डाकूँ, म्यू—म्यूँ या मिऊँ, वलो—वल्ऊँ, नौनो—नौनों।

६—दोनों बोलियों में विदेशी शब्द को भी उपर्युक्त नियमों का पालन करना पड़ता है।

जैसे-मास्टर—मास्टरौं या मास्टरन, मालिक—मालिकौं या मालिकन, डिप्टी—डिप्टियों या डिप्टियन, चक्कू—चक्कू या चक्कुन।

७—कभी कभी लोग शब्द जोड़कर भी बहुवचन का बोध कराया जाता है।

ग०—भंडारी लोग निठन (भंडारी नहीं हैं)

कु०—भंडारि लोग न्हातन।

८—कुछ धातुओं के नाम सदैव बहुवचन में होते हैं जब तक एक दाने से तात्पर्य न हो। ग्यूँ, चणा या चाणा, भट, गह्त या गह्या।

९—आदरार्थ जी साहब आदि शब्द लगाये जाते हैं। जिससे उनके साथ की क्रिया का रूप बहुवचन में हो जाता है। जैसे

ग०—पटवारी जी ऐंदा छया, मास्टर साहब पढौंदा छन।

कु०—पटवारि ज्यू रौंछिया, मास्टर सैब पढौंनै रै।

ट—कारक

मध्य पहाड़ी में हिन्दी तथा अन्य वर्तमान भारतीय आर्य भाषाओं के समान ही संज्ञा तथा सर्वनाम शब्दों के कारकों को प्रकट करने के लिए उनके पश्चात् कुछ शब्द रखे जाते हैं जिन्हें कारक चिह्न या परसर्ग कहते हैं। परसर्गों लगने से पूर्व कुछ शब्दों में विकार हो जाता है उनका यह रूप विकारी रूप कहलाता है। भिन्न भिन्न स्वरों से अन्त होने वाले शब्दों के विकारी और अविकारी रूप नीचे दिये जाते हैं।

केवल ओ से अन्त होने वाले शब्दों का बहुवचन में अविकारी रूप आकारान्त हो जाता है शेष में एक वचन का ही रूप बहुवचन में भी होता है। अर्थात् मूल शब्द दोनों वचनों में रहता है।

परसर्ग लगने पर केवल ओकारान्त शब्दों को छोड़कर शेष के एक वचन के रूप

अविकारी शब्दों के समान ही मूल शब्द काम मे आता है किन्तु बहुवचन मे रूप बदल जाते हैं।

विकारी

	ग०		कु०	
	ए० व०	ब० व०	ए० व०	ब० व०
अ	बीर	वीरौं	पैक	पैकन
आ	दगड़िया	दगिड्यौं	दगाडिया	दगाड़ियन
इ, ई	वैरि, नौनी	वैर्यौं, नौन्यौं	वैरि, चेलि	वैरिन, चेलिन
उ, ऊ	डाकु, स्यू	डाकूं, सिऊं	डाकु, स्यु	डाकुन, सिउन
ए	ब्वे, ज्वे	ब्वेयौं ज्वेयौं	ज्वे	ज्वेन
ऐ	सिपै	सिपयौं	सिपै	सिपैन
ओ	तलो	तलऊं	तलो	तलोन

ओकारान्त शब्द परसर्ग न लगने पर भी रूप बदलते हैं। उनके विकारी और अविकारी रूप दोनो दिए जाते हैं।

अविकारी

	ग०		कु०	
	ए० व०	ब० व०	ए० व०	ब० व०
ओ	घोड़ो	घ्वाड़ा	घोड़ो	घ्वाड़ा

विकारी

घ्वाड़ा	घ्वाड़ौं	घ्वाड़ा	घ्वाड़न

अपवाद—

गढ़वाली में कुछ अकारान्त स्त्रीलिंग शब्द जैसे रात, बात, घात, वाद आदि का कर्त्ता कारक बहुवचन का विकारी रूप रता, बता, घता और घदा आदि हो जाता है। अन्य कारकों मे बहुवचन का विकारी रूप रातौं, बातौं आदि के साथ रतूं, बतूं आदि हो जाता है।

कुछ आकारान्त शब्दो के विकारी रूपों के बहुवचन में अन्तिम आ का लोप नहीं होता। उन पर औं प्रत्यय जोड़ा जाता है जैसे-बबा-बबाओं। सेवा-सेवाओं। आज्ञा-आज्ञाओं।

कुमाउँनी मे आकरान्त शब्दो के बहुबचन के विकारी रूपो का अंतिम आ लुप्त होकर अ रह जाता है। उसके पश्चात न प्रत्यय लगता है जैसे—दगाड़िया—दगड़ियन।

श्री ग्रियर्सन[1] महोदय ने कुमाउँनी में गलो का एक वचन में विकारी रूप गालन तलो का तलौन और मौल का मौल्न माना जाता है। इसे उन्होंने अपवाद बताया है। किन्तु वास्तव में बात यह नहीं है।

१—मौल्न[2] जसो देखि छियो [मौलों जैसा दिखाई देता था]।

२—बोका गालन[3] बन्यो छि [उसके गले में बंधा था]।

३—बाख्रों मून पाणि पीण हुणि तलौन[4] हालि [बकरा मुंह पानी पीने के लिए तालाब में डाली]

पहिली पंक्ति में मौल्न शब्द स्पष्ट ही मौल का बहुवचन रूप है और मौल्न जसो का अर्थ मौलों जैसे है न कि मौल जैसा। दूसरी और तीसरी पंक्ति में भी मध्य-पहाड़ी की प्रवृत्ति न समझने के कारण ही भूल हुई है। हिन्दी में तथा मध्य पहाड़ी में परसर्गों के स्थान पर कभी कभी सम्बन्ध सूचक अव्यय काम में लाए जाते हैं किन्तु हिन्दी में सम्बन्ध सूचक अव्ययों से पूर्व सम्बन्ध कारक का परसर्ग होता है। मध्य-पहाड़ी में बिना सम्बन्ध कारक के परसर्ग के भी सम्बन्ध सूचक अव्यय लगाये जाते हैं। जैसे—

मालन भितर है वेर भितर[5] भितर गयो। यहाँ भितर सम्बन्ध सूचक शब्द बिना का विभक्ति लगाये हुए ही रक्खा गया है। इसी प्रकार गालन तथा तलौन में 'टन' सम्बन्ध सूचक शब्द, बिना का परसर्ग के ही लगा हुआ है।

गालो – टन [गालन] = गले के नीचे, गले में।

तलो + टन [तलौन] = तालाब में या तालाब के नीचे।

गढ़वाली में यही सम्बन्ध सूचक अव्यय उंद है। जैसे

गला उंद (गले में)

ग्रियर्सन[6] महोदय ने ऐसे अन्त होने वाले कुछ विकारी रूप माने हैं किन्तु यह भी मध्य पहाड़ी की प्रवृत्ति न जानने के कारण भूल हुई है।

सम्बन्ध कारक में यदि भेद्य शब्द पुल्लिंग हो तो ओकारान्त रूप में भी विभक्ति का लोप होकर भेदक शब्द पर ओ जुड़ जाता है। जैसे राजा का चेला। राजो चेला।

१—लि० स० इ० वाल्यूम ९ भाग ४ पृष्ठ ११७।

२—लि० स० इ० वा० ९, भाग ४ पृष्ठ १६७।

३—लि० स० इ० वा० ९ भाग ४ पृष्ठ १६७।

४—लि० स० इ० वा० ९, भाग ४ पृष्ठ १५८।

५. लि० स० इ० वा० ९ भाग ४ पृष्ठ १६८।

६. लि० स० इ० वा० ९, भाग ४ पृष्ठ ११७।

इसी प्रकार यदि भेद्य स्त्रीलिंग शब्द हो तो की विभक्ति का लोप होकर भेदक शब्द पर ऐ जुड़ जाता है। जैसे - राजा की चेली राजै चेलि। यह प्रवृत्ति गढ़वाली कुमाउंनी दोनों बोलियों मे है। यदि भेदक शब्द इकारान्त हो तो को का की का लोप नही होता। उनका उच्चारण हल्का अवश्य हो जाता है। अतः पापिन की दुर्दशा के स्थान पर शीघ्रता में पापिनै दुर्दशा हो जाता है। कभी कभी लिखने मे लोग भ्रम से पापिनै के पश्चात् की परसर्ग भी रख देते हैं। जैसे—पापिनै की दुर्दशा।

परसर्ग

	ग०	कु०	हि०
कर्ता	न	ले	ने
कर्म	सणि, कू	कणि, कन कैं	को
करण	ते, न	ले	से
सम्प्रदान	सणि, कू	कणि, कैं, थैं, हुणि, सु	के लिए
अपादान	ते, बटि	बटि, है, हैवेर	से
सम्बन्ध	को, का, की	को, का, कि	का, के की
अधिकरण	मां, पर तलक,	में, पर, जाँलइ	में

उपर्युक्त परसर्गों के अतिरिक्त संबध सूचक अव्ययों से भी कारक का काम लिया जाता है। हिन्दी में इन सबध सूचक अव्ययों से पूर्व सम्बन्ध कारक की विभक्ति लगाना आवश्यक है किन्तु मध्य पहाड़ी में यह वैकल्पिक है।

सम्बन्ध सूचक अव्यय

	गढ़वाली	कुमाउंनी
करण	मारा (मारे), बिना	मारियाँ बिना
सम्प्रदान	बान्	लिज्यो
अधिकरण	मछे, बीच, मूड़ि	विच, तलि, मलि, मुणि, उबां, उन
	मथि, उब,उंद नजीक दगड़ो।	दगड़ि

इनके अतिरिक्त अधिकरण कारक के लिए और भी अनेकों सम्बन्ध सूचक अव्यय हैं। कर्ताकारक मे गढ़वाली और कुमाउंनी मे क्रमशः 'न' या 'ले' परसर्ग हिन्दी के समान ही सामान्य भूतकालिक सकर्मक क्रिया के साथ आती हैं। किन्तु मध्य-पहाड़ी में 'न' या 'ले' का प्रयोग भविष्यत् काल (करणीय अर्थ) में भी होता है। अन्य स्थानों पर सदैव कर्ता कारक मे अविकारी शब्द का प्रयोग होता है। कर्म कारक मे भी कभी कभी परसर्ग का लोप होता है।

कारकों के उदाहरण

अविकारी ग०—पश्चिम का बीरन भारी जोर लगायें [सामान्य भूत सकर्मक]

कु०—पछाँ का पैकले बड़ो जोर लगायो

हि०—पश्चिम के वीर ने भारी जोर लगाया

ग०—मैंन आज बरत रखण [भविष्यत करणीय]

कु०—मैंले आज बरत रखण ,,

हि०—मुझे आज व्रत रखना है। ,,

परसर्ग रहित कर्म।

ग०—वीर की नोनी धान्ती कुटनी छई।

कु—पैक की चेलि धान कुटनि लागि रैछि।

हि०—वीर की लड़की धान कूट रही थी।

ग०—मैं वें का वास्ता रोटी लिजाद।

कु०—मैं वी कणि रुवाटा दिण जाछु।

हि०—मैं उसको रोटी देने जाती हूँ।

ग०—मैं द्वियों की लड़ाई देखली।

कु०—मैं द्विन की लड़ाई देखलो।

हि०—मैं दोनों की लड़ाई देखूंगी।

सपरसर्ग कर्म (क, कणि)।

ग०—हाथी कू अनोखो कीड़ो देखी क।

कु०—हाति कणि अनोखो किड़ो देखिबेर।

हि०—हाथी को अनोखा कीड़ा देखकर।

ग०—यू सब कीड़ों कणि बिराला कू दे दे।

कु०—यूं सब किड़न कणि बिराल हूणि दिदे।

हि०—इन सब कीड़ों को बिल्ली को दे दो।

करण [न, ले न परसर्ग], [मारा, मारियां, बिना परसर्गवत् शब्द]

ग०—किलकार न वें वीर की नीद खुली।

कु—चिल्लाट ले वी पैक कि नीन टुटि गई।

हि०—चिल्लाहट से उस वीर की नींद टूट गई।

ग०—डरा का मारा भितर भाजि गई।

कु०—डरा का मारियां भितेर भाजि गई।

हि०—डर के मारे भीतर भाग गई।

ग०—अन्न बिना चैन नी छ।

कु०—अन्न बिना चैन नि छ।

हि०—अन्न के बिना चैन नहीं है।

ग०—अपणा हाथन भोजन बणाए।

हि०—अपने हाथ से भोजन बनाया।

सम्प्रदान—[कू, कणि, सणि, सुं हुणि, यें], [बानूं, लिज्या परसर्गवत् शब्द]

ग०—हमारा बिराला कू दे दे।

कु०—हमारा बिराल कणि दि दे।

हि०—हमारी बिल्ली को दे दो।

ग०—ऊं सणि एक बुड्ली मिले।

कु०—उनन कणि एक बुढ़िया मिली।

हि०—उनको एक बुढ़िया मिली।

कु०—सातू को थैलो जो बाटा हुणि चैंछियो।

हि०—सत्तू का थैला जो रास्ते के लिए चाहिए था।

कु०—एक बण हाति लै पाणि पिण सुं वी तलो मे आयो।

हि०—एक जंगली हाथी भी पानी पीने के लिए उस तालाब मे आया।

कु०—द्वीन ले बुढ़िया यें क्यो।

हि०—दोनों ने बुढ़िया से कहा।

कुमाउंनी मे कहना क्रिया का गौण कर्म सम्प्रदान कारक मे रहता है। गढ़वाली में बोलना क्रिया का गौन कर्म अधिकरण में होता है।

हिन्दी मे जहां 'के पास' का प्रयोग होता है वहा कुमाउंनी में सम्प्रदान के परसर्ग 'यें' आता है। और गढ़वाली मे अधिकरण का परसर्ग मां आता है या कभी कभी हिन्दी के समान 'के पास' का प्रयोग भी होता है।

कु०—एक दिन वामदेव ऋषि राजा यें आयो।

हि—एक दिन वामदेव ऋषि राजा के पास आया।

ग०—देश का बानूं गांधी जी न प्राण देईन।

हि०—देश के लिए गाधी जी ने प्राण दिए।

कु०—सामल का लिज्या सातू को थैलो।

हि०—सम्बल के लिए सत्तू का थैला।

अपादान.—(ते, है, है बेर, बटि, परसर्ग)

ग०—आंखा ते निकालो क।

कु०—आंखा है निकालिबेर।

हि०—आंख से निकाल कर।

ग०—एक को घर दूसरा का घर ते ।

कु०—एका का घर है दोहरा का घर ।

हि०—एक के घर से दूसरे के घर ।

ग०—जब बटि मैं जवान ह्वे यूँ ।

कु०—जब बटि मैं ज्वान भयूँ ।

हि० जब से मैं जवान हुआ ।

ग०—एक से एक बडो और एक से एक छोटो छ ।

कु०—एक है एक ठुलो और एक है एक नानो छ ।

हि०—एक से एक बड़ा है और एक से एक छोटा है ।

ग०—हम तेरी सृष्टि मां सबसे छोटा छवां ।

कु०—हम तेरी सृष्टि मे सबन है नाना छू ।

हि०—हम तुम्हारी सृष्टि मे सब से छोटे हैं ।

कुमाउंनी मे हिन्दी के 'मे से' के स्थान पर 'मे है' का प्रयोग होता है और गढ़वाली में (मां) ।

कु०—सब वस्तुन में है ।

ग०—सब वस्तुओं मां ।

हि०—सब वस्तुओं मे से ।

संबंध :— (को, के, कि)

ग— एक को नाम सुणी क ।

कु० — याका को नाम सुणि बेर ।

हि० — एक का नाम सुनकर ।

ग० — पूर्व दिसा का काणा ।

कु० -- पूरब दिशा का कुणा ।

हि० — पूर्व दिशा के कोन ।

ग० — पछिम का वीर कि नौनी ।

कु० — पछो का पैक कि चेलि ।

हि० — पश्चिम के वीर की लड़की ।

कुमाउंनी मे अकारान्त शब्दों पर का परसर्ग लगने पर अकारान्त, आकारान्त हो जाता है ।

ग० - वण का मिरग ।

कु० —वणा का मिरग ।

जैसा कि पहिले बताया जा चुका है कि मध्य-पहाड़ी में शीघ्र भाषण के

कारण संबंध कारक की विभक्तियां का, के, कि कभी लुप्त हो जाती है। और भेदक का अंतिम स्वर लुप्त हो कर क्रमशः ओ आ और ऐ का आगम हो जाता है। इस अंतिम स्वर पर स्वराघात होता है। जैसे राजो नौनो च्यालो, राजा नौना या च्याला, राजै नौनि या चेलि (राजा का लड़का, राजा के लड़के, राजा की लड़की)

यदि भेदक शब्द इ या ईकारान्त हो तो उसमे कोई परिवर्तन नहीं होता केवल संबंध कारक की विभक्तियों का विकल्प से लोप हो जाता है।

ग०	कु०
नौनी, ससुरो या नौनो को ससुरो।	चेली, ससुरो या चेलि को ससुरो।
नौन, लट्ला (बाल) या नौनो का बाल।	चेली, बाव या चेलि का बाल।
नौनी, सास या नौनी की सासु	चेली सासु या चेलि कि सासु।

भेदक शब्द यदि ह्रस्वान्त हो तो वह दीर्घान्त हो जाता है।

अधिकरण :—(मे, मा, पर, तलक, जालै परसर्ग),

ग०—तलो माँ डाल दिन्या।

कु०—तलो मे खिति दिया।

हि०—तालाव मे डाल दिये।

मध्य-पहाड़ी मे 'मा' ओर 'मे' का प्रयाग पर क स्थान पर भी होता है। जैसे :—

ग०—अपणा मुंड मा।

कु०—आपणा रुवरा मे।

हि०—अपने सिर पर।

ग०—मैं पर विपद आईं छ।

कु०—मै पर विपत ऐरै छ।

हि०—मुझ पर विपत्ति आई हुई है।

ग०-दोफरा तलक चले।

कु०—दोफरि जालै हिटां।

हि०—दोपहर तक चला।

ग०—त्वे दगड़ी मिलन की इच्छा छई।

कु०—त्वे दगडि भेंट करण कि इच्छा छि।

हि०—तुम्हारे साथ भेंट करने की इच्छा थी।

गढ़वाली मे बोलना क्रिया का गौण कर्म अधिकरण कारक मे होता है।

ग०—दूसरी जनानी मा बोले।

हि०—दूसरी स्त्री ने कहा।

गढ़वाली में हिन्दी 'के पास' के स्थान पर 'मा' का ही प्रयोग होता है जबकि कुमाउंनी में सम्प्रदान की विभक्ति 'पै' का प्रयोग होता है।

ग०—मातंग राजा मा गए या राजा का पास गए।

कु०—मातंग राजा पै गयो।

हि०—मातंग राजा के पास गया।

गढ़वाली में हिन्दी 'में से' के स्थान पर मा प्रयोग होता है।

ग०—मैं सणि अपणा नौकरों मा एक का बराबर बणावा।

हि०—मुझे अपने नौकरों में से एक के बराबर बनाओ [मसमो]

सम्बोधन :—

गढ़वाली में सम्बोधन के समय अन्तिम स्वर पर बलात्मक स्वराघात होता है। एक वचन में यदि अन्तिम स्वर ह्रस्व हो तो दीर्घ हो जाता है जैसे—ये गोविन्द! के स्थान पर ये गोविन्दा[1] हो जाता है। बहुवचन में शब्द का अन्तिम स्वर दीर्घ भी हो तो ह्रस्व कर लिया जाता है। और उस पर औ या यौ जोड़ लिया जाता है।

कुमाउंनी में सम्बोधन के एक वचन में उपान्त्य स्वर पर बलात्मक स्वराघात होता है और बहुवचन में गढ़वाली के ही समान कुमाउंनी में भी अन्त में औ या यौ का आगम हो जाता है।

ग०		कु०	
ए० व०	ब० व०	ए० व०	ब० व०
ये डाक्‌।	ये डाकुऔ	ये डाक्‌।	ये डाकुऔ।
ये नौना।	ये नौनाऔ।	ये स्याल।	ये स्यालाऔ।

परसर्गों की व्युत्पत्ति

हिन्दी तथा मध्य पहाड़ी के परसर्ग वास्तव में संस्कृत के अनुसार विभक्तियाँ नहीं हैं। संस्कृत में विभक्तियाँ शब्द से संश्लिष्ट रहती हैं किन्तु हिन्दी तथा मध्य पहाड़ी में ये परसर्ग शब्द से अलग रहते हैं सम्बन्ध सूचक अव्यय घिसते घिसाते हिन्दी और मध्य-पहाड़ी के विशिष्ट विभक्तियों या परसर्गों का रूप धारण करते हैं और कालान्तर में शब्द से संश्लिष्ट हो जाती हैं। हिन्दी के कुछ विद्वानों ने इन्हें विभक्ति माना है, कुछ विद्वान इन्हें कारक चिन्ह या परसर्ग[2] भी कहते हैं। हिन्दी की ही समानता पर यहाँ इन्हें परसर्ग कहा गया है।

१—का० गु० हि० व्या० पृ० २५५-२५६।

२—डा० भं० भा० पृ० २१२।

परसर्गों की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में हिन्दी के ही समान मध्य-पहाड़ी में भी अस्पष्टता है। क्रमिक साहित्य की उपलब्धि के कारण हिन्दी के भाषा विज्ञानियों ने कुछ परसर्गों के विकास पर प्रकाश डाला है किन्तु कुछ का विकास अभी संदिग्ध है। साहित्य के अभाव मे मध्य-पहाड़ी के परसर्गों के सम्बन्ध मे अनुमान का ही सहारा लेना पड़ता है। मध्य-पहाड़ी के परसर्ग पश्चिमी हिन्दी तथा अवधी से साम्य रखती है।

कर्ता—न (ग), ले (कु०) का सम्बन्ध हिन्दी के ने' परसर्ग[1] से है। 'न' की की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध मे अनेक अनुमान लगाए गए हैं। 'ले' परसर्ग नेपाली मे भी पाया जाता है अन्तर इतना ही है कि कुमाउँनी मे कर्ता के पश्चात् ले रखने पर क्रिया कर्म के अनुसार बदलती है जबकि नेपाली मे कर्ता पर 'ले' लगाने पर भी क्रिया 'कर्ता के अनुसार ही रहती है। 'ने', 'न' आदि 'ले' को रूपान्तर मात्र है जिसकी व्युत्पत्ति अधिकांश भाषा विज्ञानी लग्ने से करते हैं। लग्य.—>लाग्ग—>लागि—>लाइ —>ले। ल का न बनाना कई स्थानो पर पाया जाता है यथा लवण—>नोन। गढ़वाली और कुमाउँनी मे 'न' या 'ले' करणीय भविष्यत् के कर्ता पर भी लगता यथा मैले जाण, मैन जाण (मुझे जाना है)।

कर्म-सम्प्रदान—कू (ग), कणि, कन (कु०) का सम्बन्ध हिन्दी के को, कौं से है[2] जिसकी व्युत्पत्ति कक्ष से की जाती है। कक्षं —>कवंख, कह्—>कौं या को, को —>कू (ग०); मणि कन (कु०)। अवधी मे कहं का प्रयोग होता है। कुमाउँनी पर अवधी का प्रभाव अधिक होने से कणि, कन मे अनुनासिकता बनी हुई है।

सणि (ग०) और सूँ (कु०) का सम्बन्ध हिन्दी[3] अवधी[4] तथा राजस्थानी[5], के सूँ,से, सन,से है जिनकी व्युत्पत्ति समसे की जाती है। हिन्दी, अवधी राजस्थानी में सूँ, से, मन करण-सम्प्रदान के परसर्ग हैं। परसर्ग का विपय अन्य भाषाओं में भी पाया जाता है। उदाहरणार्थ गुजराती और मारवाड़ी का 'नैं' कर्म का परसर्ग है किन्तु हिन्दी मे कर्ता पर लगता है जिसकी क्रिया सामान्य भूतकाल में सकर्मक हो।

कुमाउँनी 'हुणि', 'हूँ' का सम्बन्ध अवधी 'हिं' से है। रामहि (राम को)

१—हि० भा० इ० पृ० २६०।
२—हि० भा० इ० पृ० २६१।
३—हि० भा० इ० पृ० २६२।
४—वा० अ० म० पृ० २२२।
५—र० भा० स० पृ ३८।

यही हि, सँ और सानि के अनुकरण पर हूँ, हूनि हो गई है। हि, अवधी में विभक्ति है किन्तु कुमाउँनी परसर्ग।

कुमाउँनी तथा पूर्वी गढ़वाली की 'थैं'। जिसका अर्थ कुमाउँनी में 'के पास' और पूर्वी गढ़वाली मे 'का' अर्थ होता है संस्कृत स्थाने व्युत्पन्न है। स्थाने—ठाने—ठाईं—थाईं—थैं।

करण—गढ़वाली मे 'तैं' परसर्ग का सम्बन्ध ब्रज और अवधी के तें या तैं से है। ब्रज और अवधी मे तें करण का परसर्ग है। संस्कृत तृतीया व व के तः से इसकी व्युत्पत्ति की जाती है। तः—तेहि—ते या तैं, तें। 'न' परसर्ग का प्रयोग भी गढ़वाली में करण के लिए होता है।

कुमाउँनी मे करण का परसर्ग 'ले' है जिसका उल्लेख कर्ता के परसर्ग के अन्तर्गत किया जा चुका है।

अपादान—गढ़वाली मे अपादान में भी करण के समान ही 'तैं' का प्रयोग होता है जिस प्रकार हिन्दी में करण अपादान के लिए 'से' का प्रयोग।

'बटि' परसर्ग गढ़वाली और कुमाउँनी दोनों मे प्रयुक्त होता है। इसकी उत्पत्ति संस्कृत वर्त्मन् से हुई है। वर्त्मन्—वत्ता—वटा—बाटे—बटि। यह शब्द रास्ते के अर्थ मे अभी भी प्रयोग मे आता है।

है, है बेर का प्रयोग कुमाउँनी मे होता है। हो धातु के पूर्वकालिक कृदन्त है पर बेर लगाकर कुमाउँनी मे है बेर (होकर) पूर्वकालिक क्रिया बनती है। इसी है बेर का प्रयोग अपादान के परसर्ग के लिए भी होता है। कभी बेर छोड़ भी दिया जाता है और केवल है से काम चल जाता है।

सबंध—गढ़वाली और कुमाउँनी में सबंध के परसर्ग को, के, कि हैं। इनका सम्बन्ध ब्रज तथा खड़ी बोली के को या का, के, की से है। सम्बन्ध कारक में को, के, की का प्रयोग भेद के लिंग, वचन के अनुसार होता है। इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत कृत. से मानी जाती है। कृत.—कर्तो—कओ—को अथवा प्रा० करिओ—करिओ—केरिओ—केरो—केरो—कर—को या का।

अधिकरण का परसर्ग गढ़वाली में मां और कुमाँउनी मे मे है जिनकी व्युत्पत्ति हिन्दी के समान संस्कृत मध्य से की जाती है। मध्ये—मज्झे—मँहँ या माँहि—में या मां।

५—विशेषण

१—मध्य-पहाड़ी में विशेषणों का प्रयोग हिन्दी के ही समान होता है। जिस प्रकार हिन्दी में आकारान्त विशेषण आकारान्त संज्ञाओं के समान ही विकारी रूप धारण करते हैं। इसी प्रकार मध्य-पहाड़ी मे ओकारान्त विशेषण भी ओकारान्त

शब्दों के समान ही विकारी रूप धारण कर लेते हैं। कर्त्ताकारक एकवचन के विशेष्य के साथ ओकारान्त विशेषणों में कोई परिवर्तन नहीं होता किन्तु अन्य कारकों के एकवचन तथा बहुवचन शब्दों के साथ वे आकारान्त हो जाते हैं। स्त्रीलिंग विशेष्य के साथ वे ईकारान्त या इकारान्त हो जाते हैं। अन्य विशेषणों में कोई रूपात्मक परिवर्तन नहीं होता है। यहाँ ओकारान्त विशेषणों के रूप दिए जाते हैं।

	कर्ता कारक		अन्य कारक	
	ए० व०	ब० व०	ए० व०	ब० व०
ग०—पु०	भलो	भला	भला	भला
स्त्री०	भलि	भलि	भलि	भलि
कु०—पु०	भालो	भाला	भालो	भाला
स्त्री०	भलि	भलि	भलि	भलि

२—गुण के अनिश्चय पर विशेषण पर मध्य-पहाड़ी में सि या जसो लगा देते हैं। हिन्दी में इन स्थानों पर सा लगता है।

ग०—कालोसी बल्द। काली सी बिरालो। सफेद सी घोडो। तेरो सी नौनो।

कु०—कावो जसो बहड़। कालि या काइ जसि बिराई या बिरालि। सफ़ेद जसो घवाड़ो। तेरो जसो च्यालो।

हि०—काला सा बैल। काली सी बिल्ली। सफेद सा घोड़ा। तेरा सा लड़का।

गढ़वाली में लिंग के साथ सि या सी का परिवर्तन नहीं होता जैसा कि हिन्दी या कुमाउँनी में होता है।

३—मध्य-पहाड़ी में विशेषण में गुण की मात्रा की कमी या हल्कापन दिखाने के लिए विशेषण की द्विरुक्ति भी होती है।

ग०—कालो कालो सि बल्द। काली काली सी बिराली। सफ़ेद सफ़ेद सी घोड़ो।

कु०—कावो कावो जसो बहड। काइ काइ या कालि कालि जसि बिराइ या बिरालि। स्येतो स्येतो जसो घ्वाड़ो।

हि०—हल्का काला बैल। हल्के काले रंग की बिल्ली। हल्के सफेद रंग का घोड़ा।

हिन्दी में गुणाधिक्य को प्रगट करने के लिये विशेषण से पूर्व बहुल या बहुत अधिक शब्द जोड़े जाते हैं। किन्तु मध्य-पहाड़ी में विशेषण शब्द के अन्तिम स्वर को प्लुत कर देते हैं। यदि अन्तिम स्वर ह्रस्व हो तो उपान्त्य दीर्घ स्वर को प्लुत कर दिया जाता है। कभी कभी गुणाधिक्य प्रगट करने के लिये अंतिम स्वर पर बलात्मक स्वराघात भी होता है।

ग०—मिठोऽ आम। छोटाऽ नौना। भलीऽनौनी। सफ़ेऽदे घोड़ो।

कु०—मिठोऽ आम । छोटाऽ च्याला । भलोऽ चेलि । सफेद्द घ्वाड़ो ।

हि०—बहुत मीठा आम । अत्यन्त छोटा लड़का । बहुत भली लड़की । अत्यन्त सफ़ेद घोड़ा ।

उपान्त्य स्वर पर बलात्मक स्वराघात :—

खट्टो आम । मिट्टो सेव ।

५—हिन्दी तथा मध्य-पहाड़ी के पूर्ण संख्यावाचक विशेषणों में विशेष अन्तर नहीं है। कहीं कहीं कुछ उच्चारण भेद हो गया है। उदाहरणार्थ हिन्दी में ग्यारह, बारह, तेरह कहा जाता है तो गढ़वाली में ग्यारा, बारा, तेरा और कुमाउँनी में में ग्यार, बार, तेर उच्चारण होता है। विशेष अन्तर केवल तीन संख्याओं में है। हिन्दी में जहां दो तीस, नवासी कहा जाता है वहाँ गढ़वाली और कुमाउँनी में दो, बीस, और उन्नबै कहा जाता है। हिन्दी के प्रभाव में पढ़े-लिखे गढ़वाली तथा कुमाउँनी भाषा-भाषी अब तीस और नवासी कहने लगे हैं।

६—क्रमसंख्या वाचक, आवृत्तिसंख्यावाचक और अपूर्णसंख्यावाचक विशेषणों में भी हिन्दी और मध्य पहाड़ी में अधिक अन्तर नहीं है। हिन्दी के क्रम संख्यावाचक और आवृत्ति संख्यावाचक विशेषण आकारान्त होते हैं और मध्य पहाड़ी के ओकारान्त। अतः लिंग, वचन और कारकों के अनुसार दोनों भाषाओं में वे विकारी रूप धारण करते रहते हैं।

क्रम . हि०—पहिला, दूसरा, तीसरा, चौथा, पाँचवाँ, छठा, सातवाँ ....

ग०—पहिलो, दूसरो, तीसरो, चौथो, पांचो या पाँचूँ, छटो, सातों या सातूँ ....

कु०—पहिलो, दूसरो या दोहरो, तिसरो, चौथो, पँचु, छठ, सतूँ ....

आवृत्ति :—

हि०—एगुना, दुगना, तिगुना, चौगुना, पंचगुना, छगुना, सतगुना ....

ग०—एगुणो, दुगणो, तिगुणो, चौगुणो, पचगुणो, छँगुणो, सतगुणो ....

कु०—एगुणो, दुगणो, तिगुणो, चौगुणो पचगुणो, छगुणो, सतगुणो ....

पहाड़े कहते समय गढ़वाली में क्रमशः एका, दुणा, तियाँ, चौका, पंजा, छक्का, सत्ता, अट्ठा- नमा तथा दहाई और कुमाउँनी में एक, दुण, ति, चौक पंज, छक, सत, अठ, नम तथा दहि का प्रयोग भी होता है।

अपूर्ण :—

हि०—पाव, आधा, पौन, सवा, ड्योढ़ा, ढाई ।

ग०—पौ, अदा, पौणो, सवा, ड्योढ़ो, ढैंट ।

कु०—पौ, आध, पौण, सवा ड्योढ़, ढै ।

पहाड़े कहते समय ढाई को ढाम और सवा को सवयाँ भी कहते हैं।

७-समुच्चय बोधक विशेषणों के लिए हिन्दी में पूर्ण संख्याओं के अन्तिम अ का लोप करके ओ का योग कर देते हैं किन्तु दो के आगे नों और छ के आगे हों जोड़ा जाता है। हिन्दी में इनके विकारी और अविकारी रूप एक ही होते हैं किन्तु मध्य पहाड़ी में अलग अलग रूप होते हैं। मध्य-पहाड़ी में अविकारी पूर्ण संख्या वाचक विशेषणों के उपान्त्य स्वर ह्रस्व कर दिया जाता है और अन्तिम स्वर का लोप होकर गढ़वाली में इ और कुमाउँनी में ऐ का आगम हो जाता है। द्वि, छ, नौ में अन्तिम स्वर का लोप नहीं होता है केवल इ या ऐ का आगम हो जाता है। विकारी रूप में गढवाली में औ और कुमाउँनी में न प्रत्यय जोड़ दिया जाता है।

हि०-दोनों, तीनों, चारों, पाँचो, छहो, सातों, आठों, नवो, दसो।

ग०—अविकारी–द्विइ, तिनि, चरि, पंचि, छइ, सति, अठि, नौइ, दसि।

विकारी द्वियौं, तिन्यौं, चर्‌यौं, पंच्यौं, छयौं. सत्यौं, अठ्यौं, नऊँ, दसौं।

कु०-अविकारी-द्विऐ, तिऐ, चरै, पचै, छयै, सतै, अठै, नवै, दसै।

विकारी—द्विन, तिनन, चरिन, पंचिन, छैन, सतिन, अठिन, नवन, दसन।

कुछ शब्द समुदाय के अर्थ में मध्य-पहाड़ी में अधिक प्रयुक्त: होते हैं जैसे बिसि (बीस), चौका (चार), चौक।

कु०—एक बिसि ढेपुआ। एक चौक आखोड़।

ग०-एक बिसि कलदार। एक चौका खरौंट।

८—सार्वनामिक विशेषण—मध्य-पहाड़ी में हिन्दी के समान ही कई सर्वनाम तथा उनसे बने हुए विशेषण काम में लाए जाते हैं। उत्तम तथा मध्यम पुरुष सर्वनाम तथा निज वाचक 'आप' विशेषणवत् प्रयोग में नहीं आते। शेष सभी सर्वनाम विशेषण का काम भी देते हैं।

मूल सर्वनाम जो विशेषणवत् प्रयोग में आते हैं—

ग०—यो, वो, जो, को, वचा, क्वी, कुछ या किछ्।

कु०—या, उ, जो, को के क्वै।

यौगिक सर्वनाम जो विशेषणवत् काम में आते हैं।

ग०-इनो, उनो, जनो, कनो, इतगो, उतगा, जतगा, कतगा।

कु०-यसो, वसो, जसो, कसो, एतुक उतुक, जतुक, कतुक।

हि०-ऐसा, वैसा, जैसा, कैसा, इतना, उतना, जितना और कितना।

गुणवाचक और परिमाणवाचक विशेषणों की तुलना के लिए हिन्दी के ही समान मध्य पहाड़ी में उपमान को अपादान कारक में रखकर उपमेय के पश्चात् विशेषण रखा जाता है। जैसे:—

ग०-तेरो घोड़ो से मेरो घोड़ो बड़ो छ।

कु०-त्यारा घ्वाड़ है म्यारो घ्वाड ठुलो छ।

गढ़वाली में कभी कभी से के स्थान पर चलैं का प्रयोग भी होता है।

मेरो कुकुर तेरा कुकुर चलैं अच्छो छ।

इसी प्रकार वस्तु की सर्वोत्तमता सूचित करने के लिए भी यही नियम काम में आता है।

गढ़वाली-हम तेरो सृष्टि मा सबौं से छोटा छवां।

कुमाउंनी-हम तेरी सृष्टि में सबन है नाना छूं।

६—सर्वनाम

१—मध्य-पहाड़ी के मूल सर्वनाम नीचे दिये जाते हैं। उनके साथ हिन्दी और राजस्थानी के भी मूल सर्वनाम दिए जाते हैं जिससे ज्ञात हो जाता है कि मध्य-पहाड़ी का हिन्दी से राजस्थानी की अपेक्षा अधिक निकट का सम्बन्ध है।

हि०	राज०	ग०	कु०
मैं	मैं, हूँ	मैं, मि	मैं
तू	तूं, थूं	तू	तु
वह, सो	वो, सो	वो, स्यो	उ, तो
यह	यो	यो	यो
जो	जो, जिको	जो	जो
कौन	कुण	को	को
क्या	काँई	क्या	के
कोई	कोई	क्वी	क्वे
कुछ	काँई, क्या	कुछ, किछ	के, कुछ
आप	आपाँ	अपु, अफि	आपूँ

इन सर्वनामों के लिंग, वचन और कारकों के कारण कई रूप हो जाते हैं। गढ़वाली मे उत्तम और मध्यम पुरुषवाचक सर्वनामों को छोड़कर अन्य सर्वनामों मे लिंग भेद भी होता है। कारको मे परसर्ग लगने पर सर्वनाम ए० व० और ब० व० मे जो रूप धारण करते हैं वे विकारी रूप कहलाते हैं।

२—पुरुषवाचक सर्वनाम

हि० मैं	ग०		कु०	
	ए० व०	ब० व०	ए० व०	ब० व०
अविकारी	मैं	हम	मैं	हम
विकारी	मैं	हम	मैं	हमन

संबंध	मेरो	हमरो	म्यारो	हमरो
हि० तू				
अविकारी	तु	तुम	तु	तुम
विकारी	त्वे	तुम	त्वि	तुमन
संबंध	तेरो	तुम्हारा	त्यारो	तुम्हरो

गढ़वाली में तू का विकारी रूप त्व और कुमाउँनी में त्वि हो जाता है। कुमाउँनी में गढ़वाली के समान ही बहुवचन का रूप तुम होना चाहिए था किन्तु परसर्ग के योग से पूर्व, तुम पर बहुवचन में न प्रत्यय और ऊपर से जोड़ा जाता है। यह कुमाउँनी की विशेषता है।

हि० वह :	ग० (वो)			कु० (उ)	
	ए० व०	ब० व०		ए० व०	ब० व०
	पु०	स्त्री०			
अविकारी	वा	वा	वो	उ	ऊ
विकारी	वे	वी	ऊँ	वि	उनन, उन

गढ़वाली में वो का विकारी रूप वे हो जाता है। और कुमाउँनी में उ का वि हो जाता है कुमाउँनी में यह विशेषता है कि बहुवचन का विकारी रूप उन के बजाय उनन है। और संबंध कारक बहुवचन विकारी वि पर को, के कि लगाने के बजाय उन पर रो लगाकर उनरो हो जाता है स्त्रीलिंग रूप कुमाउँनी में नहीं हैं। वो सर्वनाम के गढ़वाली में एक वचन के स्त्रीलिंग रूप पाए जाते हैं जो राजस्थानी का प्रभाव है। क्योंकि राजस्थानी में भी वह और यह के बहुवचन रूप पाए जाते हैं।

३—निश्चयवाचक सर्वनाम :—

हि०—यह	ग० (यो)			कु० (यो)	
	ए० व०	ब० व०		ए० व०	ब० व०
	पु०	स्त्री०			
अविकारी—	यो	या	यो	यो	यो
विकारी —	ये	यीं	यूँ	ये	इनन इन

सम्बन्ध कारक में उनरो (उनका) के समान ही इनरो (इनका) हो जाता है। यह के रूप पुरुषवाचक सर्वनाम के अन्तर्गत दिए जा चुके हैं।

सो और तो —गढ़वाली में स्यो (सो) और कुमाउँनी में तो के भी निश्चयवाचक रूप चलते हैं। वो या उ अदृष्ट या दृष्टिगत (अत्यन्त दूर) के लिए प्रयुक्त होता है। 'स्यो' और 'तो' दृष्टिगत (थोड़ी दूरी) के लिए प्रयुक्त होते हैं और 'यह' अत्यन्त निकटता को प्रकट करता है।

	ग० ए० व० पु०	ग० ए० व० स्त्री०	ग० ब० व०	कु० ए० व०	कु० ब० व०
अविकारी	स्यो	स्या	स्यो	तो, ते	तो, ते
विकारी	से	सौं	स्यूँ	तै, त्यै	तनन, तन

सम्बन्ध कारक ब० व० मे कुमाउँनी मे अन्य सर्वनामों की भांति तनरो हो जाता है।

४—सम्बन्ध वाचक सर्वनाम—

हि० : जो ग० (जो) कु० (जो)

	ग० ए०व० पु०	ग० ए०व० स्त्री०	ग० ब० व०	कु० ए० व०	कु० ब० व०
अविकारी	जो	जो या ज्वा	जो	जो	जो
विकारी	जैं	जै	जौं	जै जै	जनन जन

कुमाउँनी मे सम्बन्ध कारक ब० व० म जनरो हो जाता है। परसर्ग को, के को नहीं लगाने पड़ते।

गढ़वाली मे जो के साथ मे नित्य सम्बन्धी सर्वनाम, वो के रूप लगाए जाते हैं किन्तु कुमाउँनी मे तो के नित्य सम्बन्धी रूप काम मे आते हैं।

५—प्रश्न वाचक सर्वनाम —

हि० : कौन ग० (को) कु० (को)

	ग० ए० व० पु०	ग० ए० व० स्त्री०	ग० ब० व०	कु० ए० व०	कु० ब० व०
अविकारी	को	क्वा	को	को	को
विकारी	कैं	कै	कौं	कै	कनन

कुमाउँनी मे सम्बन्ध कारक ब० व० मे विकारी कनन के स्थान पर कनरो हो जाता है।

हि० क्या के स्थान पर गढ़वाली मे क्या ही रहता है और कुमाउँनी में के हो जाता है। के तथा क्या के अविकारी रूप ब० व० मे भी 'के' और 'क्या ही रहते हैं। विकारी रूप गढ़वाली में क्या का 'के' हो जाता है। कुमाउँनी मे 'के' ही रहता है।

गढ़वाली में क्या का प्रयोग वस्तु के लिए होता है और को का प्रयोग व्यक्ति के लिए होता है। कुमाउँनी में भी 'के' वस्तु के लिए और 'को' व्यक्ति के लिए काम मे लाया जाता है। किन्तु गढ़वाली और कुमाउँनी दोनों मे जब कभी अनेकों

में से एक को छाँटना हो तो व्यक्ति और वस्तु दोनों के लिए 'को' का प्रयोग होता है।

ग०--द्वीडालो मा को लम्बो छ? (दोनो पेड़ो मे से कौन लम्बा है?)

कु०--द्वि योटन में को लाम्बो छ?

६—अनिश्चयवाचक सर्वनाम—

हिन्दी मे कोई और कुछ अनिश्चयवाचक सर्वनाम हैं। उनके स्थान पर गढ़वाली में 'क्वी' और 'कुछ' या 'किछु' तथा कुमाउँनी मे 'क्वे' और 'के' का प्रयोग होता है। जिस प्रकार हिन्दी मे कोई व्यक्ति के लिए और कुछ वस्तु के लिए प्रयुक्त होता है उसी प्रकार गढ़वाली मे 'क्वी' और कुमाउँनी में 'क्वे' व्यक्ति के लिए तथा गढ़वाली में 'कुछ' और 'किछु' और कुमाउँनी में 'के' वस्तु के लिए काम में आता है।

हि०—कोई कुछ—	ग० (क्वी)		कु० (क्वे)	
	ए० व०	ब० व०	ए० व०	ब० व०
अविकारी—	क्वी	क्वी	क्वे	क्वे
विकारी—	कै	कौं	कै	कननै

कुमाउँनी के सम्बन्ध कारक ब० व० में परसर्ग को, के को न लगकर कनरै या कनर्नै हो जाता है।

अविकारी—	कुछ किछु	कुछ किछु	के	के
विकारी —	कै	कुछौं	कै	कननै

ग०-क्वी नी छ (कोई व्यक्ति नही है), कुछ नी छ (कुछ वस्तु नहीं है)।

कु-क्वै नी छ, के नी छ।

जब क्वी या क्वे तथा कुछ या के विशेषणवत् प्रयोग मे आते हैं तो क्वी या क्वे संख्या का बोध और कुछ या के मात्रा का बोध कराते हैं।

ग०-क्वी डाला नीछन, कुछ दुःख नीछ।

कु०-क्वे ब्वाटा नीछन, के दुख न्हाति।

गढ़वाली मे 'कुछ' सर्वनाम का प्रयोग विशेषणवत् होने पर संख्या का बोध भी होता है जब संख्या मे से कुछ को अलग किया जाए। जैसे, ग० कुछ विद्यार्थी पास ह्वै गैन (कुछ विद्यार्थी पास हो गए)

ऐसे स्थल पर कुमाउँनी मे के का प्रयोग नही होता है बल्कि के स्थान पर कतुकैक का प्रयोग होता है। जैसे:-

कु० कतुकैक विद्यार्थि पास हैंगि।

७—हिन्दी का आदर सूचक सर्वनाम 'आप', मध्य-पहाड़ी बोलियों में नहीं होता है। आदर के लिए तुम का प्रयोग एक वचन की संज्ञा के लिए भी होता है।

ग०-पंजी पंडित जी ! तुम कखते औणा छवा।

कु०—अहो पंडित ज्यू ! तुम कां बटि उण्न लैरो ?

हि०-पंडित जी ! आप कहाँ से आ रहे हैं ?

अन्य पुरुष में आदर के लिये वह या यह के बहुवचन के विकारी या अविकारी रूप काम में लाए जाते हैं।

ग०-हमारा गुरू जी बड़ा पंडित छन। वो आज यख आया छना। ऊंमा मैं यह सवाल पुछलो।

कु०-हमारा गुरू ज्यु बाड़ा पंडित छन। उ आज या ऐ रै। उनन है मैं यो सवाल पुछलो।

हि०—हमारे गुरू जी बड़े पंडित हैं। वे आज यहाँ आए हुए हैं। उनसे मैं यह प्रश्न पूछूंगा।

हिन्दी में कभी कभी आप का प्रयोग अन्य पुरुष में भी होता है जैसे :— 'मैथिली शरण गुप्त झासी के रहने वाले थे। आप का कवि समाज में बड़ा मान था।" मध्य-पहाड़ी में इस प्रकार आप शब्द का अन्यपुरुष में प्रयोग नहीं होता है। आज कल हिन्दी के प्रभाव से मध्यम पुरुष मे आदर के लिए गढ़वाली में आप और कुमाउंनी में आपूं का प्रयोग होने लगा है।

ग०-क्या आप भी नैनीताल चलिला।

कु०-आपु ले नैणिताल चलिला।

हि०-क्या आप भी नैनीताल चलेंगे।

८—निज वाचक सर्वनाम आप का प्रयोग मध्य-पहाड़ी बोलियों में हिन्दी के ही समान होता है। हि० आप, ग० अफु, कु० आपूं। गढ़वाली में अफू के रूप बदलते हैं किन्तु कुमाउनी में केवल संबंध कारक और अधिकरण कारक को छोड़ कर आपूं के रूप नहीं बदलते।

	ग०		कु०	
	ए० व०	ब० व०	ए० व०	ब० व०
अविकारी-	*अफु*	*अफु*	*आपूं*	*आपूं*
विकारी-	अफूं	अफूं	आपूं	आपूं
संबंध कारक-	अपणो	अपणा	आपणो	आपणा
संबंध + अधिकरण-आपस		आपस	आपस	आपस

हिन्दी के आप ही या अपने आप का प्रयोग बल देने के लिए होता है।

मध्य-पहाड़ी में हि के स्थान पर इ हो जाता है। अतएव गढ़वाली में आप ही के स्थान पर अफी और कुमाउंनी में आफि का प्रयोग होता है।

ग०-वेन अफु खाए। अफुं सणि बड़ो नी समझणो चैंद।

अपणो नौनो। हम आपस में लड़ुंला। आपस को झगड़ा।

कु०-विले आपूं खायो। आपूं कणि ठुलो नि समझणो चैन।

आपणो च्यालो। हम आपस में लड़ुंला। आपस को झगड़ा।

हि०-उसने आप भोजन किया। अपने को बड़ा नहीं समझना चाहिए।

अपना लड़का। हम आपस में लड़ेंगे। आपस का झगड़ा।

९—सर्वनामिक विशेषण—सभी निश्चयवाचक अनिश्चयवाचक, प्रश्नवाचक तथा संबंधवाचक सर्वनामों के मूल रूपों पर या विकारी रूपों पर प्रत्यय लगा कर मध्य-पहाड़ी में हिन्दी के समान ही नए सर्वनाम बनाए जाते हैं जो विशेषण का भी काम देते हैं।

ग०—इनो उनो जनो कनो इतगा उतगा जतगा कतगा।

कु०—एसो वसो जसो कसो एतुक उतुक जतुक कतुक।

इनमें से इनो उनो जनो कनो या एसो वसो जसो कसो गुणवाचक विशेषण का काम भी देते हैं। इनके लिंग तथा वचन के अनुसार रूप बदलते रहते हैं।

ग०—इनो नौनो, इना नौना, इनी नौनी।

कु०—एसो च्यालो - एसा च्याला - एसी चेलि।

म० प० में हिन्दी के समान ही आपस से आपसो सार्वनामिक विशेषण बनता है।

व्युत्पत्ति

पुरुष वाचक—

मैं :—यह सर्वनाम अधिकांश वर्तमान आर्य-भाषाओं में पाया जाता है। डाक्टर चटर्जी ने मैं की व्युत्पत्ति अस्मत्[१] के तृतीया एक वचन के रूप मया से बताई है। मैं पर अनुनासिकता का आगम अकारान्त संज्ञा शब्दों के तृतीया एकवचन के एन से बताई है। सभी हिन्दी भाषा विज्ञानियों[२-३] ने उन्हीं के मत को स्वीकार किया है। मध्य पहाड़ी और हिन्दी के 'मैं' में कोई अन्तर नहीं है। मध्य पहाड़ी में 'मैं' सभी कारकों के एक वचन में काम में लाया जाता है। हिन्दी में उसके स्थान पर विकारी मुझे या मुझ हो जाता है।

१—च० व० ल० पृष्ठ ८०८।

२—बां० अ० भा० पृष्ठ १६३।

३—हि० भा० इ० पृष्ठ २८०।

हम :—इस सर्वनाम की व्युत्पत्ति चटर्जी[1] महोदय ने वैदिक अस्मे से की है। जो वय के स्थान पर काम मे लाया जाता था। मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं मे विशेषकर मागधी[2] में प्रथमा बहु वचन के रूप अम्हे-अम्हे-अम्मी पाए जाते हैं। अस्मे ध्वनि विपर्यय से अम्हे हो गया है। यही अम्हे वर्तमान कालीन आर्य भाषाओं में हम हो गया है। हिन्दी के सभी भाषा विज्ञानियों[3] ने इसी व्युत्पत्ति को स्वीकार किया है। हिन्दी के हम और मध्य पहाड़ी के हम में कोई अन्तर नही है।

तू :—तू की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में डाक्टर चटर्जी[4] तथा डाक्टर सक्सेना[5] के विचारों में कुछ अन्तर है। चटर्जी महोदय तू की व्युत्पत्ति त्वम्—से करते हैं। त्वम तुम-तु(प्राचीन बंगाली, तथा तू(पूर्वी और पश्चिमी हिन्दी)। वे साथ ही यह अनुमान भी लगाते हैं कि कदाचित् प्राचीन आर्य भाषाओं ही में त्वम् का एक रूप तू भी रहा होगा। क्योंकि वर्तमान पश्चिमी भारतीय आर्य-भाषाओं—सिन्धी, गुजराती, मराठी, राजस्थानी और पंजाबी में तू के स्थान पर तूं है। जिसमें त्वम् की अनुनासिकता है। किन्तु हिन्दी, बंगला आदि के तू या तु में अनुनासिकता नहीं है। डाक्टर सक्सेना तू तथा तूं दोनों की व्युत्पत्ति त्वम् से करते है जिसका प्राकृत रूप वे तुम बताते हैं। उन्होंने तुम या तुम्ह की व्युत्पत्ति प्राकृत तुम्ह से की है। कुछ भी हो तुम तथा तू दोनों का मूल त्वम् ही है, जब तक कि चटर्जी महोदय का अनुमान स्वीकार नहीं कर लिया जाता। क्योंकि प्राकृत के तुम्हें की व्युत्पत्ति भी त्वम् से ही की जा सकती है। मध्य-पहाड़ी में मागधी और शौ से उत्पन्न वर्तमान भारतीय आर्य भाषाओं के समान ही तू या तु अननुनासिक हैं।

मेरो तेरो हमरो हमारो—की व्युत्पत्ति मे तू तथा हम के रूपों पर प्राकृत की केर और अपभ्रंश की केरक प्रत्ययों के योग से बनाई जाती है। हिन्दी के सभी भाषा विज्ञानी[6] इस मत को स्वीकार करते है। कुमाउँनी के अन्य पुरुष बहुवचन के रूप उनरो या उनर अवधी के ओकर के ही समान है। जिसमें कालान्तर में क का अ बनकर ओंअर या उनर या उनरो बन गया है।

त्वे या तिव —गढ़वाली के मध्यम पुरुष—एक वचन का विकारी रूप त्वे

१—च० व० ल० पृष्ठ ८०९।

२—पा० स० म० पृष्ठ ४३।

३—वा० अ० भा० पृष्ठ १६३। हि. भा. इ. पृष्ठ २८१।

४—च० व० ल० पृ० ८१६।

५—वा० अ० भा० पृ० १७०।

६—वा आ० भा० पृष्ठ १६३ और १७० तथा स्या०हि० भा० सु० पृष्ठ १४७।

और कुमाउँनी का त्वि है जो हिन्दी से नहीं मिलते। हिन्दी में इनके स्थान पर तुझ या तुझे है। जिनकी व्युत्पत्ति प्राकृत और अपभ्रंश के तुज्झ से की जाती है। सम्भव है कि तुज्झ—तुह-तुहे-त्वे या त्वि रूप बन गए हों। यह भी सम्भव है कि जिस प्रकार अवधी[१] तथा बंगला[२] की तुह की व्युत्पत्ति त्वया से की जाती है उसी प्रकार मध्य पहाड़ी में भी त्वे या त्वि की व्युत्पत्ति त्वया से हो। त्वया—तए (प्रकृति)—तुइ इसी प्रकार त्वि या त्वे।

निश्चयवाचक सर्वनाम :—ओ (वह)

हिन्दी के कुछ भाषा विज्ञानी[३] वह दूरदर्शी सर्वनाम की व्युत्पत्ति अदस् के अम् रूप से करते हैं। किन्तु डाक्टर चटर्जी[४] के अनुसार संस्कृत और पाली के अम् का विकसित अवँ या ओ होना चाहिए था। न कि वो या वह। अतएव रूप उनका विचार है कि प्राचीन आर्य-भाषाओं में दूरवर्ती निश्चयवाचक सर्वनाम के लिए अव शब्द था। जिसका रूप प्राचीन और आर्वाचीन इरानी तथा दरद भाषाओं में पाए जाते हैं। प्राचीन फारसी—अव, अवेस्ता—अव पहलवी—वो, फारसी—ऊ, शिणा—ओ। रम्वानो—ओ। जिप्सी (योरोपियन)— ओव, इसी अव[५] के रूप है। भारतीय आर्य भाषाओं—वैदिक-संस्कृत पाली-प्राकृत के साहित्य में यद्यपि अव के रूप नहीं मिलते किन्तु बोलचाल में इसके रूपों का प्रयोग रहा होगा। जो अपभ्रंश तथा वर्तमान भारतीय आर्य-भाषाओं के साहित्य में प्रवेश कर गया। डा० सक्सेना का यह विचार कि इ या ए जब समीपवर्ती निश्चयवाचक सर्वनाम की आरम्भिक ध्वनियाँ हो गई तो दूर के लिए उ या ओ ध्वनियाँ स्वीकृत कर ली गई किन्तु इ का समीप से और उ का दूर से कोई स्वाभाविक संबंध नहीं है। वर्तमान भारतीय आर्य-भाषाओं में समीपवर्ती निश्चयवाचक सर्वनाम की आरम्भिक ध्वनि इ या ए इसलिए हुई कि प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं में समीपवर्ती निश्चयवाचक सर्वनाम के लिए एतद् या इद के रूप काम में लाए जाते थे। दूरवर्ती निश्चयवाचक सर्वनाम के लिए तद् और अदस् के रूप काम में आते थे अतः इन्हीं के विकसित रूप हिन्दी आदि वर्तमान भारतीय आर्य-भाषाओं में होने चाहिए। तद् से विकसित रूप तो, ते और सो वर्तमान भारतीय आर्य-भाषाओं में है किन्तु

१—इ० अ० म० पृष्ठ १७०।

२—च० व० ल० पृष्ठ ८१७।

३—हि० भ० सा० पृष्ठ १५५।

४—च० व० ल० पृष्ठ ८३७।

५—लि० स० इ० वौ० १ भाग २ पृष्ठ ४५।

अदस् से नहीं। ऐसा प्रतीत होता है कि अव का प्रयोग प्राचीन और मध्यकालीन बोलचाल की भाषा में रहा होगा जैसा कि डाक्टर चटर्जी का विचार है जब कि साहित्य में अदस् के रूप प्रयोग में आते रहे। जब अपभ्रंश ने साहित्यिक रूप धारण किया तब उसके साथ बोलचाल की भाषा के अव के विकसित रूपों ने धीरे-धीरे अदस् के रूपों का स्थान ग्रहण कर लिया और जैसे जैसे भारतीय आर्य-भाषाओं पर ईरानी प्रभाव बढ़ता गया 'अव' के विकसित रूप उ या ओ ने अदस् के रूपों को साहित्य से भी दूर कर दिया। एक बार जब अव के विकसित रूपों को बोलचाल के साथ साथ साहित्य में भी स्थान मिल गया तब सादृश्य के कारण समीपवर्ती सर्वनाम यह के रूपों के समान ही उ या ओ के रूप भी प्रचलित होने लगे। इसीलिये मध्य-पहाड़ी के सभी सर्वनामों के विकारी रूप अनुकरण पर बने हैं। जैसे—मैं; त्वे या तिन, ये, वे या वि, यें या कें, जैं या जे आदि।

स्यो (सो), —गढ़वाली का स्यो तथा कुमाउँनी का सो और उनके विकसित रूपों और ते सर्वनाम तथा उनके रूपों के विकास भी स्पष्ट ही प्राचीन भारतीय आर्य-भाषा के तद् शब्द के अनेक रूपों से हुआ है। गढ़वाली में स्यो के एक वचन स्त्रीलिंग रूप संस्कृत के समान ही चलते हैं संस्कृत सा, गढ़वाली—स्या। गढ़वाली के सभी सर्वनामों के एक वचन स्त्रीलिंग रूप भी हैं। गढ़वाली में 'स्या' निश्चयवाचक सर्वनाम है और कुमाउँनी में सो नित्यसम्बन्धी सर्वनाम है।

यो (यह) —इस सर्वनाम की व्युत्पत्ति संस्कृत के एष[1] से की जाती है। डाक्टर चटर्जी इसकी व्युत्पत्ति प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के एतत्[2] से करते हैं।

प्रश्नवाचक सर्वनाम को और सम्बन्धवाचक सर्वनाम जो की व्युत्पत्ति स्पष्ट ही प्राचीन भारतीय आर्य-भाषा के कः और यः से की जा सकती है। इनके विकारी रूप 'कै' या 'जैं' अन्य सर्वनामों के अनुकरण पर बन गए हैं।

वस्तु के लिए प्रयुक्त होने वाला कुमाउँनी का 'के' किम् का ही विकसित रूप है। संस्कृत—किम्, प्राकृत[3]—कि या किं। कुमाउँनी—के। गढ़वाली—के 'क्या' प्रश्नवाचक सर्वनाम की व्युत्पत्ति हिन्दी के ही समान की जा सकती है। डाक्टर श्याम सुन्दर दास[4] ने क्या की व्युत्पत्ति संस्कृत के किम् से की है। संस्कृत—किम्, प्राकृत-अपादान कारक का रूप कीह, अपभ्रंश—कीइ, हि॰—क्या। डाक्टर वर्मा इसकी व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में किसी निर्णय पर नहीं पहुँचे हैं। किम् से क्या की

१-हि॰ भा॰ इ॰ पृष्ठ २८१।
२-ध॰ व॰ ल॰ पृष्ठ ८३०।
३-प॰ स॰ म॰ पृष्ठ ३०४।
४-श्या॰ हि॰ भा॰ सा॰ पृष्ठ १६६।

व्युत्पत्ति दूसरे रूप से भी हो सकती है। क्योंकि कुमाउँनी की ग्रामीण बोलियों तथा गढ़वाली की राठी आदि बोलियों में ए का उच्चारण य के समान करने की प्रवृत्ति है। अतः संस्कृत किम्, प्राकृत—कि या किं। कुमाउँनी—के या क्ये, गढ़वाली—क्ये या क्या।

अनिश्चयवाचक सर्वनाम क्वे या क्वी हिन्दी के कोई का ही विकसित रूप है। जिसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार की जाती है। को+अपि—कोवि—कोई क्वे या क्वी।

कुछ या किछु जो गढ़वाली मे है कुमाउँनी में नहीं संस्कृत के किंचिद् से निकला हुआ है।

निजवाचक सर्वनाम आपूँ या अफु हिन्दी के आप के समान ही आत्मन् से निकले हैं। आत्मन्—अत्ता—अप्पा—आपूँ या अफु। इसी प्रकार आप ही के स्थान पर मध्य पहाड़ी मे अफी या अफि है।

७-क्रिया

जिन मूल शब्द मे विकार होने से क्रिया बनती है और वह वाच्य, काल, अर्थ, पुरुष, लिंग और वचन को प्रगट करने में समर्थ होती है उसे धातु कहते हैं। मध्य-पहाड़ी मे हिन्दी की सभी धातुएं प्रायः ज्यों की त्यों पाई जाती हैं। कहीं कहीं थोड़ा सा उच्चारण भेद हो जाता है। मध्य-पहाड़ी मे धातुओं पर णो जोड़ने से *क्रिया का सामान्य रूप बनता है। जैसे — जा धातु पर णो जोड़ने से जाणो* क्रिया का सामान्य रूप बना। रड और ढ से अन्त होने वाली धातुओं पर क्रिया के सामान्य रूप बनाने मे णो के बदले नो जोड़ा जाता है।

क्रिया के वाच्य, काल, अर्थ, पुरुष लिंग आदि प्रगट करने के लिये कभी धातु से ही काम चल जाता है और कभी धातु पर विशेष प्रत्यय जोड़ कर कृदन्त *बनाये जाते हैं जो वाक्य मे क्रिया का काम देते हैं। धातु या कृदन्तों के* रूपों के साथ सहायक क्रियाओं के योग से भी क्रिया के वाच्य, अर्थ, काल आदि प्रगट किए जाते हैं। कभी किसी धातु से बने हुए कृदंत रूपों पर अन्य धातुओं के कृन्दत रूप जोड़ने पर सयुक्त क्रिया वाक्य मे वांछित अर्थ प्रगट करने मे समर्थ होती है। अतः मध्य पहाड़ी की धातुओं, कृदन्तों, सहायक क्रियाओं और उन प्रमुख क्रियाओं पर जो संयुक्त-क्रिया के लिए काम म लाई जाती है विचार करना आवश्यक है।

धातु:—मध्य पहाड़ी और हिन्दी की धातुओं मे जैसा कि पहले कहा गया है विशेष अन्तर नहीं हैं।

मूल धातु :—बैठ, उठ, चल, जा, खा, रो, हंस आदि। कुछ धातुओं में

उच्चारण भेद भी हो जाता है जैसे—मध्य-पहाड़ी में (हि॰ में) ग॰ (ओ), कु॰ (ऊँ), हि॰ (आ)

यौगिक धातु—

१—कुछ मूल धातुओं में प्रत्यय जोड़ कर प्रेरणार्थक क्रियाएँ बनाई जाती हैं। धातु के अंतिम अ का लोप करके गढ़वाली में ओ और अवा जोड़ा जाता है और कुमाउँनी में ऊ और अऊँ जोड़ा जाता है।

मूल धातु	ग॰		कु॰	
	प्र॰ प्रे॰	द्वि॰ प्रे॰	प्र॰ प्रे॰	द्वि॰ प्रे॰
चल हिट	चलो	चलवा	हिटूँ	हिटऊ
देख	देखो	देखवा	दिखू	दिखऊ
गिर	गिरो	गिरवा	गिरूँ	गिरऊँ

मूल धातु	ग॰		कु॰	
	प्र॰ प्रे॰	द्वि॰ प्रे॰	प्र॰ प्रे॰	द्वि॰ प्रे॰
पढ़	पढ़ो	पढ़वा	पढ़ूँ	पढ़ऊँ
गा	गवो	—	गऊँ	—
लो	—	लिवा	—	लिऊँ
दौड़	दौड़ो	दौड़वा	दौड़ूँ	दौड़ऊँ

ग॰—मैं चलणो छऊँ। मैं हळ चलौणो छऊँ। मैं नौकर से हळ चलवाणों छऊँ।

कु॰—मैं हिटणो छूँ। मैं हल चलूणो छूँ। मैं हल नौकर से चलऊँणों छूँ।

हि॰—मैं चलता हूँ। मैं हल चलाता हूँ। मैं नौकर से हल चलवाता हूँ।

कृदंत — मध्य पहाड़ी की क्रिया बनाने में निम्नांकित कृदंत काम में लाए जाते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य कृदंत भी यहाँ दिए जाते हैं जिनका काल से सम्बन्ध है।

१—क्रियार्थ संज्ञा—धातु पर णो या नो जोड़ने से बनती है ओकारान्त होने से इसका विकारी रूप, नियमानुसार आकारान्त होना चाहिए। किन्तु बोलने में अकारान्त भी हो जाता है। अतः दोनों विकारी रूप प्रयोग में आते रहते हैं। गढ़वाली में प्रायः आकारान्त और कुमाउँनी में अकारान्त रूप काम में लाया जाता है। अविकारी और विकारी रूपों को क्रमशः स्थाई रूप कहना उचित होगा। जैसे—

जा + णो — जाणो — जाण।

लड़ + नो — लड़नो — लड़न।

कुमाउँनी मे कुछ धातुएँ के सामान्य रूप या विकारी रूप बनाने मे इस नियम का पालन नही होता। बल्कि उन पर उणों जोड़ना पड़ता है। जैसे, आ (ऊँणो या ऊँण); कहना (कुणो या कूण); रहना (रुणो या रूण), लाना (ल्यूणो या ल्यूण)। सभी प्रेरणार्थक धातुएँ भी इसी नियम का पालन करती हैं।

२-वर्तमान कालक कृदत—धातु पर गढ़वाली मे दो और कुमाउँनी में नो लगाकर बनता है। कुमाउँनी मे बोलचाल मे कभी न और कभी केवल मां मात्र रह जाता है।

हि०	ग०	कु०
चलता	चलदो	हिटन हिटां
खाता	खांदो	खान, खां
मरता	मरदा	मरन, मरां

कुमाउँनी मे क्रियार्थक सज्ञा के अन्त मे णो होता है और वर्तमान कालिक कृदंत के अन्त मे नो, न, या आं हो जाता है। कुमाउँनी मे इस कृदत का प्रयोग कम होता है। इसके विपरीत गढ़वाली में वर्तमानकालिक कृदत का क्रिया के रूप बनाने में तथा विशेषणवत प्रयोग अधिक होता है। इस कृदंत का प्रयोग विशेषणवत् होने पर ओकारान्त विशेषणों के समान ही विकारी रूप भी बनते हैं।

हि०	ग०	कु०
चलता, चलता हुआ,	चलदो	चलनो, चलन (प्रयोग में नहीं आता)

इस कृदंत का विकारी रूप कभी अव्यय के समान भी प्रयोग में आता है। तब यह प्राय. पुनरुक्त भी होता है।

हि०	ग०	कु०
चलते देर हो गई	चलदा देर ह्वे गए	—
चलते चलते देर हो गई	चलदा चलदा देर ह्वे गए	हिटन हिटन देर ह्वे गे

३—भूतकालिक कृदंत—इस कृदंत को बनाने मे गढवाली में धातु के अन्तिम अ के स्थान पर ए कर देते हैं। यदि धातु आ, ए अथवा ओकारान्त हो तो धातु के अन्तिम स्वर का लोप नही होता केवल ए जोड़ दिया जाता है। कभी कभी गढ़वाली में यो जोड़ कर भी भूतकालिक कृदंत बनाया जाता है। कुमाउँनी मे भूतकालिक कृदत सदैव यो जोड़ कर ही बनता है।

हि०	ग०	कु०
हुआ	होये, होयो	भयो
गया	गये, गयो	गयो

चला चले, चल्यों या चलो हिटो, हिट्यो

इस कृदंत का विशेषणवत् प्रयोग होने पर कार्य की पूर्णता प्रगट होती है। और गढ़वाली में अन्त में यो या यूं और कुमाउँनी में यो जोड़ा जाता है। इसके रूप तब ओकारान्त विशेषणों के समान बदलते रहते हैं। जैसे—

हि०	ग०	कु०
चला या चला हुआ	चल्यों, चल्यूं	चल्यों

इस कृदंत का क्रिया विशेषणवत् भी प्रयोग होता है। जैसे, हि० चले हुए देर हो गई, ग० चल्दी देर ह्वै गए, कु० चल्दा देर हुँ गई।

अविकारी कृदंत.—इनका गठन भी क्रिया के कालों से है अतएव ये भी यहीं दिए जाते हैं।

४—पूर्वकालिक कृदंत—गढ़वाली और कुमाउँनी दोनों में धातु पर इ जोड़ कर पूर्वकालिक कृदंत बनाया जाता है। जिन धातुओं के अन्त में आ, ओ या औ हो उन पर ओ और औ का लोप करके ए जोड़ा जाता है। इसके पश्चात् गढ़वाली में इस विकारी रूप पर क और कुमाउँनी में बेर लगाया जाता है। गढ़वाली में भाषण के समय कभी कभी क का लोप होकर अन्तिम इ दीर्घ हो जाती है। कुमाउँनी में कभी कभी बिना बेर लगाए भी पूर्वकालिक कृदंत का काम चल जाता है। यह प्रवृत्ति उस स्थान पर अधिक दिखाई देती है जहाँ दो या दो से अधिक पूर्वकालिक क्रियाएं आती हैं।

हि०	ग०	कु०
चलकर	चलिक या चली	चलिबेर या चलि
जोड़कर	जोड़िक या जोड़ी	जोड़िबेर या जोड़ि
देखकर	देखिक या देखी	देखिबेर या देखि
पहनाकर	पहनैकि या पहनै	पहनै बेर या पहनै
जाकर	जैक, जैकि	जैबेर या जै

ग०—मैं पांच मील चलिक आयों या मैं पांच मील चली आयों।

कु०—मैं पांच मील चलिबेर आयों या मैं पांच मील चलि आयों।

५—तात्कालिक कृदंत—वर्तमानकालिक कृदंत के विकारी रूप पर ही लगाकर बनता है।

ग०—जांदा+ही→जांद या जैंदि या जदै।

कु०—जाना+ही→जानै जो।

हि०—जाते ही।

६—कर्मवाच्य कृदंत—धातु का अंतिम स्वर लुप्त करके कुमाउँनी में इ और

गढ़वाली में यां जोड़कर बनाया जाता है। जैसे, कु०—खाइ, बोलि, मारि, पकड़ि, ग०—खायां, बोल्यां, मार्‌यां, पकड्‌यां। इन रूपों पर धातु के रूप जोड़कर कर्मवाच्य बनाया जाता है।

सहायक क्रिया

१—सहायक क्रियाओ मे मुख्य 'छ' है। इसके रूप गढ़वाली और कुमाउँनी मे इस प्रकार है।

वर्तमान:—

ग०		कु०		
ए० व०	ब० व०	ए० व०		ब० व०
		पु०	स्त्री०	
१—छऊँ	छवां	छुँ	छुँ	छुँ
२—छई	छयां	छै	छै	छौ
३—छ	छम	छ	छया	छन

भूत—

पु०	स्त्री०				
१— छयो,	छई	छया	छियुँ या छ्यू		छियां छ्यां
२— छयां,	छई	छया	छिये	छि	छिया
३— छयां,	छई	छया	छियो	छि	छिया छिन् (स्त्री)

२—जिस प्रकार अवधी में अस् धातु के अन्य पुरुष एक वचन के रूप अस्ति से आथि बनता है उसी प्रकार कुमाउँनी में हाति रूप बनता है। अस्ति→अत्थि—आथि→हाति किन्तु यह रूप न के साथ सदैव निषेधार्थ मे प्रयुक्त होता है। न्हाति। नहीं है।

कु०

ए० व०		ब० व०	
पु०	स्त्री०	पु०	स्त्री०
१—न्हातुँ	न्हात्युँ	न्हातुँ	न्हातियुँ
२—न्हातै	न्हात्ये	न्हातो न्हाता	न्हातियाँ या न्हातिया
३—न्हाति	न्हाते	न्हातन	न्हातन या नै

यह केवल स्थिति दर्शक क्रिया है। यह कभी र (रह्) धातु के साथ सहायक क्रिया के रूप में भी आती है। जैसे .—र—न्हाति। वह नहीं है। र—न्हातन। वे नहीं हैं।

३—कुमाउँनी मे र धातु के साथ छ के रूप जोड़ करके रछ सहायक

क्रिया भी बनाई जाती है। इसके रूप बनाने में र अविकारी रहता है। केवल स्त्री लिंग में र के स्थान पर रै हो जाता है। और छ के रूप पूर्ववत् चलते हैं। अन्य पुरुष बहुवचन में बिना छ के केवल र से भी काम चल जाता है। ऐसे अवस्था में र के रि या रै रूप हो जाते हैं और दोनों लिंगों में प्रयुक्त होते हैं। किन्तु भूतकाल में यह अपवाद नहीं होता है। कु०—व मैंरा या रछ। दो मैंनि या रैट्या।

४-उपर्युक्त मुख्य सहायक क्रियाओं के अतिरिक्त भिन्न भिन्न अर्थों को प्रकट करने के लिए मध्य-पहाड़ी में हिन्दी के ही समान संयुक्त क्रियाओं को बनाने के लिए मुख्य क्रिया के साथ कुछ सहायक क्रियायें जोड़ी जाती हैं। वे इस प्रकार हैं। जोणो, देणो, लेणो, रमणो हलणो (कुमाउनी), अलणों (गढ़वाली) उंटणो (कुमाउनी) बैठणो, (गढ़वाली) वाणो, पड़नो, होणो, सकणो, लगणो, रणो, पाणो इत्यादि।

ब—काल

मध्य-पहाड़ी में निम्नांकित काल होते हैं। ये तीन अर्थ अर्थात निश्चय, आज्ञा और सम्भावना तथा कार्य की तीन अवस्थायें पूर्ण, अपूर्ण तथा सामान्य पर निर्भर रहते हैं।

भूतकाल:—

१—सामान्य भूत—यह काल वर्तमान कालिक कृदंत के साथ हिन्दी के ही समान लिंग, वचन और पुरुष के अनुसार छ सहायक क्रिया के भूतकाल के रूपों को लगाने से बनता है। गढ़वाली में वर्तमानकालिक कृदन्त के रूप भी ओकारान्त शब्द के अनुसार विकारी रूप धारण करते हैं। कुमाउनी में बोलचाल में ओकारान्त के स्थान पर आकारान्त हो जाता है। और न का लोप होकर पूर्व का स्वर अनुनासिक हो जाती है।

हि०—चलता था।

ए० व०

	गढ़०		कु०	
	पु०	स्त्री०	पु०	स्त्री०
१—	चलदो छयो	चलदी छई	हिटों छियुं या छ्यूं	हिटों छिउं या छ्यूं
२—	चलदो छयो	चलदी छई	हिटों छिये	छलनठि
३—	चलदो छयो	चलदी छई	हिटों छियो	हिटोंछि

ब० व०

१—	चलदा छया	चलद छया	हिटों छिया	हिटों छिया

२—चलदा छयाँ	चलदा छया	हिटौ छिया	हिटौ छिया
३—चलदा छया	चलदा छया	हिटौ छया	हिटौछिन

२—निश्चयार्थ भूत—यह काल भूतकालिक कृदंत से बनता है। किन्तु छ सहकारी क्रिया के समान ही लिंग वचन और पुरुष में रूप बदलते रहते हैं।

हिन्दी—चला

ए० व०

ग०		कु०	
पु०	स्त्री०	पु०	स्त्री०
१—चल्यूं	चल्यूं	हिट्यूं	हिट्यूं
२—चली	चली	हिटै	हिटि
३—चले चल्यो	चले	हिटो	हिटि

ब० व०

१—चल्यो	चल्यो	हिटा	हिटी
२—चल्या	चल्या	हिटा	हिटा
३—चलिन, चल्या चली, चलिन		हिटा	हिटिन

इस काल में सकर्मक क्रिया के रूप भी इसी प्रकार चलते हैं। किन्तु लिंग, वचन और पुरुष हिन्दी के समान ही कर्म के अनुसार होते हैं और कर्ता पर गढ़वाली में न और कुमाउंनी में ले परसर्ग जोड़ा जाता है। जैसे ग०—वैन मैं मार्यूं, मैंन वो मारे, मैंन रोटी खाये। कु० उले मैं मार्यूं, मैंले उ मारो, मैंले मैं रुवाटो खायो।

३—अपूर्णभूत—गढ़वाली में इस काल की रचना सरल है किन्तु कुमाउंनी में कई सहायक क्रियाओं के द्वारा इस काल की रचना पूरी होती है। गढ़वाली में क्रियार्थ संज्ञा के स्थाई रूप के साथ छ सहायक क्रिया के भूतकाल के रूप जोड़ दिए जाते हैं। किन्तु कुमाउंनी में क्रियार्थ संज्ञा के अस्थाई रूप के आगे लागि तथा रछ सहायक क्रियाओं के रूप जोड़कर यह काल पूरा किया जाता है। कुमाउंनी में इसीलिए प्रायः सामान्य भूत से ही इसका भी काम लिया जाता है।

हि०—चल रहा था

ए० व०

ग०		कु०	
पु०	स्त्री०	पु०	स्त्री०
१—चलणों छयो	चलणो छई	चलण लागि र छियूं	चलण लागि रै छियूं
२—चलणों छयो	चलणो छई	चलण लागि र छिये	चलण लागि रैछि
३—चलणों छयो	चलणो छई	चलण लागि र छियो	चलण लागि रैछि।

ब० व०

पु०	स्त्री०	पु०	स्त्री०
१—चलणा छया	चलणा छया	चलण लागि रछियाँ	चलण लागि रै छियाँ
२—चलणा छया	चलणा छया	चलण लागि रछिया	चलण लागि रैछिया
३—चलणा छया	चलणा छया	चलण लागि रछिया	चलण लागि रैछिन

४. पूर्ण भूत—यह काल हिन्दी के ही समान गढ़वाली में तो भूतकालिक कृदंत के रूपों के साथ जो लिंग और वचन के अनुसार बदलते हैं, छ सहकारी क्रिया के भूतकाल के रूपों को जोड़ने से बनता है। कुमाउंनी में कृदत पुलिंग एक वचन में ओकारान्त के अपेक्षा आकारान्त हो जाता है। जैसा कि बहुवचन में होना चाहिए।

हि०—चला था

ए० व०

ग०		कु०	
पु०	स्त्री०	पु०	स्त्री०
१—चल्यो छयो	चलि छई	हिटा छियूं	हिटि छियूं
२—चल्यो छयो	चलि छई	हिटा छै	हिटि छि
३—चल्यो छया	चलि छई	हिटा छिया	हिटि छि

ब० व०

१—चल्या छया	चलि छई	हिटा छियाँ	हिटि छियाँ
२—चल्या छया	चलि छई	हिटा छिया	हिटि छिया
३—चल्या छया	चलि छई	हिटा छिया	हिटि छिनि

सकर्मक क्रिया के रूप इसी प्रकार चलते है केवल कर्ता पर न या ले परसर्ग लगा देते हैं और क्रिया के लिंग, वचन और पुरुष कर्म के अनुसार होते हैं।

ग०—मैंन रोटी खाई छई, मैंन आम खाया छयो।

कु०—मैंले मिठै खाइ छि, मैंले आम खायो छियो।

५. पूर्णभूत पूर्वकालिक—किसी कार्य के किसी दूसरे कार्य से पूर्व होने की अवस्था का यह काल प्रकट करता है। इसमें सकर्मक और अकर्मक पूर्वकालिक कृदंत के साथ ज धातु का गै पूर्वकालिक कृदंत सहकारी के रूप में जोड़कर पुनः छ सहकारी क्रिया के रूप जोड़ दिए जाते हैं।

हि०—चला गया था

ए० व०

ग०		कु०	
पु०	स्त्री०	पु०	स्त्री०

१—चलि गै छयो	चलि गै छई	न्है गै छियूं	न्है गै छियूं
२—चलि गै छयो	चलि गै छई	न्है गै छै	न्है गै छि
३—चलि गै छयो	चलि गै छई	न्है गै छियो	न्है गै छि

ब० व०

ग०		कु०	
पु०	स्त्री०	पु०	स्त्री०
१—चलि गै छया	चलि गै छई	न्है गै छियाँ	न्है गै छियाँ
२—चलि गै छया	चलि गै छई	न्है गै छिया	न्है गै छिया
३—चलि गै छया	चलि गै छई	न्है गै छिया	न्है गै छिनि

सकर्मक क्रिया को कर्मप्रधान बनाने में उपर्युक्त रूपों से भिन्न, गये के स्थान पर हालणों आलणों सहकारी क्रिया के भूत कृदंत के रूप लगते हैं। कर्ता के साथ न या ले परसर्ग लग जाता है और क्रिया के लिंग, वचन और पुरुष कर्म के अनुसार होते हैं। जैसे—

ग०—वैंन रोटी खाई आलि छई। मैंन लाखड़ा काटि आल्या छया।

कु०—विले रवाटा खै हाले छियो। विले लाकडा काटि हाला छिया।

६—आसन्न भूत—इस काल को हिन्दी व्याकरणों मे अंग्रेजी के आधार पर पूर्ण वर्तमान भी कहा गया है। किन्तु इसके लिए आसन्न भूत नाम ही अधिक समीचीन प्रतीत होता है क्योकि कार्य की तो समाप्ति हो ही चुकती है। इस काल का मध्य-पहाडो मे कोई निश्चित स्वरूप नही है अतः इस काल को प्रकट करने के लिए गढवाली मे कभी पूर्वकालिक कृदंत के साथ जा धातु के भूत कालिक कृदंत के रूपों को जोडते हैं। कभी भूतकालि. कृदंत के रूपो के साथ छ सहकारी क्रिया के वर्तमान काल के रूपों को जोड़ते हैं। यदि क्रिया सकर्मक हुई तो पूर्वकालिक कृदंत के साथ आलणों सहकारी क्रिया के भूतकालिक कृदत के रूप जोड़े जाते है। कुमाउंनी मे पूर्वकालिक कृदंत के साथ रछ सहकारी क्रिया के वर्तमान कालिक रूप जोड़े जाते है। कभी भूतकालिक कृदंत के रूपों के साथ जा धातु के कृदत रूप गै को जोड़ कर और उस पर छ सहायक क्रिया के रूप लगाए जाते हैं। सकर्मक क्रियाओं के पूर्वकालिक कृदंत के साथ हालणो के भूत कृदत रूपो को जोडकर छ के वर्तमान कालिक रूपों को भी जोड़ा जाता है। जैसे—

हि०	ग०	कु०
चला गया हैं	चलि गये या गै	न्है गैछ
गया हुआ है	ज्यूं छ	गै रछ
उसने खा लिया हैं	वन खाइ आले	विले खै हाल छ

जहाँ भूत कृदंत उपरोक्त काल के बनाने में काम आते हैं वहाँ उनके रूप, लिंग, वचन और पुरुष के अनुसार बदलते रहते हैं।

७—सम्भाव्य भूत—वर्तमान कालिक कृदंत के पूर्व अगर लगा कर और कृदंत के रूपों को लिंग, वचन और पुरुष के अनुसार बदलते रहने पर यह काल बनता है।

हि०—चलता

ए० व०

ग०		कु०	
पु०	स्त्री०	पु०	स्त्री०
१—चलदो	चलदी	जानू	जानि
२—चलदो	चलदी	जानै	जानि
३—चलदो	चलदी	जानो	जानि

ब० व०

ग०		कु०	
१—चलदा	चलदी	जाना	जानि
२—चलदा	चलदी	जाना	जाना
३—चलदा	चलदी	जाना	जानिन

वर्तमान काल

१ सामान्य वर्तमान—गढ़वाली में वर्तमान कालिक कृदंत में रूप पुरुष, लिंग और वचन के अनुसार बदलते हैं किन्तु कुमाउँनी में वतमान कालिक कृदंत के अस्थाई रूप पर छ सहायक क्रिया के वर्तमान काल के रूपों को जोड़ा जाता है। उत्तम पुरुष एक वचन में कभी कृदत के अन्त में ऊँ भी आ जाता है। उत्तम पुरुष और अन्य पुरुष बहुवचन म कुमाउँनी में छ सहायक क्रिया नहीं लगती है।

हि०—चलता है

ए० व०

ग०		कु०	
पु०	स्त्री०	पु०	स्त्री०
१—चलदू	चलदू	हिटौं या हिटन या हिटूँ छूँ	हिटौं या हिटन या हिटूँ छूँ
२—चलदी	चलदी	हिटौं या हिटन छँ	हिटौं या हिटन छँ
३—चलदा	चलदा	हिटौं या हिटन छ	हिटौं या हिटन छया

ब० व०

ग०		कु०	
१—चलदवां	चलदवां	हिटनूँ	हिटनू

२—चलदवा	चलदवा	हिटौं छै	हिटौं छै
३—चलदिना	चलदिना	हिटनी, हिटिन	हिटनिन

गढ़वाली मे कभी निश्चय के अर्थ मे वर्तमान कालिक कृदंत के रूपों के साथ छ सहायक क्रिया के वर्तमान काल के रूप भी जोड़ दिए जाते है।

ग०

ए० व०		ब० व०	
पु०	स्त्री०	पु०	स्त्री०
१—चलदो छऊं	चलदी छऊं	चलदा छवां	चलदी छवां
२—चलदो छै	चलदी छै	चलदा छवा	चलदी छवा
३—चलदो छ	चलदी छ	चलदा छना	चलदी छना

काल

२—अपूर्ण वर्तमान—यह गढ़वाली मे क्रिया के सामान्य रूप पर छ के वर्तमान कालिक रूप जोड़े जाने से बनता है। कुमाउँनी मे इस काल का काम कभी सामान्य वर्तमान से ही लिया जाता है और कभी क्रियार्थ संज्ञा के स्थाई रूप के साथ लागि जोड़ कर पुन: रछ सहायक क्रिया के वर्तमान कालिक रूप जोड़े जाते हैं।

हि०—चल रहा हू

ए० व०

ग०		कु०	
पु०	स्त्री०	पु०	स्त्री०
१—चलणों छऊं	चलणी छऊं	हिटण लागि रछूं	हिटण लागि रैछूं
२—चलणों छै	चलणी छै	हिटण लागि रछै	हिटण लागि रैछ
३—चलणो छ	चलणी छ	हिटण लागि रछ	हिटण लागि रैछया

ब० व०

१—चलणा छवां	चलणी छवां	हिटण लागि रछूं	हिटण लागि रैछूं
२—चलणा छयां	चलणी छयां	हिटण लागि रछौ	हिटण लागि रैछौ
३—चलणा छन	चलणी छन	चलण लागि रछन	हिटण लागि रै छन

३—आज्ञार्थ तथा संभाव्य वर्तमान – निकट भविष्य मे कार्य करने तथा कार्य होने की सम्भावना इसकाल से प्रकट की जाती है। साथ ही आज्ञा लेने के लिए भी यही काल काम मे लाया जाता है। आज्ञा लेने के अर्थ मे अन्तिम स्वर पर बलात्मक स्वराघात होता है। आज्ञार्थ मे मध्यम पुरुष नहीं होता।

ग०		कु०	
ए० व०	ब० व०	ए० व०	ब० व०
१—जऊं	जवां	जूं	जौं

२—अई	जवा	जे	जो
३—आव	आवन	जो	जावन

सम्भाव्य वर्तमान के अर्थ में क्रिया से पूर्व अगर लगाना आवश्यक है।

भविष्यत् काल

१—सामान्य भविष्यत्-मध्य पहाड़ी में धातु पर लो जोड़ने से सामान्य भविष्यत् बनता है। जिसके लिंग, वचन और पुरुष के अनुसार रूप बदलते रहते हैं। भविष्यत् का लो प्रत्यय राजस्थानी से मिलता है। किन्तु राजस्थानी में लो एक रूप रहता है।

हि०—चलेगा।

ए० व०

ग०		कु०	
पु०	स्त्री०	पु०	स्त्री०
१—चलुँलो	चलुँली	हिटुँलो	हिटुँलि
२—चलिलो	चलिली	हिटलो	हिटलि
३—चललो	चलली	हिटलो	हिटलि

ब० व०

१—चलुला	चलुली	हिटुला	हिटुला
२—चलिला	चलिला	हिटला	हिटला
३—चलला	चलली	हिटाला	हिटलिन

२—सम्भाव्य भविष्यत् - गढ़वाली में क्रियार्थ संज्ञा के स्थाई और कुमाउनी में अस्थाई रूप पर हो सहायक क्रिया के रूपों को जोड़ देते हैं। और उस पर भविष्यतकाल का लो प्रत्यय जोड़ा जाता है।

हि०—चलता होगा।

ए० व०

ग०		कु०	
पु०	स्त्री०	पु०	स्त्री०
१—चलणा हूलो	चलणी हूली	हिटण हुनलो	हिटण हुनली
२—चलणा ह्वैलो	चलणी ह्वैली	हिटण हुनलै	हिटण हुनलि
३—चलणा होलो	चलणी होली	हिटण हुनलो	हिटण हुनलि

ब० व०

१—चलणा हूला	चलणी हूली	हिटण हुनुँला	हिटण हुनुला
२—चलणा ह्वैला	चलणी ह्वैली	हिटण हुनला	हिटण हुनला
३—चलणा होला	चलणी होली	हिटण हुनाला	हिटण हुनलि

३—करणीय भविष्यत् - मध्य-पहाड़ी में एक भविष्यत्काल करणीय अर्थ में

प्रयुक्त होता है जो क्रियार्थ संज्ञा के अस्थाई रूप से बनता है। सकर्मक क्रिया के रूप कर्म के अनुसार केवल वचन मे बदलते रहते हैं। बहुवचन में इ या ई प्रत्यय लगाया जाता है।

ग०—मैंन चलण। हमन चलण। मैंन बखरा मारण। मैंन बखरा मारणी।

कु०—मैंले चलण। हमले चलण। मैंले बाकरो मारण। मैंले बाकरा मारणि।

अर्थः—अनेक अर्थ तो काल के अन्तर्गत हो आ गए हैं। यहाँ केवल विधि के अर्थ में क्रियाओं के रूप दिए जाते हैं। हिन्दी के ही समान मध्य पहाड़ी में भी विधि के दो रूप होते हैं। प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रत्यक्ष मध्यम और अन्य दोनों पुरुषों में होता है किन्तु परोक्ष केवल मध्यम पुरुष मे होता है।

प्रत्यक्ष विधिः—मध्यम पुरुष तथा अन्य पुरुष एक वचन में गढ़वाली और कुमाउनी दोनों मे धातु ही क्रिया का काम देती है। और मध्यम पुरुष बहुवचन में गढ़वाली में आ प्रत्यय और कुमाउंनी में ओ प्रत्यय जोड़ा जाता है। अन्य पुरुष बहुवचन में गढ़वाली में इन या ईं प्रत्यय जोड़ा जाता है और कुमाउंनी में आ या न प्रत्यय जोड़ा जाता है।

हि०—चल-चलो; चले-चलें

	ग०		कु०	
	ए० व०	ब० व०	ए० व०	ब० व०
२–	चल	चला	हिट	हिटा
३–	चल	चलिन, चली	हिट	हिटां हिटन

एक वर्ण के धातु के आगे मध्यम पुरुष बहुवचन में गढ़वाली में व और कुमाउंनी मे अन्तिम स्वर का लोप करके औ जोड़ा जाता है जैसे–गढ़वाली–तुम खावा। कुमाउंनी–तुम खौ।

परोक्ष विधि.—गढ़वाली मे धातु पर इ और कुमाउंनी में ए प्रत्यय जुड़ता है। बहुवचन में गढ़वाली मे यों और कुमाउंनी मे या अथवा यों जोड़ा जाता है।

हिन्दी–चलना

	ग०		कु०	
	ए० व०	ब० व०	ए० व०	ब० व०
२–	चलि	चल्यों	हिटे	हिट्यों हिटिया

कर्मवाच्य

मध्य-पहाड़ी मे धातु पर इ प्रत्यय जोड़ कर उसे कर्म वाच्य बनाया जाता है। जैसे, खा से खाई या खै। मार से मारि कर्म वाच्य धातु बनती है। इनके रूप

सब कालों में पुन कर्तृवाच्य के समान ही चलते हैं। कुमाउँनी में धातु पर इन् प्रत्यय लगाया जाता है। और यह अविकारी रहता है इस पर पुनः छ सहायक क्रिया के रूप जोड़े जाते हैं। कभी कभी कर्मवाच्य धातु पर जा धातु के रूप भी जोड़े जाते हैं। ऐसे अवस्था में कर्मवाच्य धातु पर कुमाउँनी में केवल इ प्रत्यय लगता है और गढ़वाली में अन्तिम स्वर को लोप करके या प्रत्यय लगता है। यहाँ केवल सामान्य वर्तमान के रूप दिए जाते है।

हि०—मैं मारा जाता हू

	ग०		कु०	
	ए० व०	ब० व०	ए० व०	ब० व०
१	मारिंदू	मारिन्दवा	मारिन्छू	मारिन्छूं
२	मारिंदो	मारिन्दवा	मारिन्छै छै	मारिन्छौ
३	मारिन्दा	मारिन्दिन	मारिन्छ छया	मारिन्छिन

अथवा

	ग० ए० व०	ग० ब० व०	कु० ए० व०	कु० ब० व०
१	मार्‌या जांदू	मार्‌या जांदवां	मारिजा छूं	मारिजा छूं
२	मार्‌या जांदी	मार्‌या जांदवा	मारि जां छै	मारिजां छौ
३	मार्‌या जांदा	मार्‌या जांदिन	मारि जां छ-छया	मारि जां छिन

भाव-वाच्य

जिस प्रकार सकर्मक क्रियाओं का कर्मवाच्य होता है उसी प्रकार अकर्मक क्रियाओं का भाववाच्य होता है। इसमें कर्ता अव्यक्त रहता है उसे करण कारक में समझा जाता है। यह प्राय: असमर्थता के अर्थ में प्रयुक्त होता है और हमेशा क्रिया अन्य पुरुष में होती है।

		ग०	कु०
भूत	-	चल्या गयो	हिट्‌यो
वर्तमान	-	चल्यांदो या चल्या जांदो।	हिटिण
भविष्यत्	-	चल्या जालो या चल्योलो।	हिटियो।

इस प्रयोग में कालों के भिन्न भेद प्राय. नहीं होते हैं।

ग०	कु०
मेरि कै नि चल्या गयो।	मेरि कै नि हिटियो।
मेरि कै नि चल्या जांदो।	मेरि कै नि हिटिन।
मेरी कै नि चल्या जालो।	मेरि कै नि हिटियो।

इसका प्रयोग कालों के भिन्न भिन्न भेदों में बहुत कम किया जाता है।

कर्तृवाचक संज्ञाएं—मध्य पहाड़ी मे कर्तृवाचक संज्ञाओं मे भी भविष्यत्

काल में क्रिया के नैरिन्तर्य का बोध कराया जाता है। कुमाउँनी में 'धातु पर नेर' या णिया प्रत्यय लगा कर कर्तृवाचक संज्ञाएँ बनाई जाती हैं जैसे खानेर (खाने वाला) जानेर (जाने वाला), करनेर या करणिया (करने वाला), हुनेर या हुणिया (होने वाला)। गढ़वाली मे देर प्रत्यय लगाया जाता है या क्रियार्थ संज्ञा के अस्थाई रूप पर वालो प्रत्यय लगा देते हैं जैसे जांदेर, खांदेर, वूढ़देर या जाणवालो खाणवालो होणवालो।

ग०—वो जाण वालो नी छ। मेरा दगड़िया राजो होण वाला नी छना। वा मिलणवाली नीछ।

कु०—उ जानेर न्हाति। मेरा दगड़िया राजी हुनेर न्हातन। उ मिलनेर न्हाते।

हि०—वह जानेवाला नहीं है। मेरे साथी राजी होने वाले नहीं हैं। वह मिलने वाली नही है।

संयुक्त क्रियाएँ

जाणो, होणो, हलणो या अलणो, रहणो या रुणो सहायक क्रियाओ से बनी हुई कुछ संयुक्त क्रियाओ का वर्णन काल प्रकरण मे हो चुका है। यहाँ कुछ अन्य सहायक क्रियाएँ दी जाती हैं जिनके द्वारा मुख्य क्रिया भिन्न-भिन्न अर्थों को प्रकट करने लगती है।

१—चाणो—इससे इच्छा का बोध होता है। गढ़वाली में इसके पूर्व क्रियार्थ संज्ञा का स्थाई रूप और कुमाउँनी मे अस्थाई रूप जोड़ा जाता है।

ग०—मैं अपणा काका सणि नी मारणो चांदो।

कु०—मैं अपाणा काका कणि मारण नी चाम्यूँ।

लि० स० इ० ९–४ पृष्ठ १५५।

इसका कर्मवाच्य चैंणो कर्तव्य और आवश्यकता के अर्थ मे आता है। जैसे कु० घमंड नी करणों चैंनो। ग० घमंड नी करणो चंदो।

२—सकणो—इस सहायक क्रिया से समर्थता या आज्ञा का बोध होता है। इसके साथ सदैव मुख्य क्रिया का पूर्वकालिक कृदंत रूप प्रयोग में आता है। इसके रूप भी काल, लिंग, वचन और पुरुष के अनुसार बदलते रहते हैं। इसके साथ कभी कभी विशेषकर भूतकाल मे छ सहायक क्रिया के रूप भी जोड़े जाते हैं।

कु०—जतुक दुख दि सकुँला।

ग०—जतना दुख दे सकुँला।

हि०—जितना दुख दे सकेंगे।

आज्ञा देने के अर्थ में—

कु०—उ देखि सकनी ।

ग०—वा देखी सकदी या सकदीना ।

भूत काल म –

कु०—उ देखि सकन छिया ।

ग०—वो देखि सकदा छया ।

३—लगणो और पंठणो—इन दोनों सहायक क्रियाओं के पूर्व, क्रियार्थ संज्ञा के अस्थाई रूप लगते हैं । ये दोनों कार्य के आरम्भ के बोधक हैं । गढ़वाली में प्रायः लगणो और कुमाउँनी में पंठणो का प्रयोग होता है । पठणो का उच्चारण गढ़वाली में हिन्दी के समान ही बैठणो होता है ।

कु०—कामण पंठा ।

ग०—कांपण लग्या ।

हि०—कांपने लगा ।

४—देणो, लेणो—इन दोनों का प्रयोग प्रायः आज्ञार्थ होता है । देणों में व्यापार प्राय. कर्म के लिए और लेणो मे कर्ता के लिए होना है । यह दोनों पूर्वकालिक कृदंत के साथ आती हैं । भूतकाल मे पूर्णता के अर्थ मे भी इसका प्रयोग होता है ।

कु०—ये कणि छाडि दिया । अच्छो तुइ लि लियाँ ।

ग०—ये सणि छोडि दियाँ । अच्छो तुइ ले लियाँ ।

हि०—इसको छोड़ देना । अच्छा तूही ले लेना ।

पूर्णतया के अर्थ मे—

कु०—धरि दियो । बात मानि लि ।

ग०—धरि देए । बात मानि लेए ।

हि०—रख दिया । बात मान लो ।

रखणो या थाकणो—ये सहायक क्रियायें भी कार्य की पूर्णता के अर्थ मे प्रयुक्त होती हैं । इनके साथ भी मुख्य क्रिया के पूर्वकालिक कृदत काम में लाया जाता है ।

कु०—मातग कणि बर्त राख छियो । यो बात याद रखिया ।

ग०—यो काम करि थाकि । या बात याद रख्या ।

पड़नो .—यह सहायक क्रिया बाध्य होने के अर्थ मे या अकस्मात् कार्य होने के अर्थ मे आती है । इसके साथ क्रियार्थ संज्ञा का प्रयोग होता है ।

कु०—अन्यारा में हिट्ण पड़ो ।

ग०—अन्धेरा माँ हिटण पड़े ।

हि०—अंधेरे मे चलना पड़ा।

कु०—यो बात है पाड़।

ग०—या बात हूँ पड़े।

हि०—यह बात हो पड़ी।

पाणो :—इस सहायक क्रिया का प्रयोग प्रायः निषेधार्थ मे होता है। इसके साथ भी क्रियार्थ संज्ञा का ही प्रयोग होता है। गढ़वाली मे इसका प्रयोग कभी-कभी क्रोध प्रगट करने के लिए भी होता है।

कु०—कै दुख नि हुण पौं छियो।

ग०—कको दुख नो हूण पांदो छयो।

हि०—कोई दुख नहीं होने पाता था।

ग०—वो नि आण पांदो।

हि०—वह नहीं आने पाता (क्रोध में)।

अलणो, हलणो, चुकणो—गढ़वाली मे प्रायः सकर्मक क्रिया के पूर्वकालिक कृदंत के साथ आलणो और चुकणो दोनो का पूर्णता के अर्थ मे प्रयोग होता है। अकर्मक क्रिया के साथ आलणो का प्रयोग नहीं होता। कुमाउनी मे आलणो के स्थान पर हालणो का प्रयोग होता है। इनके प्रयोगों के उदाहरण काल विवेचन में दिये गए हैं।

इनके अतिरिक्त मध्य पहाड़ी मे पुनरुक्त संयुक्त क्रियाएँ भी हिन्दी के ही समान होती है। लिखणो-पढ़णो, चलणो-फिरणो, करणो-धरणो, खाणो-पोणो, मिलणों-जुलणो, देखणो- भालणो।

सहायक तथा स्थिति दर्शक—क्रियाओ की व्युत्पत्ति—

छः—यह स्थिति दर्शक तथा सहायक क्रिया भी है। मध्य-पहड़ी के अतिरिक्त पूर्वी-पहाड़ी, राजस्थानी, गुजराती, बंगला तथा कुछ दरद बोलियों में छ का प्रयोग होता है। बंगला मे यह आछे के रूप मे है। डाक्टर चटर्जी इसकी व्युत्पत्ति भारोपीय परिवार की एक कल्पित धातु अच्छ्[1] से करते हैं जिसको वैदिक भाषा तथा संस्कृत ने स्थान नही दिया किन्तु बोलचाल मे होती हुई अच्छ् धातु तथा उसके रूप वर्तमान भारतीय आर्य-भाषाओ तक पहुँच गए हैं। कुछ मे उसका लोप भी हो गया है। टर्नर महोदय उसकी व्युत्पत्ति संस्कृत आ+क्षे[2] धातु से करते हैं।

र (रह) यह सहायक क्रिया कुमाउँनी में ही प्रयोग में आती है। गढ़वाली

१—च० बं० ल० पृष्ठ १०३३।

२—ट० ने० डि० पृष्ठ १९१।

में नहीं है। इसका प्रयोग सदैव छ' के साथ रछ थे रूप में होता है। इसकी व्युत्पत्ति अनिश्चित[1] है।

न्हाति—यह निषेधात्मक स्थिति-दर्शक सहायक क्रिया है। यह कई पश्चिमी पहाड़ी बोलियों में भी पाई जाती है किन्तु उनमें इसका रूपान्तर वचन और लिंग के अनुसार नहीं होता जैसा कि कुमाउनी में होता है।

नास्ति—नाथि—न्हाति।

८—अव्यय

मध्य-पहाड़ी के अधिकांश अव्यय हिन्दी से मिलते हैं। केवल कुछ उच्चारण भेद हैं। कुछ अव्यय ऐसे अवश्य हैं जो हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में न होकर केवल मध्य-पहाड़ी में हैं। कुछ अव्यय ऐसे भी हैं जो दोनों बोलियों में भी समान नहीं हैं। व्युत्पत्ति की दृष्टि से मध्य-पहाड़ी में अव्यय चार प्रकार के हैं। प्रथम श्रेणी में वे अव्यय आते हैं जो प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं में भी अव्यय ही थे और मध्य कालीन आर्य भाषाओं में से विकसित होते हुए मध्य पहाड़ी में आ गये हैं। जैसे—संस्कृत बहि.। प्राकृत—बहि। हिन्दी बाहिर या बाहर। म० प० भैर। दूसरी श्रेणी में वे अव्यय हैं जो प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं में दो भिन्न भिन्न शब्दों के योग से बने हैं। किन्तु मध्यकालीन और अर्वाचीन आर्य-भाषाओं में दोनों शब्द ऐसे मिल गये हैं कि अब वे अलग नहीं किये जा सकते। जैसे संस्कृत—परः+श्वः। हिन्दी—परसों। ग०—परसें या परस्यूं। कु०—पोरूं। तीसरी श्रेणी में वे अव्यय हैं जो वर्तमान भाषा के दो शब्दों के योग से बने हैं। जैसे कु०—ये जागा (यहाँ)। ग०—यीं जगा। चौथी श्रेणी में वे अव्यय हैं जो सर्वथा देशज हैं। जिनकी व्युत्पत्ति प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं से नहीं की जा सकती। जैसे कु० तथा ग० दगाड़ि या दगड़ी। कु०—टाड़ (दूर)।

व्याकरण की दृष्टि से अव्यय चार प्रकार के हैं। इनमें से विस्मयादिबोधक अव्ययों का उल्लेख, शब्द प्रकरण में हो चुका है। संबंधसूचक अव्ययों का भी उल्लेख कारक प्रकरण में आ चुका है। यहाँ केवल क्रियाविशेषण और समुच्चय-बोधक अव्ययों पर विचार किया जायेगा।

क्रिया विशेषण

क्रिया विशेषण चार प्रकार के होते हैं। काल वाचक, स्थान वाचक, परिमाण वाचक और रीति वाचक।

सर्वनाम मूलक क्रिया विशेषण :—चारों प्रकार के सर्वनाम-मूलक नीचे दिये जाते हैं। जो हिन्दी से बहुत अधिक मिलते जुलते हैं।

१—हि० भा० इ० पृष्ठ २९४।

कालवाचक क्रिया विशेषण :—ग०, कु०, हि० मे समान हैं।

सर्वनाम मूलक कालवाचक क्रिया विशेषण —ग०, कु० और हि० मे समान हैं।

ग०—अब जब कब तब, अबि जबि कबि तबि।

कु०—अब जब कब तब, अबैं जबैं कबैं तबैं।

हि०—अब जब कब तब, अभी जभी कभी तभी।

स्थानवाचक सर्वनाम मूलक क्रियाविशेषण कुमाउँनी में दो प्रकार के हैं और गढ़वाली म तीन प्रकार के है। कुमाउँनी में तीसरे प्रकार के केवल दो रूप हैं। हिन्दी और कुमाउँनी के प्रथम श्रेणी के स्थानवाचक क्रियाविशेषण मिलते जुलते हैं किन्तु गढ़वाली में भिन्न हैं।

ग०—यख वख कख जख, इनै उनै क्नै जनै या इथैं उथैं जथैं कथैं।

कु०—यां वां कां जां, येति उति कति जति या यथ उथ।

हि०—यहां वहां जहां कहां, इधर उधर किधर जिधर।

रीतिवाचक क्रिया-विशेषण भी कुमाउँनी और हिन्दी में कुछ कुछ समान हैं। इसके विपरीत गढवाली मे कुछ भिन्नता है।

ग०—इलै, उलै, जिलै, किलै, इनकै, उनिकैं, कनिकैं, जनिकैं।

कु०—इले, उले, जिले, किले, यसिकै, उसिकै, कसिकै, जसिकै।

हि०—इसलिए, उसलिए, किसलिए या क्यों, जिसलिए। यों, त्यों, ज्यों।

परिमाणवाचक क्रिया विशेषण हिन्दी और गढवाली में एक ही हैं किन्तु कुमाउँनी में भिन्न हैं।

ग०—इतना उतना कतना जतना, इतगा उतगा कतगा जतगा।

कु०—एतुक उतुक जतुक कतुक।

हि०—इतना उतना जितना कितना।

व्युत्पत्ति

सार्वनामिक कालवाचक क्रिया-विशेषण अब जब आदि सर्वनामों की प्रथम ध्वनि तथा ब के योग से बने हैं। बीम्स[1] के अनुसार इस ब प्रत्यय का सम्बन्ध बेला से है। चटर्जी[2] महोदय वैदिक एव या एवा से अब की व्युत्पत्ति बताते हैं। एव या एवा वैदिक भाषा में इस प्रकार के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। प्राकृत में एव[3] अवधारण के अर्थ में प्रयुक्त होता रहा है : किन्तु 'इस प्रकार' के अर्थ मे एव का विकसित रूप

१—हि० भा० इ० पृष्ठ ३०९।

२—च० ब० ल० पृष्ठ ९५६।

३—प० स० म० पृष्ठ २४३।

संस्कृत तथा प्राकृतों में एवं, एम्वं या एत्थ या एत्था हो गया। इसी पर अपभ्रंश की सप्तमी की विभक्ति हि लगा कर एत्थहि बन गया है जो इस समय के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इस एत्थहि[1] के रूप घिस कर यहें या यह रह गए हैं। इसी के अनुकरण पर तहें या तह, जहें या जह, कहें या कह, रूप भी बन गए हैं। बीम्स महोदय की व्युत्पत्ति में बेला की ल ध्वनि का क्या हुआ कुछ पता नहीं चलता। डाक्टर चटर्जी की व्युत्पत्ति युक्ति सगत है। एत्था के सप्तमी के रूप एत्थहि बनने में अचानक अर्थ परिवर्तन कर देने में कुछ सकोच अवश्य प्रतीत होता है। पाइअसद्दमहण्णवो[2] में एत्थहि का संस्कृत प्रतिशब्द इदानीम दिया गया है। किन्तु इदानीम् का एत्थहि कैसे बना यह नहीं बताया गया।

गढ़वाली के अखि, जखि, कखि, तखि, तथा कुमाउनी के यथं, जथं, कथं, तथं, अब तब आदि पर ही जोड़ने से बने हैं। अथ + ही-अथही-अखि या अथं।

२—स्थानवाचक सार्वनामिक क्रिया-विशेषण —हिन्दी और कुमाउनी के स्थानवाचक सार्वनामिक क्रिया विशेषणों में साम्य है। प्रथम प्रकार के सार्वनामिक क्रिया विशेषणों में सर्वनाम की प्रथम ध्वनि पर हाँ लगा देने से बनते हैं जो मध्य-पहाड़ी के अल्प प्राणत्व की प्रवृत्ति के कारण कुमाउनी में याँ वाँ जाँ काँ रह गए हैं। डाक्टर चटर्जी[3] बगाली इसे रूप की व्युत्पत्ति बताते हुए उनका सम्बन्ध हिन्दुस्तानी के यहाँ, वहाँ से जोड़ते हैं। प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के एतत्र के पचमी रूप एतस्मात् से यहाँ की व्युत्पत्ति की गई है। संस्कृत-एतस्मात्। प्राकृत-एअम्हा। अपभ्रंश-एअहाँ। हिन्दी-यहाँ। हिन्दी के स—स्थ—थ—ह में कुछ भाषा विज्ञानियों[4][5] ने डाक्टर चटर्जी का उल्लेख करते हुये यहाँ के ह की व्युत्पत्ति की है। किन्तु डाक्टर चटर्जी ने बगाली के सेथा एथा की व्युत्पत्ति पालि के तत्थ एत्थ से बताते हुए सिडल का उल्लेख किया है जिन्होंने सत्थ से उपर्युक्त शब्दों की व्युत्पत्ति की है, डाक्टर चटर्जी ने हवन्यु जीअर का उल्लेख भी किया है। इन्होंने तत्र, अत्र, यत्र और कुत्र से उपर्युक्त शब्दों की व्युत्पत्ति की है। तहाँ, यहाँ, हाँ, कहाँ की तत्र, यत्र, अत्र, कुत्र से व्युत्पत्ति करने की अपेक्षा डाक्टर चटर्जी की पचमी के रूपों एतस्मात् आदि से व्युत्पत्ति अधिक सगत ज्ञात होती है। द्वितीय

१— प. स. म. पृष्ठ २४३।
२—प. स. म पृष्ठ २४३।
३—ब. ब. ल. पृष्ठ ।
४—हि. भा इ. पृष्ठ ३१०।
५—ब. आ भा पृष्ठ ३०५।

श्रेणी के स्थानवाचक सार्वनामिक क्रिया विशेषण कुमाउँनी में एति, उति, जति और कति हैं और ब्रजभाषा मे इतै, तितै, कितै हैं इनमे अंतिम व्यजन महाप्राण की अपेक्षा अल्पप्राण है और साथ ही अन्त मे अनुनासिकता भी नही है। अतः इनकी व्युत्पत्ति अत्र, तत्र यत्र कुत्र से की जा सकती है। ब्रजभाषा के तितै के स्थान पर कुमाउँनी मे उति है। त ध्वनि तद् सर्वनाम के रूपो के कारण है। जब तद् के रूप (सो या तो) के स्थान पर अद के रूप (वह आदि) दूरवर्ती निश्चयवाचक सर्वनाम के लिए ग्रहण कर लिए गए तब किसी किसी वर्तमान भारतीय आर्य-भाषाओं मे सार्वनामिक क्रियाविशेषणो मे भी यह परिवर्तन उपस्थित हो गया इसीलिए कुमाउँनी में तति के स्थान पर उति है।

पूर्वी गढवाली के इथैं उथैं तथैं कथैं जथैं और अवधी[१] के यथाँ उथाँ जेथाँ केथाँ की व्युत्पत्ति एतत्स्थाने, तत्स्थाने, यत्स्थाने से की जाती है। क्योंकि अन्त में थ की महाप्राण ध्वनि और ने को अनुनासिक ध्वनि दोनों उपस्थित है। तत्स्थाने—तथाएँ—तथैं। गढ़वाली मे तथैं और उथैं दोनो रूप मिलते हैं। क्योंकि दूरवर्ती निश्चयवाचक सर्वनाम क वो और स्यो दो रूप होते हैं। तथैं दृष्टिगत (तुलनात्मक सामीप्य) प्रकट करता है। इनमे से कुमाउँनी मे केवल यथ और उथ रूप रह गए हैं।

गढ़वाली मे प्रथम प्रकार के सार्वनामिक स्यानवाचक क्रिया विशेषण यख, वख, जख, कख, तख, है। इनके मूल मे संस्कृत का कक्ष शब्द प्रतीत होता है। संस्कृत मे कक्ष का अर्थ ओर या तरफ भी होता है। एतत्कक्ष-एअक्ख-यख। इसी प्रकार बख, जख, कख तथा तख शब्द भी बने हैं। यहाँ भी वख और तख मे वही अन्तर है जो उपर्युक्त उथैं और तथैं मे बताया गया है। गढ़वाली मे इथैं उथैं जथैं कथैं के साथ साथ इनैं उनैं जनैं कनैं तनैं रूप भी पाए जाते हैं। गढ़वाली मे इनके सार्वनामिक विशेषण भी इनो उनो जनो कनो और तनो हैं। जबकि कुमाउँनी मे हिन्दी से मिलते हुए यसो वसो जसो कसो हैं। यसो वसो जसो कसो तो स्पष्ट ही सर्वनामों पर दृश के योग से बने है। एतादृश—एरिसा—ऐसा। किन्तु इनो की व्युत्पत्ति वैदिक एना से की जाती है। एना[२] + इव—एनैव—इनउ—इनो। इसी के अनुकरण पर उनो, जनो, कनो और तनो भी बने है। इन्ही के आधार पर गढवाली मे स्थानवाचक सर्वनामिक क्रिया विश्लेषण इनैं, उनैं, जनैं, कनैं और तनैं बने हैं।

१—ब० अ० मा० पृ० ३०५।
२—प० ग० भ० पृष्ठ ८३०।

३—रीतिवाचक सार्वनामिक क्रिया-विशेषण :—सार्वनामिक विशेषणों पर कर या तु के पूर्वकालिक कृदत कै या केवल क के योग से बनते हैं।

गढ़०—इवो + कैं—इनकैं।

कु०—यसो + कै—यसिकै।

अन्तिम ए स्वर का प्रभाव उपान्त्य ओ पर पड़कर उसमे भी इ बना देता है। मध्य-पहाड़ी में इनके अतिरिक्त इलैं उलैं किलैं ज्रिलैं आदि रीति वाचक सार्वनामिक क्रिया विशेषण भी हैं। यह लै प्रत्यय संस्कृत के लगने से बना हुआ है। लगने—लागे—लागो—लई—लैं।

४—परिणाम वाचक सार्वनामिक क्रिया विशेषण :—गढ़वाली और कुमाउंनी के परिमाण वाचक सार्वनामिक क्रिया-विशेष। और परिमाण वाचक सार्वनामिक विशेषणों में कोई अन्तर नहीं है। गढ़वाली के परिमाण वाचक सार्वनामिक विशेषण ओकारान्त होते हैं अतएव लिंग, वचन के अनुसार रूप बदलते रहते हैं। गढ़वाली और हिन्दी के 'इतना'[1]का सम्बन्ध संस्कृत इयत् और प्राकृत एत्तिय[2]से बताया जाता है। वर्तमान आर्य-भाषाओं में ना[3]का योग और हो गया है। वास्तव में इतना उतना आदि शब्द गढ़वाली में हिन्दी के प्रभाव से आ गए हैं। प्राचीन रूप इतिगा उतगा हैं जो कुमाउंनी के उतुक एतुक जतुक कतुक आदि से मिलते हैं। यह रूप दरद भाषाओं में भी पाए जाते हैं।

कु० गढ़० शिणा[4] कश्मीरी[5] मैया[6] श्रोकप[7]

कतुक कतगा कताक कुत कतुक कनाक

ये रूप गढ़वाली और कुमाउंनी में पुराने प्रतीत होते हैं। जेतिक और केतिक पुरानी अवधी[8] में भी पाए जाते हैं। वर्तमान अवधी के कुछ क्षेत्रों में अभी भी इनका प्रयोग होता है। बंगला के एतेक जतेक कतेक आदि सार्वनामिक विशेषणों का सम्बन्ध भी इन्हीं से है।

१—हि० भा० इ० पृष्ठ २८७।

२—प० स० म० पृष्ठ २४१।

३—व० आ० भा० पृष्ठ २११।

४—लि० स० इ० व० ८ भा० २ पृष्ठ १५९।

५— „ „ „ ५०४।

६— „ „ „ ५४७।

७— „ „ „ २३२।

८—वा० आ० भा० पृ० २०९।

डाक्टर चटर्जी[1] हिन्दी के इतना उतना और जितना तथा बंगाली के एतेक ततेक का मूल यत् से अन्त होने वाले वैदिक परिमाण वाचक इयंत या इयत् । कियत या कियत् को मानते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वैदिक इयत् या कियत् से पालि के एत्तका और केत्तका निकले है जिनमे स्वार्थे क का योग किया गया है। इसी से मध्य-पहाड़ी के एतुक कतुक या इतगा कतगा तथा बगला के एतेक कतेक रूप निकले हैं। खड़ी बोली हिन्दी तथा उससे प्रभावित गढ़वाली मे इतना और कितना आदि परिमाणवाचक वैदिक इयत और कियत के विकसित रूप हैं। इयत और कियत के विकसित रूप बोलचाल मे रहे होंगे किन्तु प्राकृत और अपभ्रंश के साहित्य मे उन्होने स्थान नही पाया।

इयत् और कियत् पर पुन: तिय और ति प्रत्यय[2] जोड़कर एत्तिय और केत्तिय रूप बने हैं। इन्हीं से एति, केति या किति रूप बने हैं।

अन्य क्रिया विशेषण तथा उनकी व्युत्पत्ति

हिन्दी से सादृश्य रखने वाले अन्य क्रिया विशेषण भैर (बाहर), भितेर भितर (भीतर, दूर, पाछिन या पिछाडी (पीछे) आगिन या अगाडी (आगे) क्रमशः, वहि:, अभ्यतर, दूर, पश्चात् और अग्रत. से निकले हैं। हिन्दी का आगे अग्रे से निकला है।

काल वाचक:—दोफरा या दोफरि (दोपहर) परस्यूं या परों (आगामी परसों) परश्व: से परसे गत परसो भी परश्व: से निकले है। आज(अद्य) झटपट; अचाणचक (अचानक); एकदम।

रीतिवाचक:—न नी या नि (नहीं), झन या जन (जनि, जिसका अर्थ मत होता है); तो (तत.); विना।

परिमाणवाचक:—भौन या बहोत (बहुत); कम; हि या ही;

कुछ क्रिया-विशेषण हिन्दी यथा मध्य-पहाड़ी मे समान रूप से विदेशी भाषाओं से आ गये हैं। जगा या जागा (जगह); तरफ; नजीक (नजदीक); गिरद (गिर्द); आखिर, जल्दी या जल्द; वखत, वकत (वक्त); ज्यादा (जियादा); काफि (काफी) जरा; बेकार; खुद; जरूर; वगैर; बेशक;

मध्य पहाड़ी मे कुछ क्रिया-विशेषण ऐसे हैं जो हिन्दी में नही हैं। हिन्दी के क्रिया-विशेषणो की व्युत्पत्ति हिन्दी भाषाविज्ञानी[3] कर चुके हैं। मध्य-पहाड़ी के अपने क्रियाविशेषणो की व्युत्पत्ति यहाँ की जाती है।

१—च० व० ल० पृ० ८५५।
२—च० व० ल० पृष्ठ ८५५।
३—हि० भा० इ० पृष्ठ ३११ तथा व० अ० भ० पृष्ठ २१० या २११।

कालवाचक :–

ब्याले (ग०), बेलिया या ब्याल (कु०) इनका अर्थ हिन्दी में सन्ध्या या गत दिन होता है। इन शब्दों की व्युत्पत्ति संस्कृत वेला-समय से की जाती है। इसी प्रकार कुमाउँनी के ब्याल—(सन्ध्या) की उत्पत्ति वेला से ही है।

ब्यखुनि :–गढ़वाली में सन्ध्या को कहते हैं। व्यखुति (विखण, वह क्षण जो दिन को रात से अलग करे)

भोल :–(आगामी कल) यह हिन्दी के भोर शब्द से मिलता है जिसका अर्थ हिन्दी में प्रातःकाल होता है। भोर की व्युत्पत्ति के संबंध में हिन्दी के भाषा विज्ञानी संदेह में हैं। कदाचित् इसके मूल में भास[1] धातु हो।

पोर (पारसाल) —परुत् (संस्कृत)

परार (परोरा साल) –पर+परुत् (संस्कृत)।

अबेर (देर) —यह शब्द अवेला से बना हुआ है।

रताई —कुमाउँनी में प्रातः तड़के सुबह को कहते हैं। यह रात ही से बना है।

फजल :- गढ़वाली में सुबह को कहते हैं। यह फारसी के फजर से निकला हुआ है।

सदनि (हमेशा) :-सदानन (संस्कृत)→सदाअन→सदान→सदनि।

दों या दां :—इसका प्रयोग मध्य पहाड़ी में बार या दफा के अर्थ में होता है। इस शब्द की व्युत्पत्ति अनिश्चित है।

परिमाणवाचक –

भिंडे (बहुत) —यह गढ़वाली बोली का ही शब्द है। संस्कृत भाण्ड्य से इस शब्द की व्युत्पत्ति की जा सकती है जिसका अर्थ संग्रह करना होता है। भाण्ड्य→भिंड्ड[2] या भिंडे।

मणि (बहुत थोड़ा) —यह कुमाउँनी का शब्द है। संस्कृत मनाक्। प्राकृत–मणय। कुमाउँनी–मणि।

रीतिवाचक :—

दगड़ो या दगाड़ो (साथ साथ) :—इस शब्द की व्युत्पत्ति भी संदिग्ध है। यह देशज शब्द प्रतीत होता है।

सुदे (व्यर्थ में) :–इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत के स्विद् अव्यय से की जा सकती। जो अनिश्चय के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है।

१–हि० भा० इ० पृष्ठ ३११।
२–पा० स० म० पृष्ठ ७९३।

मठ् मठु (धीरे धीरे) :—यह पुनुरुक्त शब्द संस्कृत मत्तं मत्तं से निकला है।

स्थान वाचक :—

मथे ऊपर):—यह गढ़वाली बोली का शब्द है। यह संस्कृत के मस्त या मस्तिष्क का शब्द के सप्तमी के रूप मस्ते से निकला है। मस्ते→मत्थे→मथे।

मूडे या मुणि (नीचे) :—यह संस्कृत के मूल शब्द के सप्तमी के एक वचन रूप मूले से निकला हुआ है। मूले→मूरे→मूडे़ या मुडि या मुणि।

तलि या तला :—इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत के तलम् शब्द से की जाती है। तलं—तलि→तल्ला।

मलि या मला (ऊपर) —इसकी व्युत्पत्ति पालि के मल्हको शब्द से की जाती है जिसका तात्पर्य आयु में बड़ा होना है। ऊँचे स्थान को इसीलिए मल्हको→मल्हो→मलो→मला कहा गया है।

उवां या उव :-संस्कृत उद्वेध→प्राकृत अव्वेह[1]→मध्य पहाड़ी—उवां या उवँ या उव। इसका अर्थ ऊपर होता है। इसी प्रकार उँदों उँद या उँन भी बना है। यह वैदिक अध से निकला है किन्तु उवां के अनुकरण पर ही उदों या उँन हो गया है।

वेड, ढोम, टाड :-वेड और ढोस गढ़वाली शब्द हैं जिनका अर्थ क्रमशः नीचे और ऊपर की ओर होता है। टाड कुमाउँनी शब्द है (यह शब्द खसकुरा और नैपाली मे भी पाया जाता है)। इन्हें देशज या मूल निवासियों के शब्द कहा जा सकता है जिनके लिए कोई निश्चित व्युत्पत्ति नहीं दी जा सकती है। टाड शब्द सम्भव है तिब्बत-वर्मी भाषा का हो और खसकुरा से होते हुए कुमाउँनी मे आ गया हो।

उपर्युक्त, सार्वनामिक तथा अन्य क्रियाविशेषणों पर परसर्ग लगा कर नए अर्थ में क्रिया-विशेषणों का प्रयोग किया जाता है जैसे —

ग०-वह पाँच मील दूर ते आए।

कु०-वो पाच मैल टाड बटि आयो।

नया अर्थ प्रगट करने के लिये दो क्रिया विशेषण आपस मे जोड़ लिये जाते हैं। जैसे—

गढ़वाली—कख कख। कखि-कखि। जब-तब। जख-तख।

कुमाउँनी—कां-कां, कवँ-कवँ, जब तब, जां कां।

१—पा० स० म० पृष्ठ २३२।

आ—समुच्चयबोधक

संयोजक—मध्य-पहाड़ी में मुख्य संयोजक अव्यय हौर या और या अर, व, भी, लै हैं।

१—और, हौर, अर। कुमाउँनी में हौर होता है। प्रयोग हिन्दी के ही समान है।

२—व—का प्रयोग कुमाउँनी में नहीं होता है और गढ़वाली में भी बहुत ही कम होता है। इसका प्रयोग और के अर्थ में होता है।

३—भी—इसका प्रयोग गढ़वाली में होता है।

कुमाउँनी में नहीं होता है इसके स्थान पर कुमाउँनी में लै है। प्रयोग हिन्दी के समान ही है।

४—लै—केवल कुमाउँनी में है (तुम मैं दगाड़ि ब्या लै करो राज लै लिया)।

विभाजक—विभाजक समुच्चयबोधक अव्यय इस प्रकार हैं। या, कि, न—न नथर।

१—या—प्रयोग हिन्दी के समान ही है।

२—कि— *प्रयोग या के अर्थ में होता है, ग०—(क्या खैलो भात कि रोटी)*;

कु० (के खैल, भात कि रवाट)।

३—न+न—इसका प्रयोग हिन्दी के समान है—ग० (न मैन पढ़े न थैन);

कु० (न मैंले पढ़ो न तिले), हि० (न मैंने पढ़ा न तू ने)।

४—नथर (नहीं तो)।

ग० (थैन मेरी बात मान लेई नथर मैं थै मणि मारनो)।

कु०—(तिले मेरी बात मान लि नथर मैं थैं मणि मारनूँ)।

विरोध दर्शक—हिन्दी गढ़वाली और कुमाउँनी में विरोधदर्शक अव्यय 'पर' है। हिन्दी में मगर भी है। जोकि फारसी का प्रभाव है। मध्य-पहाड़ी में भी कभी कभी इसका प्रयोग हो जाता है। पर तथा मगर का प्रयोग हिन्दी के समान है।

कु० (कि, जसिक, जो, त, जोत, किलै, जनां बालनि, जब-तब)।

व्यधिकरण—ग० कि० जतिकै, जो, त, जोंता, किलाइ, जनो, बोलदी, जब-तब (कि, जिस प्रकार, जो, तो, जो तो, क्योंकि, जब तब) इनका प्रयोग हिन्दी के समान ही है। केवल जनो बोलदीं या बोलनी या म० प्र० का अपना व्यधिकरण समुच्चयबोधक है। इसका प्रयोग गढ़वाली में (वैना इनो खेल दिखाये जनो बोलदीं मरि गए) कु० (विलै यसो खेल दिखायो, जनो बोलनीं मरि गोछ) हि० (उसने ऐसा खेल दिखाया मानो मर गया)।

व्युत्पत्ति

१—और[1]:—और की व्युत्पत्ति संस्कृत अपर से की जाती है। अपर→ अवर→ अउर→ और।

२—भी[2]:— भी व्युत्पत्ति अपि हि से की जाती है। अपि हि→ विहि→ भी।

३—लै (भी):—लै की व्युत्पत्ति भी अनिश्चित है। संभव है कि यह प्राकृत शब्द लाइअ[3] से बना हो। जिसका अर्थ लगा हुआ होता है।

४—कि:—'कि' की व्युत्पत्ति डाक्टर सक्सेना[4] किम् से करते हैं। प्राकृत में किम् सर्वनाम का रूप कि हो जाता है। यही कि अव्यय में भी ग्रहण कर लिया गया है। डाक्टर वर्मा[5] कि को फारसी से आया हुआ बताते हैं। प्राचीन भारतीय आर्य-भाषाओं से उसकी व्युत्पत्ति संदिग्ध बताते हैं।

५—नयर.—यह संस्कृत के अन्यथा शब्द से बना हुआ है। अन्यथा→ नथा→नयर।

६—पर:-इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत के परम् से की जाती है।

७—जो[6]:—जो की व्युत्पत्ति यदि से की गई है यदि–जदि जद→जअ→जो

८—तो या त की व्युत्पत्ति संस्कृत ततः से मानी जाती है।

ततो→तओ→तो।

९.—पद क्रम

१—सभी वर्तमान भारतीय आर्य भाषाओं में विधानार्थक वाक्य में पदक्रम प्रायः एक ही जैसा रहता है। मध्य-पहाड़ी में भी पहिले कर्ता, पुनः सम्बन्धकारक या सम्बोधन को छोड़कर अन्य कारकों को सविभक्ति शब्द, और अन्त में क्रिया-पद होता है। सबंधकारक में भेदक शब्द, को, के, की या रो, रा, री परसर्गों के सहित में भेद्य शब्द से पूर्व आता है। वाक्य के बीच में आनेवाले संज्ञा-शब्द, कर्म को छोड़कर, सभी सपरसर्ग होते हैं। कर्म कभी सपरसर्ग और कभी सपरसर्ग रहित होता है। अन्य कारकों की अपेक्षा कर्म कारक क्रिया के अधिक समीप रखा जाता है—जैसे गोविन्द बाजार ते मैकूँ किताब लाए।

१–हि० भा० इ० पृष्ठ २१९।

२–हि० भा० इ० पृष्ठ २१९।

३–पा० स० म० पृष्ठ ८९९।

४—ब० अ० भ० पृ० ३११। हि० भ० इ० पृष्ठ २१९।

५–हि० भा० इ० पृष्ठ २१९।

६—हि० भ० इ० पृष्ठ २१९।

ग० गोविन्द बाजार है मैं हूणि किताब लायो। इन वाक्यों में बाजारतैं या बाजार है अपादान और मैकूं या मैं हूणि सम्प्रदान का क्रम बदला जा सकता है। किन्तु किताब शब्द कर्म-कारक में होने से सदैव लायो या लाए के समीप होगा। गौण कर्म प्रायः मुख्य कर्म से पहिले आता है।

मैलेवि कणि किताब दी। कु०।

मैं न वे सणि किताब देने। ग०।

यहाँ गौण कर्म वे मुख्य कर्म, किताब से पहिले आया है।

विशेषण हिन्दी के समान ही प्रायः विशेष्य से पूर्व आता है किन्तु स्थिति सूचक क्रिया के साथ पूरक के रूप मे विशेष्य के पश्चात् आता है। जैसे—आम मिठो छ।

क्रिया-विशेषण प्रायः हिन्दी के समान ही क्रिया से अव्यवधान पूर्व आता है किन्तु कालवाचक और स्थानवाचक विशेषण क्रिया से पूर्व कहीं रखा जा सकता है।

मातन की ब्या कालिद दगड़ि धूम-धाम लै है गयो। कु०।

मातन को ब्यो कालिदो का दगड़ो धूम-धाम से ह्वे गये। ग०।

इसमे धूम-धाम ले या धूमधाम से, गयो, गया क्रिया से पूर्व आया है किन्तु मैं अब स्कूल जांदू या जानूं मे वाक्य मे अब कर्ता से पूर्व भी आ सकता है। अब मैं स्कूल-जानूं या जादूं।

भाषण मे प्रसग के अनुसार वाक्य मे कभी केवल एक शब्द से भी काम चल सकता है। चाहे वह कर्ता, क्रिया, कर्म विशेषण या क्रिया विशेषण ही क्यों न हो।

२—विधानार्थक वाक्य में अवधारण के लिए उपर्युक्त पदक्रम में भी परिवर्तन हो सकता है। जैसे—चलि गये वो ? (ग०)। चलि गोछ उ ? (कु०) इसमें चलना पर बल देने के लिए चलि को वाक्य के आरम्भ में रखा गया है। यही बात वाक्य के अन्य पदों के सबंध में भी है चाहे वे किसी कारक में हों। संस्कृत जैसी सश्लिष्ट सविभक्तिक भाषाओं में पदों के वाक्य में किसी स्थान पर रखने पर भी अर्थ वैभिन्य उपस्थित नहीं होता किन्तु मध्य-पहाड़ी में हिन्दी के समान ही पदक्रम का सदैव ध्यान रखना पड़ता है। अतएव यह विपर्यय केवल अवधारण के लिए ही होता है।

३—कविता मे भी हिन्दी के समान ही पदक्रम बदला जाता है। जैसे 'उन दिनों खाल दिनी दिनी पै धिकार'। इसमें 'धिकार' कर्म दिनी क्रिया के पश्चात् आया है।

४—किसी के कथन को दोहराने के पूर्व कि का प्रयोग होता है किन्तु हिन्दी के समान यह आवश्यक नहीं है जैसे—"नौनी न जवाब दिने मेरो बाप लाखड़ा काटन

कू आयूं छ" (ग०) "वेलि से जवाब दियो मेरो बाबा लाकड़ा काटण हुनि अरछ" (कु०)। यहाँ देना क्रिया के पश्चात् कि का प्रयोग नहीं किया गया है।

५—कथन के अन्त मे संस्कृत के इति के स्थान पर कु० में 'कै' का प्रयोग होता है। जैसे—

मेरा दगड़िया ये बात में राजी हुनेर न्हातन कै विले उनम दों के निकयो। इसके स्थान पर ग० मे करीक आता है।

वेन तैरो बाप्प क ल छ करीक पश्चिम का वीर की नौमी से पूछे।

६—जब सुनी हुई बात दूसरे से कही जाती है तब यदि वक्ता को इस बात का निश्चय हो तो वह सामान्यतः बोलता है। किन्तु यदि उसे कुछ सन्देह होता है या बात को किसी कारण निश्चित रूप से नहीं कहना चाहता तो बल शब्द का प्रयोग करता है। जैसे-

वो पास हवें गये बल (सुना जाता है) (ग०)

उ पास है गोछ बल (कु०)

मध्य-पहाड़ी बोलियों का साहित्य

मध्य पहाड़ी बोलियों में साहित्य नाम मात्र के लिए है। खस काल मे गीत और पंवाड़ों के अतिरिक्त काव्य-चर्चा की आशा रखना व्यर्थ है क्योंकि खस लोग परिश्रमी अवश्य थे किन्तु उनकी संस्कृति बहुत पिछड़ी हुई थी। कत्यूरी, चंद, प्रमार आदि राजाओं के दरबारों मे जो ब्राह्मण आदि विद्वान रहते थे वे संस्कृत मे ही रचना करते थे। लोक-भाषा की ओर उनका ध्यान नहीं गया अतः लोक-भाषा ग्राम गीतों तक ही सीमित रही।

गढ़वाल और कुमाऊं मे करुण और शृंगार रस के अनेक लोक-गीत या ग्राम्य-गीत स्त्रियाँ जंगलो मे घास या लकड़ी काटते हुये अत्यंत मधुर ध्वनि से गाती रहती हैं। प्रायः ये गीत स्थानीय होते हैं। कभी किसी का एक मात्र पुत्र नदी में बह जाता है या पर्वत से गिर जाता है अथवा कोई नव विवाहिता युवती ससुराल से दुखी होकर अपने नवजात शिशु का अंतिम बार चुम्बन कर किसी जलाशय मे गिर पड़ती है तब स्थानीय लोगों मे सहानुभूति का ज्वार करुण गीत के रूप में प्रकट हो जाता है। कभी किसी युवती का किसी पर-पुरुष के साथ प्रेम हो जाता है। ऐसी अवस्था मे यदि बात सब पर प्रगट हो जाती है तो उस युवक और परकीया नायिका के प्रेमोद्गार तथा मिलन प्रयत्न लोक-गीत का रूप धारण कर लेते हैं। इस प्रकार के गीत विशेष कर, शृंगार रस सम्बन्धी, समय-समय पर होने वाले मेलो मे युवक और युवतियाँ कभी कभी उमंग मे आकर गा भी लेते हैं जिससे उनका प्रचार दूर दूर तक हो जाता है। परन्तु यह गीत स्थाई नहीं होते। साधारणतः दस पन्द्रह वर्ष

हिन्दी भावान्तर :—पर्वतों में नाना बहुमूल्य फल होते हैं जिनमें हिसालू बहुमूल्य वस्तु है। चोटि प्रहर जब इसका मदद होता है तब जिसका स्वाद लेने में कहाँ मैं समझता हूँ कि अमृत भी क्या वस्तु होती होगी। (अर्थात् हिसालु के समान अमृत भी नहीं है)।

(४)

शार्दूलविक्रीडित

खाना लायक इन्द्र का हम छिया भूलोक आई पड़ी।
पृथ्वी म लग यो पहाड़ हमरी थाती रची दैवल॥
येई चित्त विचारि काफल सबै राता भया आप से।
कोई और बुड़ा गुड़ा शर्म ले नीला धूमिला भया॥

शब्दार्थ —काफल = फल (एक प्रकार का फल जो पहाड़ों पर ग्रीष्म ऋतु के आरम्भ में होता है। एक छोटी गुठली ऊपर से अत्यन्त स्वादिष्ट पदार्थ से ढकी रहती है। फल पकने पर लाल हो जाता है। जब अत्यधिक पक जाता है तो नीला या हलका काला रूप धारण कर लेता है। खाना = खाने। छिया = थे। आई पड़ी = आ पड़े। लग = भी। थाती = धरोहर सम्पत्ति, यहाँ रहने का स्थान। दैवले = विधाता ने। येई = यही। राता = लाल। भया = हुए। आप से = आप से। यहाँ भी कोई मात्रा पूर्ति के लिए है अन्यथा कई होना चाहिए। बुड़ा = बूढ़ा। गुड़ा = निरर्थक पुनरुक्त शब्द है। शरमले = शर्म से। धूमिला = धुँधला काला। इसमें हेतूत्प्रेक्षा है।

हिन्दी भावान्तर —हम इन्द्र के द्वारा खाए जाने लायक थे। भू लोक में आ पड़े। पृथ्वी में भी दैव ने यह पहाड़ हमारे रहने का स्थान बनाया। इसी बात को चित्त में विचार कर सब काफल आप से लाल हो गए। कोई बूढ़े गुड़े शर्म से नीले तथा धूमिल रंग के हो गए।

जब हिन्दी रीतिकाल की परम्परा में बंधी हुई अपनी स्वच्छन्द गति को खो चुकी थी तब गुमानी कवि कुमाऊँनी में स्वच्छन्द गति से नाना विषयक कविता बना रहे थे। कवि का ध्यान अपने आस पास की छोटी छोटी वस्तु पर गया था।

शिवदत्त सती—'मित्र विनोद'

(१)

ईश्वरऽ भगवानऽ तुम है माया दयालऽ।
परवतऽ कँणों भलो जन पड़ मालऽ।
आपणा मुलुक रौनि औ आपणी थानऽ।
मटणा हुबुका मणा मादिरा की मानऽ॥

मँडुवा की रोटी भली सिशोणि को सागऽ।
माल जाई कसो होलो दगड़ै छ भागऽ।
जँको भाग भलो छ त परवत चैनऽ।
बिगड़िया भाग कति है छ खैंन भैंनऽ॥ १॥
सुख में छै परवत दुःख होलो मालऽ।
बाराबाटा हइ जाला बिगड़ला हालऽ॥
घाम लागि बेरि उति एक चोट होलीऽ।
तेरि इजा दुख होलो नानि छाँरि रोली॥
परबत रइ जाले ज्यान सुख रौली।
भावर पहलि उति दिन रात बौली॥
तेरि इजा म जा कछ मानि जानि कयो।
कसि रौली परबत एक चेलो हयो॥
माला जाइ बेर तेरो अदिन ऐजालो।
लालाच माँ आई रौछ घर की को खालो॥
हुणि बोलै रैछ तेरी आई जाली कालऽ।
परबत रूँणों भलो जन पड़े मालऽ॥ २॥

इस छन्द मे ह्रस्व दीर्घ का विशेष ध्यान नहीं रखा गया है। गाते समय, स्वर आवश्यकतानुसार ह्रस्व या दीर्घ हो जाता है।

शब्दार्थ :—है=हो। जया=जाना। रूँणो=रहना। जन=मत। पड़े=रहना पड़े। माल=मैदान, यहाँ तराई भावर जिसे जलवायु की दृष्टि से पर्वतीय लोग अंडमान से भी भयंकर समझते थे और चैत्र से लेकर कार्तिक तक भावर की ओर उतरना मौत के मुंह में प्रवेश करना समझते थे। आपणा=अपने। रौनि=रहते हैं। जाँ=जहाँ। थात=स्थिति या प्रभुत्व। भटका=एक प्रकार की दाल जो सोयाबीन से मिलती है। डुबुका=उबला हुआ रस। मादिरा=समा के चावल या झंगोरा। मंड़्वा=काले रंग का एक अनाज जिसकी रोटियाँ बनती है। सिशोणि=एक चौड़े पत्ते वाला पौधा जिसके पत्तों पर बारीक काँटे होते है। जाड़े की ऋतु में साग सब्जी के अभाव से पहाड़ों पर इसी के पत्तों का साग बनाया जाता है। जाई=जाकर। कसो=कैसा या क्या। होलो=होगा। दगड़े=साथ ही। भाग=भाग्य। जँको=जिसका। छ=है। त=तो। चैन=आनन्द। बिगड़िया=बिगड़े हुए। कति=कहाँ। हैछ=होती है। खैंन-भैंन=घूम-धाम। हइ=हो। मात्रा के लिए हइ हो गया है अन्यथा है होना चाहिए। जाँछ=जाता है। जन-जाल=बखेड़ा। छैं=है। बाराबाटा=नष्टभ्रष्ट। हई जाल=हो जाएँगे। बिग-

तात्पर्य यह है कि वास्तविक आग के न होते हुए भी आग है। गढ़वाली में बिनु ध्वनि के स्थान पर बिना छदो हो जाता है।

हिन्दी भाषान्तर—जिस विधवा लड़की का भाग्य फूट गया गला कट गया। हे पिता जी विधवा लड़की का मरना भला है। मैं तुम से छूट गई। शोक न कीजिए। सब दुःख दूर हो गया रोग कट गया। मेरे साथ मृत्यु के समय भेंट नहीं हुई यही दुःख रहा। काया भाग्यशालिनी हो गई। छः महीने की (विधवा) चली गई। मेरा सब दुःख और जंजाल दूर हुआ। विधवा लड़की मरी हुई गाय का मांस है (जिसकी ओर लोग दृष्टि डालना भी पाप समझते हैं)। पिता जी का दुःख हुआ। मेरी माता रोएगी। वन, घर, खेती, पाती (हर स्थान पर) गोपी गापी कहेगी।१। दस महीने जिसने बोझ उठाया (अर्थात् अपने पेट में रक्खा) उसको पीड़ा होती है। माता पिता को दुःख दे गई मेरा बेटा नरक है (अर्थात् इससे बढ़कर नरक का काम कुछ नहीं है)। मैंने कोई सुख नहीं दिया। जन्म भर के लिए शोक दिया। किसी के घर शत्रु कोख में न हाए (अर्थात् दुःख देने वाली सन्तान पैदा न होवे)। रास्ता देखकर माँ कहेगी—गापी आवेगी गोपी आवेगी जिस रास्ते ससुराल गई थी उसी रास्ते आवेगी। माता का हृदय हुआ। बिना आग के होते हुए भी (आग) होती है। कलेजे में लड़की (की विदाई) का घाव लग गया। माता पिता को जो सताता है नरक में रहेगा। पिता जी ! विधवा लड़की का मरना भला है॥ २॥

रामदत्त पन्त—गीता माला

[१]

नाच

बसि बन बिराजित फूलन मे
बसु उत्सव छं रछ ये बच मे।
कस सुन्दर शीतल पौन चली
मन आज मनं मन छा बिरली ॥ १ ॥
अति उच्च डलों बटि तान सुणा
ध्वनि बाँसुरा बाजिछ बोट मुणि।
हुलसं अति मोद नरी मन ले
तार चरम नाच दिखूँनि भलं ॥ २ ॥
कस शोभित आज अकाश छ, हो।
घट नाचछ गाड़ बचूँ छ अहो।
मन कंक नि हो पिरकी पिरको
अब गोप चलो लस थो पिरको ॥ ३ ॥

शब्दार्थ:—कसि—कैसी । जून—चाँदनी । विराजिए—विराज रही है । छ रछ—छाया हुआ है । ये—इस । बण—वन । मनै मन—मन ही मन । छा—है । यहाँ छ होना चाहिए । बिचली—चंचल । ऊनां—ऊँचा जंगल । बटि—से । सुणी—सुनी । यहाँ सुणी मात्रापूर्ति के लिए है अन्यथा इसे सुणिछ होना चाहिये जिसका अर्थ सुनाई देता है । हंसनै—हंसते हुए । मनले—मनने । । दिखूँनि—दिखाते हैं । दिखूँनी होना चाहिए । घट—घराट या पनचक्की । नाचैछ—नाचती है । गाड—छोटी नदी । नचूँछ—नाचती है । कैक (कैको)—किसका । थिरकी—नाचना । लग—भी । यां—यहाँ । थिरकी—नाची ।

हिन्दी भावान्तर:—फूलों के ऊपर कैसी चाँदनी विराज रही है वन में कैसा उत्सव छाया हुआ है कैसी सुन्दर शीतल पवन चली । आज मन, मन ही मन में चंचल है (अर्थात् भीतर भीतर ही चंचल है) । अत्यन्त ऊंचे जंगल से तान सुनाई देती है । वहाँ वृक्ष के नीचे बाँसुरी बजती है । तारे और चंद्रमा मन से हंसते हुए सुन्दर नाच दिखाते हैं । आज आकाश कैसा शोभित है । पनचक्की नाचती है और नदी नचा रही है । आज नाचने का मन किसका न होगा । जब गोप-छली (राधा) भी यहाँ नाचती है ।

[२]

जोड़ तोड़ (प्रश्नोत्तर)

रिटि आ रे ओ कतुआ ! घुरु घुरु रिटि आरे ॥ १ ॥

माछि को रकत—

कतुवा रिटोणो को हो मिलौ कां बलतऽ ॥२॥

गोरु मों छ झाली—

हिटनै बुलानै कातो नि भै रओ खालो ॥ ३ ॥

कुटि हाला धानऽ—

धागु को के होलो दाज्यू हो! जो कातो दुनिया नमानऽ ॥४॥

फोड़नि अखोड़ऽ—

कातला त बचला पै रुपया करोड़ऽ ।

जहाजों में मगूंण को नी होली लपोड़ऽ ॥५॥

पुसै कि जाँघड़ो—

धागै जै है जाला पै हो क्वै नी रौ नांगड़ो ॥६॥

शौकूँ का बाकारा—

ऊन विनों लाला दिनौं दिनौं पै दिकारा ।

बोको सं बोकनौं पै हो बेबनौं आकारा ॥ ७ ॥

मनुवें की दे छ:—
मखमल छोड़ि बेर गजि की पैरेंछ ॥८॥
घुगती पूरें छ:—
घर-कुड़ि जे के चैंछ उ गजि पैरेंछ ॥९॥
दुदि में को गाजा—
घरें को सम्भाल थैं पै कुनी हो स्वराजा ॥१०॥

यह कविता स्वदेशी वस्त्र प्रयोग के महत्व पर लिखी गई है। इसमें प्रश्न और उत्तर हैं। इसके प्रत्येक पद की पहिली पंक्ति केवल तुक के लिए दी गई है। उसका पद के अर्थ से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह पहाड़ी ग्राम्य-गीतों की विशेषता है।

शब्दार्थ :—रिटिजा=घूम जा। कतवा=लकड़ी की बड़ी तकली जिसको तकुआ भी कहते हैं। घुरू घुरू=घुर घुर का शब्द करते हुए। माछ=मछली। रकत=रक्त। रिटौण=घुमाना। मिलौ=मिलता है। मिलो के साथ छ भी होना चाहिए। गोरू=गाय। नौं=नाम। श्याली=व्यक्तिवाचक संज्ञा। हिटनै=चलते हुए। भै=हो। रओ=रहो। टूटि हाला=टूट लिए। धागू=तागों। के होलो=क्या होगा। दाज्यू हो=हे बड़े भाई। समान=समस्त। फाड़नि=फोड़ते हैं। अखोड़=अखरोट। कातला=कातेंगे। बचाला=बचाएंगे। मगूँण=मंगाने। लखोड़=बखेड़ा। मुसैं=चूहे। यह शब्द मूसा है किन्तु सम्बन्धकारक में भेदक शब्द पर ऐ जोड़ दिया जाता है और कि का लोप हो जाता है या नाम मात्र के लिए उच्चारण रहता है। यद्यपि लिखने में पूरा लिखा जाता है। धागे जै है जाला=यदि धागे हो जायेंगे। क्वै=कोई। निरौ=नहीं रहने। नांगड़ो=नंगे। जांगड़ो में ड़ ऊनवाचक है और नांगड़ो में तुक मिलाने के लिए ड़ ध्वनि जोड़ी जाती है। शौक=बकरी पालने वाले तिब्बतियों के वंशज हैं जो कुमाऊं और तिब्बत की सीमा पर रहते हैं और बकरियों की पीठ पर बोझा ढोते हैं। दिनी=देते हैं। लै=भी। बोकनी=उठाते हैं। बेचनी=बिकते हैं। आकाश=अधिक कीमत में। मनुवा=काले रंग का अनाज। दै=अनाज से भूसा अलग करने की क्रिया जिसमें अनाज के ऊपर बैलों को चक्कर कटवाया जाता है। छोड़ि बेर=छोड़कर। गजि=गाढ़ा। पैरेंछ=पहनना है। घुगती=पक्षी विशेष। पुरैंछ=शब्द करती है। घर-कुड़ि=मकान जायदाद। जैकें=जिसको। चैंछ=चाहिए। उ=वह। दुदि=दूध। घरें=घर को। सभाल=सम्भाल। थैं=का। कुनी=कहते हैं।

हिन्दी-भाषान्तर :—ऐ तकली घूम जा। घर घर घूम जा।१। (मछली का रक्त)—तकली घुमाने का समय कहाँ मिलता है ?।२। (गाय का नाम श्याली) ?

चलते, बोलते कातो खाली मत रहो। ३। धान कूट लिए—तागों का क्या होगा? हे भाई साहब! जब सारा संसार कातने लगेगा। ४। (अखरोट फोड़ते हैं) कातेंगे तो करोड़ बचायेंगे। जहाजों में सगाने का बखेड़ा नहीं होगा। ५। (बूढ़े को जांघ)—तागे जो हो जाएँगे तो कोई नंगा नहीं रहेगा। ६। (खौको के बकरे) ऊन देते हैं, खाल देते है, शिकार भी देते है, बोझ भी उठाते हैं और अधिक कीमत पर भी बिकते है? । ७। (मडुवा का खलियान है)। मखमल छोड़कर गाढ़ा कौन पहनता है? । ८। (धुमती धुर धुर का शब्द करती है) मकान जायदाद जिसको चाहिए वह गाढ़ा पहिनता है। ९। (दूध के ऊपर फन) घर हो को सभाल का स्वराज्य कहते हैं।

ग्राम्य-गीत

शृगार-रस सम्बन्धी

बसुले की धारऽ—
कैंक्रा स्वारा जन पड़ऽ इश्क़ की मारऽ ॥ १ ॥
तमाकू की रति—
चडि कसो चारो दिठें रवि भूलुँली कति ॥ २ ॥
बिछौणो दरी को—
समझणो करि गे छैं उमर भरी को ॥ ३ ।
दली हाल दाल—
कित है जो मन कसी कि निन्है जो कालऽ ॥ ४ ॥
दाड़िम को फूल—
मैं जू कुनूँ मायादार तुछैं माया भूलऽ ॥ ५ ॥
सिणि जालो कोट—
सुवा का जवाब उँनी गौलि कसो चाटऽ ॥ ६ ॥
पाणि को गिलासऽ—
कस्तुरा मिरग जसो मैं तेरी तलासऽ ॥ ७ ॥
बुति जाला धानऽ—
तेरो त बिगडो के नी मेरी जालि जानऽ ॥ ८ ।

इस छन्द मे प्रेमी, नायिका के प्रति अपने हृदय के उद्‌गार प्रगट कर रहा है। नायिका पर किया है। इसमे भी प्रत्येक पद की पहली पंक्ति निरर्थक है।

शब्दार्थ—(दातुले की धारा—दराँती की धार) निरर्थक। कैंक्रा—किसी के। स्वारा—भाग्य में या सिर पर। जन—मत। पड़—पड़े। इश्क—प्रेम। (तमाकू की रति—तम्बाखू की चुटकी) चडि—चिड़िया। कसो—

सदृश्य। चारो – चारा। दिछं – देनी हो। त्वि – तुझे। भुलु`लो – भूलूंगा। कति–कहाँ। बिछौना–बिछौणो। समझणो–समझना करिगे छ–कर गई हो। उमर भरी को– आयु पर्यन्त के लिए। दलि हाल – दल ली है। कित– यातो। है जो – हो जावे। मन कसो – मन की सी। निन्हैजो – ले जावे। मैं जु बुनूं – मैं कहता रहा हूं। या समझता रहा हूं। मायादार – प्रेमवती। तुछं – तू है। माया भूल – प्रेम को भूलनेवाली। सिगि जालो – सिला जाएगा। सुवा – प्रियतमा या नायिका। ऊंनो – आते हैं। गोलि जसो – गोली के समान। चोट – चोट पहुंचानेवाला। पाणि – पानी। जसो – समान। बुनि जाला – बूते जायेंगे। बिगड़ो के नि – कुछ नही बिगड़ा। जालि – जाएगी।

हिन्दी भाषान्तर – (दराती की धार) किसी के सिर पर प्रेम की मार न पड़े। १। (तम्बाकू की चुटकी) चिड़िया का सा चारा देती हो। (जिस प्रकार चिड़ीमार चिड़िया को फसाने के लिए चारा फेंकता है उसी प्रकार तुम भी अपने प्रेम के फंदे मे फसाने के लिए बनावटी प्रेम दिखाती हो) तुझे कहाँ भूलूंगा। २। (दरी का बिछौना) उम्र भर के लिए समझना कर गई हो, (अपनी याद मेरे हृदय मे जीवन भर के लिए छोड गई हो)। ३। (दाल दल ली है) या तो मन की सी हो जाय या मृत्यु ले जावे। ४। (दाड़िम का फूल) मैं तो कहता हूं (या समझता हूं) कि तुम प्रेम करनेवाली हो किन्तु (वास्तव में) तुम तो प्रेम को भूलनेवाली हो। ५। (कोट सिला जाएगा) प्रियतमा का जवाब गोली की चोट के समान आता है, (जैसा घाव गोली करती है वैसा ही घाव नायिका का जवाब भी करता है)। ६। (पानी का गिलास, कस्तूरा मृग क समान मैं तेरी तलाश मे हूं (जिस प्रकार कस्तूरा मृग सुगन्ध को स्वयं अपने पास रखे हुए इधर उधर भटकता है उसी प्रकार तुम प्रति क्षण मेरे हृदय मे निवास करती हो और मैं तुम्हें इधर उधर ढूंढता हूं। ७। (धान बूते जाएंगे) तेरा तो कुछ नहीं बिगड़ेगा। मेरे तो प्राण चले जाएंगे।

श्यामा चरण पन्त-दातुलै की धार।

। १।

दातुलै की धारऽ। पर्वती कुमारऽ।
चलै दिनी बिघन हू जडि बै बुठारऽ।
मंगलदातारऽ।
श्री गणेश ज्यु हूं पैल करो नमस्कारऽ।। १ ।।
दातुलै की धारऽ। कविता आधारऽ।
तोखो तीव्र करैं बुद्धि ब्रह्मविद्यासारऽ।
गीत कैं उचारऽ।
वाक् बाणी सरस्वती देवो नमस्कारऽ।।२।।

दातुलै की धारऽ। घेप का हुजारऽ।
कणन का छत्र तली पालनी ससारऽ।
सब तिरा भनारऽ।
लछिमी नरैण हुणि करौ नमस्कारऽ॥३॥
दातुलै की धारऽ। सर्पकंठहारऽ।
जटा जै की अटै रैंछ गंगज्यु की धारऽ।
पहाड़ी नच्यारऽ।
डुड़का बजै धिरका मचौ विकै नमस्कारऽ॥४॥
दातुलै की धारऽ। ज्ञान कै प्रचारऽ।
बगट जा गाड़ी दिनी काटी अन्धकारऽ।
उर का बिकारऽ।
वि गुरू हूं बार बार मेरो नमस्कारऽ॥५॥

यह पहिले बताया जा चुका है कि पहाड़ी गीतो मे पहली पंक्ति केवल तुक मिलाने के लिए लिखी जाती है और निरर्थक होती है। यहाँ कवि ने दातुलै की धार शब्द को सार्थक रखा है। प्रत्येक गीत के आरम्भ मे तुक के लिए दातुलै की धार को ही लिया है। इसमें गणेश, सरस्वती, विष्णु और शिव चार देवताओं की स्तुति की गई है। भाषा में संस्कृत शब्द अधिक है। हिन्दी के ही समान मध्य-पहाड़ी मे भी आजकल के पढ़े-लिखे लोग तत्सम शब्दो को लाने का प्रयत्न करते हैं।

शब्दार्थ:—दातुलै — दरांती। यह दातुली शब्द है सम्बन्धकारक मे भेदक शब्द पर ए जुड़ जाता है। चलै दिनि — चला देते हैं। हू — को। हिन्दी में ऐसे स्थान पर 'पर' होना चाहिए। जड़ि — जड़ ही। बै — से वैं, बटि का सक्षिप्त रूप है, जो कुमाउँनी में अपादान की विभक्ति है)। पैल — पहिले। कविता की आधारभूता। गीत के उचार — गीत उच्चार के (गीत गायन के लिए)। उचार — उच्चारण (यहाँ गायन)। कै — के लिए। तली — नीचे। पालनी — पालते हैं। तिरा — पूर्ण। भनार — भंडार। लक्ष्मीनरैण — विष्णु। हुणी — को। जैकि — जिसकी। अटै — समाई। रैंछ — (रही है, हुई है)। गगज्यु — गंगा जी। पहाड़ी नच्यार — पहाड़ी नाचने वाला (यहाँ महादेव जी)। डुड़का — डमरू। बजै — बजाकर। धिरका — जोर से नाचना। मचौ — मचाता है (यहाँ मचौ के साथ छ और होना चाहिए) वि — उस। ज्ञान के प्रचार के स्थान पर ज्ञान को प्रचार होना चाहिए। बगट — वल्कला जा — सदृश्य या रूप। गाड़ी दिनी — निकाल देते हैं। काटी — काटकर।

हिन्दी भषान्तर:—पर्वती कुमार (अर्थात पर्वत पर रहनेवाले शिव और

पार्वती के पुत्र गणेश) विघ्न पर जड़ में ही दराँती की धार के समान कुठार चला देते हैं। मगल देनेवाले श्री गणेश जी को पहिले नमस्कार करो। १। कविता की आधारभूता, ब्रह्मविद्या की सार (रूपा) सरस्वती देवी। दराँती की तीक्ष्ण धार के समान बुद्धि को तीक्ष्ण तथा तीव्र कर देती हैं। वाक्-वाणी (रूपा) उस सरस्वती देवी को गीत-गायन के लिए नमस्कार है। २। दराँती की धार (के समान मुड़े हुए) शेषनाग के हजार फणों के छत्र छाया के नीचे जो संसार को पालते हैं सब वस्तुओं से पूर्ण उन लक्ष्मीनारायण को प्रणाम करो। ३। दराँती की धार (के समान फणवाला) सर्प जिसके गले का हार है। जिसकी जटा में गंगा जी की धार समाई हुई है जो डमरू बजाकर जोर जोर से नाचता है। उस पहाड़ी नाचने वाले (महादेव) के लिए नमस्कार है। ४। ज्ञान के प्रचार (रूपी) दराँती की धार द्वारा अज्ञानान्धकार को काटकर हृदय के विकार (रूपी) बल्कल निकाल बाहर करते हैं। उस गुरु को बार बार मेरा नमस्कार।

(२)

दातुलै की धार। दरिद्र के भार।
घर घर गगा जसी हुँछ दुदै धार।
नौणी की बहार।
गोरू भैंसा पालन मे वसि करतार। १।

दातुलै की धार। तुलना विचार।
को करंछ बाकि देख, पालन, संहार।
लड़ा तरवार।
स्युकरि लै लडै बता कोछ जोरदार। २।

दातुलै की धार। स्वारै पर मार।
राक्स सवौस हुँणि बण तलवार।
अबला ओ नार।
बसत विजय दिछ हाथ हथियार। ३।

दातुलै की धार। इज्जत विचार।
उठि फण नागिणि जै छोड़ली फुँकार।
तेजवालि नार।
छेड़ि देलि छुवै फुटला दैत्य रक्तै धार। ४।

दातुलै की धार। रस्यालि उधार।
भूतै डर भाजि जाली। सिराणा आधार।

बांदो दिशा चार।
मंत्र जो छ कालिका को गुरू की पन्यार। ५।

इस गीत में प्रथम पद को छोड़कर शेष मे वीर रस है। दरांती की धार की उपयोगिता बताई गई है। घास लकड़ी काटकर घर के पालन और अपने सतीत्व की रक्षा के लिए नृशंस कामी पुरुषों के संहार में दरांती समान रूप से काम मे आती है।

शब्दार्थ :—कै—को। मार—नष्ट करना। जसी—समान। हुँछ—होती है। दुदै—दूध की। नौणि—नवनीत या मक्खन। गोरू-भैंसा—गाय और भैंस। पालण मे — पालने में। कसि—कैसी। करतार—कार्य करने वाली। करंछ—करता है। बाकि—अधिक। लड़ा—लड़ा ले, तुलना करले। खुकरि—भुजाली, तलवार के स्थान पर पहाड़ियों का लड़ाई का शस्त्र। लै—भी। लड़े बता—तुलना करके बताओ। कोछ—कौन है। जोरदार—शक्तिशाली। स्वारैं—सिर हो। मार—मारो। राकस-खबीस (नृशंस कामातुर पुरुषों से तात्पर्य है)। नार—नारी। बखत—समय पर। दिछ—देती है। विचार—विचार से। उठि—उठाकर। फण, नागिणि जै—नागिनी के फन जैसी। फोड़ली—छोड़ेगी। तेजवाली—तैजस्विनी। छेड़ि देलि—छेड़ देगी यहां काट लेगी। छ्वँ—वर्षाती सोते। फुटला—फूटेंगे। रक्त धार—रक्त की धार। रखवाली—रक्षावली (भूत प्रेत से बचने का मंत्र)। भूतै डर—भूत की डर। भाजि जालो—भाग जाएगी। सिराणा—सिरहाने। बांदो—बांधो। जो छ—जो है। को—का। पन्यार-पहचान।

हिन्दी भाषान्तर :—दरांती की धार दरिद्रता को मारनेवाली है तथा घर घर मे गंगा की धार के समान दूध की धार होती है। मक्खन की बहार हो जाती है। गाय भैंस पालने मे कैसी कार्यशीला है (दरांती से ही घास काटा जाता है)। १। दरांती की धार की तुलना तलवार और खुकरी से करो। देखो पालन और संहार कौन अधिक करता है? तलवार से तुलना करो! खुकरी से भी तुलना करके बताओ कि कौन अधिक शक्तिशाली है? हे अबला स्त्री! दरांती की धार को नृशंस कामी पुरुषो के लिए तलवार बनाकर उनके भाल ही पर मार। हाथ का हथियार समय पर विजय देता है। ३। तेजस्वनी नारी अपने गौरव के विचार से दरांती की धार को नागिणी के फण जैसी उठाकर फुतकार छोड़ेगी और काटेगी तो दुराचारियों के रक्त की धारा के सोते फूटेंगे। ४। दरांती की धार भूत-प्रेत से रक्षा मन्त्र के उच्चारण के समान है। सिरहाने रखने पर भूत की डर भाग जायेगा। गुरु की पहिचान दरांती की धार (के समान) जो कालिका का मंत्र है उस से चारों दिशायें बाँध (वश मे कर)। ५।

मा—गढ़वाली

तारा दत्त गैरोला–सदेई

(१)

हे ऊंचि डाड्यो ! तुम नीसि जावा
घणी कुलायों ! तुम छाँटि होवा।
मैकू लगी छ खुद मैतुड़ा की
बाबाजि की देखण देस देवा। १

मैत कि मेरी तुम्ह पौन प्यारी
सुणी तु रैबार तउमा को मेरी।
गाडमादोना व हिलांस, कफू
मैत को मेरा तुम गीत गावा। २

बारा ऋतु बौड़लि बारा मासा
आली व जाली जनु छोई फेरो।
आई नि आई निरमाग मैकू
कवी भी नि आई ऋतु मेरी दौंला। ३

बसन्त मैना सबका त आई
मैंटणकू आला बहिण्यों कु अपणी।
दीदी भुली मौलिक गीत गाली
गला लगाली खुद बोसराली। ४

मैत्यों की भेजी कपड़ों की टालः
पैल्ली दिखाली कनु से मिजाज।
लठ्यालि मेरो कुछ भाइ होंदो
कलेऊ लौंदो व दुरौंदो पैणा। ५

सदेई नामक युवती का विवाह उसके माता पिता ने दूर कहीं ऊंचे पहाड़ों की ओट में कर दिया है। उसके ससुराल वाले उसे मायके नहीं भेजते। मायके वाले भी उसकी खबर नहीं लेते। उसका कोई भाई भी नहीं है। अपनी जन्मभूमि को याद करके युवती आंसू बहा रही है। इस छन्द में कवि ने मात्रा पूर्ति के लिए कई स्थानों पर ह्रस्व को दीर्घ और दीर्घ को ह्रस्व कर दिया है।

शब्दार्थ :–डांड्यो—पर्वत श्रेणियों ! नीसि जावा—नीची हो जावो। घणी—घनी। कुलायों—चीड़ के वृक्षों ! छांट होवा—अलग अलग या विरल हो जाओ। मैकू—मुझको। लगीछ—लगी हुई है। खुद—प्रवास-वेदना या स्मृति, इस शब्द का

पर्यायवाची शब्द हिन्दी मे नही हैं। इसमे मिलनोत्कंठा, बेचैनी आदि भाव निहित हैं। मैतुड़ा — मायका (ड़ा प्रेम-भाव को तीव्र करने के लिए जोड़ा गया है)। बबाजी – पिता जी। देखण देवा — देखने दो। मैत — मायका। त मात्रा पूर्ति के लिए है। सुणौ — सुनाओ। रैबार — संदेश। गाड़ — छोटी नदी। गदिना — बड़ी नदी। यहाँ गदीना का स्थान पर गदिना होना चाहिए था। हिलांस और कप्फू – पक्षी विशेष। गावा — गाओ। बौड़लि — वापस आयेंगी। लि के स्थान पर दीर्घ ली होनी चाहिए थी। आली और जाली —आयेंगी और जाएँगी। जनु (जनो)—जैसा। दाँइ–खलिहान मे बैलों का चक्कर काटना। क्वो–कोई। दो — तरफ से या लिए। मैना – महीना। त (निरर्थक है)। आला – आयेंगे। बहिण्यों – बहिनो। कु – को। दीदी — बड़ी बहिन। मुली — छोटी बहिन। मालिक – मिलकर। गाली — गायेंगी। लगाली – लगाएँगी। खुद – प्रवास-वेदना। बीसराली (विसराली) — भुलायेंगी। मैत्यों — मायकेवालों। भेजी – भेजी हुई। छालऽ – कपड़ों का जोड़ा। इसके अन्तर्गत सिर से लेकर पैर तक के सब आवश्यक वस्त्र आ जाते हैं। पैल्ली – पहनेंगी पैरली का संश्लेषण के कारण पैल्ली हो गया है। दिखाली—दिखाएँगी। कनु या कनो—कैसा। छे (निरर्थक है)। मिजाज—सौन्दर्य। लठ्याली—सदेई के मैके का नाम। कुइ—कोई। होंदो—होता। कलेऊ-खाने पीने की वस्तु जो मायके से लड़कियो की ससुराल भेजी जाती है। लौंदो—लाता। दुरौंदो—वापिस दिलवाता। पैणा–वह खाने पीने की वस्तु जो पहाड़ मे युवतियाँ अपने मायके से अपने ससुराल की सखियों के लिए ले जाती हैं।

हिन्दी भाषान्तर :–हे ऊँची पर्वत श्रेणियों! तुम नीची हो जाओ। घने चीड़ के वृक्षों! तुम दूर दूर हो जाओ। मुझे मायके की स्मृति सता रही है पिता जी का देश देखने दो। १। हे मेरे मायके को प्यारी वायु! तू तो मेरी माँ का संदेश सुना। हे छोटी बड़ी नदियों! हे हिलांस और कप्फू नामक पक्षियो! तुम ही मेरे मायके का गीत गाओ। बारह महीनों बारह ऋतु वापस अयेंगी जिस प्रकार खलिहान मे बैल चक्कर काटते हैं। मुझ अभागिन के लिए तो आई न आई, मेरे लिए तो कोई भी नहीं आई। बसन्त के महीने सब के भाई अपनी बहिनों को भेंटने के लिए आयेंगे। बड़ी तथा छोटी बहिनें मिलकर गीत गायेंगी, गले लगेंगी और प्रवास वेदना को भूलेंगी। मायकेवालों के भेजे हुए कपड़ों का जोड़ा पहिनेंगी किस प्रकार सौन्दर्य दिखायेंगी। लठ्याली मे यदि मेरा कोई भाई होता तो कलेऊ लाता और सखियों के दिए हुए पैणे को वापस करवाता। ५।

दिनै—दी। घूँटी—घूँटना। चलदि – चलती है। यहाँ भी दी होना चाहिए)। मौं—मैं। न – ने। पती – पति। नांगू=नागो। त्वै – तुझे। ली गए – ले गया। करि छई — की थी। ह्वै=होकर। दीन्यो – दिया। वैका – उसका। छई देंदी (देंदी छई) – देती रही हो। यहाँ छई के स्थान पर छैं होना चाहिए था। पतितों—पापियों। मुगति = मुक्ति। मैंमा—महिमा। रंदी = रहती है। लगै दे—लगा दे डुबदि = डूबती हुई। (यहाँ भी दी दीर्घ होनी चाहिए)। छऊँ= हूँ। तारी—तार। मिलाई—मिला। मैंकू=मुझको। सदेई = युवती का नाम। दिदी या दीदी बड़ी बहिन।

हिन्दी भाषान्तर :—हे माता तुम्हारी यह धारा कैसी भली है जिसके दर्शन से हमारे सब दुःख मिट जाते हैं। मुनि और महात्मा तुमको सब भजते हैं। तू किस प्रकार उनके सभी ताप हर देती है।१। हे माता ! तुमको स्वर्ग से अपने पित्रों को तारने के लिए राजा भगीरथ तप करके लाया था तुम्हारी निर्मल धारा शिवजी की जटा से छूटी और पहाड़ों पहाड़ों के बीच घुसकर रथ के पीछे आई। २। जह्नु ऋषि ने रास्ते में चलती हुई तुझको घूँट लिया। नागों का पति वासुकी तुझे यमपुरी को ले गया। तब राजा ने तेरी बहुत अधिक भक्ति की थी। प्रसन्न और तुष्ट होकर तूने भगरथी को दर्शन दिए। ३। उसके पित्रों को सीधा स्वर्ग पहुँचाया। हे गंगे ! पाप हारिणी तुम पापियों को मुक्ति देती हो। तेरी अनुपम महिमा भी बहुत अधिक प्रसिद्ध है। हे गंगे ! तू सदैव शिव जी के भाल पर रहती है। ४। हे माँ ! तू मेरी डूबती नौका को शीघ्र पार लगा दे। मैं बुरा अधम पापी तेरे शरणागत हूँ। हे माता ! तू मुझे दुःख रूपी भंवर से तार दे। हे भगवती ! मेरी सदेई बहिन को मुझ से मिला दे।

चन्द्रधर बहुगुणा (गढ़वाली गीतावली से)

(१)

बोटिपाल

अभागी छोड़ी कङ्गलपण् घर और देश सणि तू।
कर्म औंदी, क्या धौं धरिदि मनमाँ आश सणि तू।
उहौंदो मारो छैं, कण कणिक हैं बाठ चलदी।
खरी खोटी पौंदी पर जिकुड़ि तेरी नी दुःखदी। १।
फटीं गाती पैरी कमर कसिकि तै तु पटुवा।
अगैला की चाटी तल पर कमी लेकि बटुआ।
लंगोटी गाढा की पहिरि इकली टोपि कसिली।
कड़ी कंगाली को सच बणदि तू स्वाँग असली। २

लगीं मैला की वदा छन तरक तेरा बदन माँ ।
छुचा । बोझा भी रवैं मणि नि लगदी धीन मन माँ ।
विराणो ह्वै गै यथा समझि दुनियाँ कू तू सुपनो ।
कभी अंग्रेजी सुख नक नि पौंदो तू अपणो । ३
दुगड्डा ते पार्णी चल चढ़दि तू भार मन को ।
उठैकी गै बोझा पर नि करदो ध्यान तन को ।
घवै का पैसा का मजल चलदी तू बम चला ।
कनै जूँदी छं तू कम धरि रई प्राण अपणा । ४
चढाई भारी की फिर करकरी गारि तम माँ ।
लपूँ होवो भारी अति चढनहो घाम सब माँ ।
बर्षों भी न हो वो ठड़ठड़ मची हो जगत माँ ।
कुजाणे तेरी क्या मनु अपद दौ दे बगत माँ । ५
पकड़ूँ प्यासो पाणी जब टुटदि तू आस धरि को ।
निपौंदो पेनू कू फिर कभी धीन नरि को ।
तु पौंदो कोलों की लिपट धमकी जोदि जग मी ।
मची रवैक् ऊते ! जब ह्वैरिचि गै मोन उब मी । ६
कभी ह्वीषी ह्वीषी, सुन, धन्द तू पैर अदिमें ।
कभी मायी टेढ़ी छप नर बिझौंदो पकि मर्म ।
मिटौंदो सारा तू दुख सगँग कभी आह भरि को ।
कमौंदो छै पैसा तन बदन कू चूर करि की । ७
इनो त्वे देखो की कलि कलि वठो पेट लगदा ।
न तेरा दुःखों की दलन कभी कोई देव करदा ।
सदा पानों होलो करम फल वो करणि का ।
अभागी को क्वी नौ दुख्दु बिर्वैदा टरणि को । ८

यह छन्द बोझा ढोनेवाले पहाड़ी डोटियाल का वास्तविक चित्र है। अत्यन्त मर्मस्पर्शी ढंग से लिखा गया है। डोटियाल पश्चिमी नेपाल के अत्यन्त दरिद्र लोग होते हैं जो काठगोदाम, नैनीताल दुगड्डा लैन्सडौन आदि पहाड़ी स्थानों पर बोझ ढोने का काम करते हैं उनकी अवर्णनीय दरिद्रता वही जान सकते हैं जिन्होंने नैनीताल के मोटर स्टैंड पर उन्हें खड़ा देखा है। अथवा दुगड्डा से पौड़ी चालीस मील की पैदल यात्रा में दो मन का बोझ सिर पर लादे जाते हुए देखा है।

इस छन्द में भी व्याकरणीय नियमों का पालन नहीं किया गया है। अतः शब्दों के रूप अनिश्चित हैं। ह्रस्व और दीर्घ का भी ध्यान नहीं रखा गया है।

शब्दार्थ :—छोड़ीक—छोड़कर । अपणों—अपना । सणि—को । कनै—कैसे । औंदी—आते हो । घरिदि—धरते हो । यहाँ भी दि के स्थान पर दी होना चाहिए । मां—में । उठौंदो—उठाता है । भारी—बोझ । कणकणिक—कष्ट के समय मुख से निकला हुआ निरर्थक शब्द । तैं-से । चलदी—चलता है । पौंदी—पाता है । जिकुड़ि—हृदय । गातो—शरीर का वस्त्र । पटुखा—कमरबंद । अगेला—लोहा और चकमक पत्थर के रखने का थैला ताकि दियासलाई के अभाव में आग पैदा की जा सके । घाटी—लोहे का टुकड़ा । लेकि—लेकर । छकलो टोपि—मोटी दुपल्ली टोपी । टोपि के स्थान पर टोपी होना चाहिए । कसली—कस ली है । बणदि—बनता है । छन-हैं । तरक—धारायें । छुचा !—अरे ! त्वे सा'ण—तुझको । लगदी—लगती है । घीण—घृणा । ह्वै गै—हो गया । कू—को । सुपनो—स्वप्न । अंवचैंकी—अच्छी तरह। धोंदो—धोता है । दुगड्डा—कोटद्वार से दस मील पहाड़ की ओर एक स्थान है जहाँ से मौड़ी जाने के लिए पहले लोग कुली किया करते थे । चार मन अतिशयोक्ति है । किन्तु डेढ़ दो मन तक वे उठा लेते हैं । उठै की तै—उठाने के पश्चात् । निकरदो—नहीं करता । मजल—दिन भर की यात्रा । घणा—बना । कनै—कैसे । ज्यूंदो—जिन्दा । छ—है । कख—कहाँ । धरि रईं—धरे हुए हैं । द्वारी—एक स्थान जो दुगड्डा से ११ मील की दूरी पर है । और वहाँ पहुँचने के लिए भारी चढ़ाई चढ़नी पड़ती है । करकरी—पैरों में चुभने वाली । भारी—कंकड़ । तख मां—उस रास्ते पर । डोटियालों को जूता नसीब नहीं होता । लग्यूं होव—लगा होवे । चड़चड़ी-झुलसा देने वाला । बवी—हवा । कुजाणें—कौन जाने । गत—दुरवस्था । बणदा—बनती है । दौं—घों (अनिश्चय सूचक शब्द) । बगत—वक्त । थक्यूं—थका हुआ । पाणी-पानी । ढूंडदि-ढूंढता है । धरि की-धर कर । यहा भी 'की' के स्थान पर 'क' होना चाहिए था । निपौंदी-नहीं पाता है । पेणू कू—पीने को । धोत-तृप्ति । मरिकी-भरकर । पौंदी-पाता है । जांदी-जाता है । जख—जहाँ । सचो—सचमुच । त्वैकू तैं-तुझे । हरचिगे- खो गई है । हांपी—हांपकर । सुण—सुन । धरिदी-धरता है । अगिनें-आगे को । माथो टेकी = माथा टेक कर । बिसौंदी = विश्राम लेता है । थकि सणि = थकावट को । मिटौंदी = मिटाता है । कमौंदी छ = कमाता है । इनो = इस प्रकार । क़लकली = दया । बतौ = बताओ । कै = किसको । लगदा = लगती है । क्वी = कोई । करदा = करता है । पाणो होलो = पाना होगा । करणि = करणी, भाग्य । वणद = बनता है । खिवैया = खेने वाला । तरणि = नाव ।

हिन्दी भाषान्तर:—अभागे ! तू अपने घर और देश को छोड़कर किस प्रकार आता है । न जाने किस आशा को तू मन में रखता है । तू बोझ उठाता है

और वेदना का शब्द मुँह से निकालते हुए रास्ते चलता है। बुरी भली सुनता है पर तेरा हृदय नहीं दुखता। (१) तू फटे वस्त्र पहनकर और कमर में फेंटा कसकर, आग प्रकट करने के लिए लोहे का टुकड़ा रखे हुए, कभी उसी को बटुवा बनाकर, गाढ़े की लंगोटी पहनकर, मोटी दोरुखी टोपी कस लेता है। उसी समय तू घोर कंगाली का वास्तविक रूप बन जाता है (२ तेरे शरीर पर मैल की धारायें हैं। अरे! तेरे मन म थोड़ा भी घृणा नहीं आती। संसार को स्वप्नवत समझकर क्या तू वैरागी हो गया है? तू कभी अच्छी तरह मुँह तक भी नहीं धोता। (३) हे पापी! तू दुगड्ड से चार मन का बोझ लेकर चल पड़ता है। बोझ उठाने के पश्चात् तू शरीर का ध्यान नहीं करता। एक पैसे के चने चबाकर तू दिन भर की यात्रा पूरी करता है। तू कैसे जीवित रहता है? तूने अपने प्राण कहाँ छिपा रखे हैं? (४) ढालों की चढ़ाई हो और जिसपर पैरों में चुभने वाली सीधे कंकड़ शरीर को झुलसाने वाली तेज धूप हो। हवा भी न चल रही हो। संसार में तड़पन मची हो उस समय कौन जाने तेरी क्या दुरावस्था होती है। जब प्यासा प्यारा तू आशा धारण कर पानी ढूंढता है तो कभी तृप्ति के साथ पीने को नहीं पाता। तू जहाँ भी जाता है वहाँ लोगों की धमकी हो पाता है सचमुच तेरे लिए तो अब मृत्यु भी मर गई है। कभी हाँफ हाँफ कर तू डग आगे बढ़ता है। कभी साल के सहारे क्षण भर अपनी थकावट को दूर करने के लिए विश्राम लेता है। कभी आह भरकर ही अपने सारे दुख को मिटाता है। तन बदन को चूर चूर कर पैसा कमाता है। तुझे ऐसा देखकर कौन किसको दया आती है? तेरे दुखों का दमन कोई देवता भी नहीं करता। जो करनी का फल है वह तो सदा पाना ही होगा। अभागे की नाव का खिवैय्या कोई नहीं बनता।

भवानीदत्त थपलियाल—प्रह्लाद नाटक से

(१)

भाई बिरादर यार सखा सब छोटा बड़ा टक लाइ सुणा।
दुनिया ढुंगी कि ढकद्याँदी ढुंगि मा चढ़ि जगवंगि ते प्राण निखोणा।
जमीन, जागा, जर, जोरू सगा सब घाला दगा सग क्वी नी हूणो।
याँ ते भवानी भजन हरि ठानो सदानिचु खाणा यें स्वीणा को रूणो॥

इस छन्द में प्रह्लाद संसार के सम्बन्धों को असत्य बताकर भगवान भजन की शिक्षा दे रहे हैं। इस छन्द में भी शब्दों के रूप स्थिर नहीं हैं। ह्रस्व और दीर्घ की मात्रा पूर्ति के लिए ध्यान नहीं रखा गया है।

शब्दार्थ —टक लाइ—ध्यान से। सुणा—सुनो। ढकद्याँदी—अस्थिर। हिलती हुई। ढुंगी—छोटा पत्थर। चढ़ि—चढ़कर। जगवंगी—उन्मत्तता। सुणों—सोना।

सगा—सम्बन्धी। धाला—देंगे। क्वी—कोइ। हूणों—होगा। यतैं—इससे। खदानी कु—सदैव के लिए। खुणा—खोना है। स्वीणा—स्वप्न। रूणो—रोना।

हिन्दी भाषान्तर :—भाई विरादर मित्र, सखा सब छोटे बड़े ध्यान देकर सुनो कुरंगी दुनिया के हिलते हुए पत्थर पर उन्मत्तता से पैर रखकर प्राण नष्ट न करना। (दुनिया अविश्वसनीय है)। यहाँ पैर रखने की जगह भी निश्चित नहीं है। जमीन जगह स्त्री सम्बन्धी सब धोखा देंगे। कोई साथ नहीं होने का। इसलिए भवानी कवि कहता है कि हमने हरि भजन की ठानी है अब स्वप्न का रोना सदैव के लिए नष्ट कर देना है।

(२)

अलो ! तू विजय छै बड़ो भक्त हमारो बैकुण्ठवासी छयो प्राणप्यारो।
पर करा तुमनऽबामणो को सामणो यीं ते छ तुमको असुरयोनि घुमणो।
जो कोई बामण को अपमान करदा वही लाख चौरासी योनि विसरदा।
बामणों न तुम पर यह कृपा करै सिरप तीन योन्यो उद्धार ठैरे। १
अब कुम्भकर्ण वो रावण तुम ह्वैला तब राम हम ह्वैक तुम मारियूला।
जरासंघ वो कंस तुम अन्त ह्वैला तब तुमको हम कृष्ण ह्वै तार द्यूला।
कथा जब हमारी या होली पुराणी कलयुग मां धोली 'भवानी' बखाणी।
सुणी भणि क लीला कथा या हमारी सक्षारि सुख पाला वो परिवारी।

भगवान् हिरण्यकशिपु को मारते समय उसे उसके पूर्व जन्म की याद दिला रहे हैं कि तुम जय और विजय दो भाई थे ब्राह्मणों के अपमान से दैत्य योनि को प्राप्त हुए।

शब्दार्थ :—अलो ! =हे ! छै=हो। छयो=था। सामणो=सामना। यीं ते=इससे। घूमणों=घूमना। करदा=करता है। विचरदा=विचरण करता है। यो=यह। करे=की। योन्यों=योनियों। ठहरे=निश्चय किया। ह्वैला=होगे। ह्वैक=होकर। मारियूला=मार देंगे। ह्वै=होकर। या=यह (स्त्री लिंग)। होली=होगी। पुराणी=पुरानी। धोली=देगा। सुणीभणि=सुन और कहकर। पाला=पायेंगे। परिवारी=परिवारवाले।

हे विजय ! तू हमारा बड़ा भक्त है। प्राण प्यारा बैकुण्ठवासी था किन्तु तुमने ब्राह्मणों का सामना किया इसलिए तुमको असुर योनियों मे घूमना है। जो कोई ब्राह्मण का अपमान करता है वही चौरासी लाख योनियों मे विचरता है। ब्राह्मणों ने तुम पर यह कृपा की है कि तीन योनियों में उद्धार का निश्चय किया है। अब तुम कुम्भकरण और रावण होगे तब हम राम होकर तुमको मार देंगे। अन्त मे तुम जरासन्ध और कंस होगे तब तुमको हम कृष्ण होकर तार देंगे। जब हमारी यह

कथा पुरानी हो जाएगी कलियुग में भवानी कवि वर्णन कर देगा। हमारी इस कथा को सुनकर तथा कहकर हमारी तथा परिवार वाले सुख पाएँगे।

बारहमासा—ग्रामीण के मुख से
चैतऽका मैना दिना भेंट होली।
तेरी चेटुलि ब्वे! ब्बऽड्बऽरोली। १।
बैसाख मैना कौथिगऽ हुँयाँलो।
बिना स्वामी मैं ब्वे! जिकुड़ी मुरौंली। २।
जेठ का मैना बुति जालो कोदो।
मेरा सेनौं ब्वे! को बुति आलो। ३।
आषाढ़ मास कुएड़ी लगऽली।
बिना स्वामी रता कनिकै कटयैली। ४।
सौण का मैना कुड़ो चुआँलो।
जो पाणी भेरऽ! भितरऽ भी होलो। ५।
भादौं का मैना संगराद आली।
मेरो को छ ब्वे! पयू कैथैं यूँली। ६।
असूज मास सरदा दियेला।
पितरऽ हमारा टुक टुक चाला। ७।
कातिक मास बगवाल आली,
स्वामी जैको घरऽ पकवड़ा बणाली। ८।
मंगसीर बैस ब्वे! ढोंकर जाला।
सबै बिकैक लूण गुड़ ल्याला। ९।
पूस का मैना जड़ो छ भारी।
बिना स्वामि होली दुर्भागी नारी। १०।
मऊमास बिच ब्वे मकरैण आली।
भाग्वान् छैं जो हरिद्वार जाली। ११।
फागुण मैना होली ख्यलेली।
गीत सुणी क जिकुड़ी जललो। १२।
आली जाली सबयैं रिसाली।
दुर्भागि मैं कूँ आली नि आली। १३।

इस बारहमासा को कोई विधवा युवती जिसके घर में कोई नहीं है अपनी माँ को सम्बोधन करके गा रही है। वह अपने सूनेपन का विचार करके दुःखी हो रही है। भाषा का स्वरूप इसमें भी निश्चित नहीं है।

शब्दार्थ:-मैना = महीने। दिशा भेंट = लड़की के मायके का बाजा बजानेवाला ईनाम मागने के लिए चैत के महीने लड़की के ससुराल जाया करता है इसे दिशादान कहते हैं। लड़की दिशा कहलाई जाती है। बिटुली = बेटी। ब्वै = मां। ढबढब = आंखों से आंसू की बड़ी-बड़ी बूंदें गिरना। रोली = रोयेगी। कौथिग = यह शब्द कौतुक से बना है, पहाड़ मे इसका अर्थ मेला होता है। हुरेलो = उमड़ेगा। जिकुड़ो-हृदय। झुरौली—दुखी करूंगी। बुतिजालो — बूना जाएगा। कोदो—मंडवा (अनाज)। को — कौन। कुएडो — कोहरा। लगलो — लगेगी। रत्ता — रातें। कनिकै — किस प्रकार। कटेली — काटीजाएँगी। कुड़ो — मकान। चूलो — टपकेगा। पाणी — पानी। भेर — बाहर। भितर — भीतर। होलो — होगा। संगरोद—संक्राति। पहाड़ों पर सौर्य मास का प्रचार है अतएव संक्रातियो का बड़ा महत्व है। भाद्रपद की संक्राति को पहाड़ पर घिया संगराद कहते हैं। उस दिन प्रत्येक को घी अवश्य खाना चाहिए। घिउथ्यू घी। कैंथों—किसको। द्यूंली — दूंगी। सरड्ढा —श्राद्ध। दियेला — दिए जायेंगे। टुकटुक चाला — दूर से झाकेंगे। चाणों का अर्थ देखना भी होता है। बग्वाल — दिवाली। जैंका — जिसके। पकवड़ा — बड़ी पकौड़ियां। बणाली — बनाएगी। बैंख — पुरुष। ढाकर — रामनगर, कोटद्वार, हल्द्वानी आदि मंडियों को अपने कंधे पर मिर्च, हल्दी ले जाना और उनके स्थान पर नमक, गुड़ कपड़ा आदि खरीद कर घर लाना ढाकर कहलाती है। मर्च — मिर्च। बिकैकं = बेंचकर। लूण — नमक। ल्याला — लायेंगे। होली — होगी। मउ — माघ। मकरैण — मकरसंक्रान्ति। इस त्यौहार को प्रायः पहाड़ी लोग हरिद्वार नहाने जाते हैं। भाग्वान — भाग्यवान। छै — हैं। जाली — जायेंगी। ख्यलेली — खेली जाएगी। सुणीक — सुन कर। थैं — को। जल्ली — जलेगी। रिजाली = रिझायेगी। आली निआली — आना न आना समान है।

हिन्दी भाषान्तर:-चैत के महीने बाजाबजानेवाले लड़की को भेंटने के लिए उसके ससुराल जायेंगे। हे मां ! तेरी बेटी बड़े आंसू बहाएगी। बैशाख के महीने मेला लगेगा। पति के बिना मैं अपने हृदय को दुखी करती रहूंगी। २। जेठ के महीने मंडुवा बोया जाएगा। हे मां ! मेरे खेतों में कौन बो जाएगा। ३। आषाढ़ के महीने कोहरा लगेगा बिना पति के रातें कैसे कटेंगी। ४। सावन के महीने मकान की छत टपकेगी जो जल बाहर वही भीतर भी होगा। ५। भाद्रपद के महीने घिया संक्राति आएगी हे मां ! मेरा कौन है जिसको घी दूंगी। ६। क्वार के महीने श्राद्ध दिए जायेंगे। हमारे पितृगण दूर से देखते रहेंगे। तात्पर्य यह है कि कोई श्राद्ध देनेवाला नही है। ७। कार्तिक के महीने दीपावली आएगी जिसके

घर में स्वामी हैं वह पकौड़ियाँ बनाएगी । ८ । मार्गशीर्ष में पुरुष लौटकर जायेंगे । मिर्च बेचकर नमक, गुड़ लायेंगे । ९ । पूष के महीने भयंकर जाड़ा है अभागिनी स्त्री ही बिना स्वामी के होगी । १० । माघ के महीने मकरसंक्रांति आएगी जो भाग्यशालिनी हैं वह हरिद्वार जायेंगी । ११ । फागुन के महिने होली खेली जाएगी । गीत सुनकर मेरा हृदय जलेगा । १२ । ऋतुएँ जायेंगी सब को प्रसन्न करेंगी मुझ अभागिनी के लिए आयेंगी या न आयेंगी अर्थात आना बराबर है ।

बयाधर भट्ट

गढ़वाली गीतावली से

उठा उठा हे गढ़ वीर भायो ।

कब यें छुचो दीन बणीकऽरवैला ।

बन्दी समो क्या इनो भी दिस्योलो ।

जब बीरता का डका बजौला ।१।

क्वी नीच माई संगी हमारो ।

खुट्टौन अपणा खड़ो होणा होली ।

बन्दो बणीतैं हे वीर वैलो !

मसार माँ नाम कमौण होलो ।२।

ऐ जा पगेता पक्का कसीक ।

गढ़वाल की लाज चला बचौला ।

बन्द भलो प्राण की बल चढ़ंक ।

संसार माँ राहतुरी बजौला ।३।

इस छंद में गढ़वालियों को विदेशी शासन से मुक्त होने के लिए प्रोत्साहित किया गया है ।

शब्दार्थ:-राह=तुरी बड़ी तुरही । तैं = तक । छुचो ! = अरे ! । बणीक =बनकर । रवैला = रोओगे । समो=समय । इनो = इस प्रकार । दिस्योलो = दिखाई देगा । बजौला = बजाएँगे । कुइ = कोई । खुट्टौना = पैरों से । खड़ो होण होलो = खड़ा होना होगा । बणी तैं = बनकर । वैलो = पुरुषो । कमौण होलो = कमाना होगा । ऐ जा । व्याकरण का दोष है, बहुवचन में ऐजा के स्थान पर आवा होना चाहिए । पगेता - कमरबंद कसीक - कसकर । बचौला - बचाएँगे ।

हिन्दी भाषान्तर:— हे गढ़वाल के वीर भाइयो ! उठो उठो कब तक दीन बनकर रोओगे । बंदी कवि कहता है कि कभी ऐसा भी समय दिखाई देगा जब वीरता का डंका बजाएँगे । भाइयो ! हमारा कोई साथी नहीं है अपने पैरों पर

खड़ा होना पड़ेगा। हे वीर पुरुषों! बन्दी बनकर संसार में नाम कमाना होगा। दृढ़ता से फेंटा कस कर आ जाओ। चलो गढ़वाल की लज्जा बचायेंगे। बन्दी कवि कहता है कि इस सुन्दर जीवन को बलि चढ़ाकर संसार में तुरही बजायेंगे। अर्थात् संसार को अपने स्वर से गुंजा देंगे।

शालिग्राम वैष्णव-गढ़वाली पखाणा (लोकोक्ति)

१. अकल को टप्पू, मुंड मा बोदगो घोड़ा मां अप्फू।
२. अस्वाण्या ब्वारी की कुराण्या बाच।
३. ओट्यो कात्यो चार हाथ, घाघरी फूकी बत्तीस हाथ।
४. अंग्रेजो राज, गत्यूं कपड़ा न पेट को नाज।
५. काणसा बटि, खओणो, जेठा बटि बेओणो।
६. कितलो कऽर सर्पकी सऽर छुच्चो कितलो ताणि ताणि मऽर।
७. गुण को मार्यूं, हेरो उँद, पप्पड़ को मार्यूं हेरो उब्ब।
८. ह्यूंद हिवाल, रूड़ो पयाल।
९. हुस्याली मो ह्वं जाव हिस्याली मो हरचि जाव।
१०. लूट नी जाणदी मो झूट नी जाण दो न्यो।

शब्दार्थ :—

१. को—का। टप्पू - हीन। मुंडमां—सिर पर। बोदगो—गठरी। मां—पर। अप्फू=आप।
२. अस्वाण्या—नापसन्द। ब्वारी—बधू। कुराण्या—कर्कश। बाच—आवाज़।
३. ओट्यो—धुना। कात्यो—काता। घाघरी—लहंगा। फूको—जलाई।
४. अंग्रेजो—अंग्रेज का। गत्यूं—शरीर के लिए।
५. काणसा—छोटा। बटि—से। खओणो—खिलाना। जेठा—बड़ा। बेओणो—विवाह करना।
६. कितलो—केंचुआ। सऽर। छुच्चो—बेचारा (यहां मूर्ख से तात्पर्य है)। ताणि ताणि—खिच खिच कर।
७. मार्यूं—मारा हुआ। हेरो—देखे। उँद—नीचे को। पप्पड़—चींटा। उब्ब-ऊपर को।
८. ह्यूंद—शीतकाल। हिवाल—हिमालय। रूड़ी—ग्रीष्म ऋतु। पयाल—मैदान।
९. हुस्याली—प्रतियोगिता करने वाली। मो—कुटुम्ब। ह्वं—हो। जाव—जावे हिस्याली—ईर्ष्या करने वाली। हरचि—नष्ट।
१०. जाणदो—जानती है। मो—भाव। नी—नहीं। न्यो—न्याय।

उपर्युक्त लोकोक्तियों मे चिरकाल के सामाजिक अनुभव छिपे हुए हैं। हिन्दी की अपेक्षा मध्य पहाड़ी में लोकोक्तियों का बहुत अधिक प्रचार है। श्री शालिग्राम वैष्णव ने इन गढ़वाली भाषा की लोकोक्तियों को गढ़वाली पखाणा (प्रकथन) के नाम से संग्रहीत किया है।

हिन्दी के भाव—

१. अक्ल का हीन व्यक्ति सिर पर गठरी रखे घोड़े पर सवार रहता है अर्थात निरर्थक कार्यभार अपने ऊपर लेना।
२. नापसन्द वधू की आवाज मे कर्कशता ज्ञात होती है। अर्थात् जो वस्तु पसन्द नहीं आती उसमें अकारण दोष निकालना।
३. चार हाथ कपड़े के लिए रूई को औटा-काता और बत्तीस हाथ का लहगा जला दिया। अर्थात काम कम और हानि अधिक।
४. अंग्रेजों के राज्य में न शरीर के लिए कपड़ा न पेट के लिए भोजन। विदेशी सरकार की बुराई बतलाई गई है।
५. सिलाना छोटे से आरम्भ और विवाह बड़े स आरम्भ करना चाहिए। भोजन और विवाह करने का नियम बनाया गया है।
६ केंचुआ सर्प की बराबरी करे तो तुच्छ केंचुआ खिच खिच कर मरे। छोटा आदमी ईर्ष्यावश बड़े की बराबरी करने का प्रयत्न करे।
७ गुणो का मारा हुआ नीचे को देखता है और चोटा खाया हुआ ऊपर को देखता है। अर्थात भलाई स मनुष्य वश मे होता है। शक्ति प्रयोग से वह और भी अकड़ता है।
८. वर्षा जाड़े में हिमालय मे और गर्मियों में मैदान मे आती है। इसमें मान सूनों का सुन्दर अनुभव निहित है।
९ प्रतियोगिता वाला कुटम्ब उन्नति करता है ईर्ष्यावाला कुटम्ब नष्ट हो जाता है। तात्पर्य यह है कि अपने से बड़े के समान बनने का प्रयत्न करना चाहिए उससे ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए।
१०. लूट भाव नहीं जानती और झूट न्याय नहीं जानती। अर्थात लूट करते हुआ वालु का भाव नहीं पूछा जाता और झूठ बोलने में न्याय का ध्यान नहीं रखा जाता।

समाप्त